मनोविश्लेषण
और
मानसिक क्रियाएँ

डा० पष्पा अग्रवाल
एम. ए., पीएच. डी.

प्राक्कथन

डा० पद्मा अग्रवाल और उनकी पुस्तक 'मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ' का परिचय देने में मुझे बहुत हर्ष होता है। कुमारी पद्मा ने अभी हाल में ही हिन्दू विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की है और उनका इस उपाधि के लिये दिया हुआ निबन्ध परीक्षकों की दृष्टि में एक बहुत उच्च कोटि का निबन्ध था। इस निबन्ध द्वारा उन्होंने अपने अध्यवसाय, ज्ञान और पाण्डित्य का परिचय दे दिया है। यह निबन्ध अँगरेजी भाषा में था। प्रस्तुत पुस्तक उन्होंने हिन्दी भाषा में लिखी है। अँगरेजी भाषा तथा आधुनिक मनोविज्ञान से अपरिचित लोगों के लिये यह बहुत ही उपयोगी है। हिन्दी भाषा में 'मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ' पर पुस्तक लिखकर उन्होंने हिन्दी-भाषा-भाषी पाठकों का बड़ा उपकार किया है। विषय का विवेचन यथोचित विशद, सरल और ठीक है। अभी तक हिन्दी में इस विषय पर इतनी अच्छी कोई दूसरी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। अतएव मुझे पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक यथोचित आदर का पात्र बनेगी तथा विद्यार्थी इससे समुचित लाभ उठायेंगे। मैं उनको उनकी इस प्रथम प्रकाशित कृति के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

भी० ला० आत्रेय
एम. ए., डी. लिट., के. सी. के. टी.
अध्यक्ष दर्शन, धर्म, व मनोविज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

९ जुलाई १९५१

प्राक्कथन

डा० पद्मा अग्रवाल और उनकी पुस्तक 'मनोविश्लेपण और मानसिक क्रियाएँ' का परिचय देने में मुझे बहुत हर्ष होता है। कुमारी पद्मा ने अभी हाल में ही हिन्दू विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की है और उनका इस उपाधि के लिये दिया हुआ निबन्ध परीक्षकों की दृष्टि में एक बहुत उच्च कोटि का निबन्ध था। इस निबन्ध द्वारा उन्होंने अपने अध्यवसाय, ज्ञान और पाण्डित्य का परिचय दे दिया है। यह निबन्ध अँगरेजी भाषा में था। प्रस्तुत पुस्तक उन्होंने हिन्दी भाषा में लिखी है। अँगरेजी भाषा तथा आधुनिक मनोविज्ञान से अपरिचित लोगों के लिये यह बहुत ही उपयोगी है। हिन्दी भाषा में 'मनोविश्लेपण और मानसिक क्रियाएँ' पर पुस्तक लिखकर उन्होंने हिन्दी-भाषा-भाषी पाठकों का बड़ा उपकार किया है। विषय का विवेचन यथोचित विशद, सरल और ठीक है। अभी तक हिन्दी में इस विषय पर इतनी अच्छी कोई दूसरी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। अतएव मुझे पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक यथोचित आदर का पात्र बनेगी तथा विद्यार्थी इससे समुचित लाभ उठायेंगे। मैं उनको उनकी इस प्रथम प्रकाशित कृति के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

भी० ला० आत्रेय
एम. ए., डी. लिट., के. सी. के. टी.
अध्यक्ष दर्शन, धर्म, व मनोविज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

९ जुलाई १९५१

दो शब्द

जब यह पुस्तक सोची और लिखनी शुरू की थी तो सामने भाषा का माध्यम अँगरेज़ी था। संयोगवश तभी कविश्रेष्ठ श्री मैथिलीशरण जी गुप्त आये और उन्होंने आग्रह-भरी प्रेरणा दी कि इसे हिंदी मे ही लिखूं। मेरे सामने सहज ही एक प्रश्न बन गया और हिंदी भाषा सम्बन्धी मेरी समस्त सीमाएँ आगे आ खड़ी हुई। जैसा और जो कुछ मैं कर सकी, सब यह सामने है।

पुस्तक का मुख्य उद्देश्य आधुनिक मनोविज्ञान का संश्लिष्ट और तुलनात्मक विवरण देना है। इसमे मानव-मन के सब क्रिया-व्यापारों की व्याख्या मिलती है। स्वप्न, कला, धर्म, दैनिक क्रिया-चेष्टाओं और अपराध का संक्षिप्त वर्णन है; अधिक भाग मे 'असाधारण मनोविज्ञान' दिया है और मानव-स्वभाव को समझने के लिये अज्ञात मन के लक्षण, कार्य-पद्धति और विषय-वस्तु पर विशेष प्रकाश डाला गया है। हिंदी मे इस विषय और प्रकार का यह प्रथम प्रयास है; और फ्रायड, ऐडलर तथा युंग के सिद्धान्तों का जहाँ जो जैसा समर्थन अथवा खंडन यहाँ किया गया है, केवल परम्परागत आधारों और तर्कों पर ही नहीं किया गया है। पुस्तक के अन्त मे इस विज्ञान के हिन्दी-अँगरेज़ी और अँगरेज़ी-हिन्दी शब्दकोष भी दे दिये गये हैं जो किसी के लिए भी सहायक और उपयोगी होंगे।

काशी-विश्वविद्यालय के दर्शन और मनोविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष डा० भी० ला० आत्रेय की मैं आभारी हूँ; अपने अध्ययन मे मुझे उनसे बराबर प्रोत्साहन मिला है।

पद्मा अग्रवाल

अब से चार वर्ष पूर्व इस पुस्तक का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था। पुस्तक को आशातीत सफलता प्राप्त हुई—पाठकों ने रुचि ली, समालोचकों ने अच्छी समालोचनाएँ कीं, सरकार ने पुरस्कृत किया, और विद्यालयों के मनोविज्ञान-अध्यक्ष तथा सहशिक्षकों ने समुचित आदर किया। मैं सबकी आभारी हूँ। प्रोत्साहित होकर यह दूसरा संस्करण प्रस्तुत कर रही हूँ। इस संस्करण में कुछ विषयों की व्याख्या अधिक विशद कर दी गयी है।

१५ जुलाई १९५५

विषय

१

परिचय

गत शताब्दी के मनोविज्ञान में केवल ज्ञात मन (conscious mind) की क्रियाओं—स्मृति, कल्पना, विचार, बुद्धि, संवेदन, प्रत्यक्षीकरण इत्यादि—का अध्ययन किया जाता था; अज्ञात मन (unconscious mind) के विषय में सभी अनभिज्ञ थे। मन के इस विशिष्ट स्तर का पहले-पहल अन्वेषण वियाना के प्रख्यात डॉक्टर सिग्मण्ड फ्रायड ने अपनी विश्लेषक और तीक्ष्ण दृष्टि की प्रतिभा से किया, और यह निर्धारित किया कि अज्ञात मन मानव के संपूर्ण मन का एक प्रमुख भाग है, और मानव की प्रत्येक बाह्य और आंतरिक क्रिया का वही वस्तुतः प्रवर्तक है। ज्ञात मन की क्रियाओं और उसके विषय-वस्तु (contents) की जानकारी हमें रहती है। हम जानते हैं कि हमारा ज्ञात मन कब क्या करता है, क्या चाहता है, और उसके कल्पना-विचार लोकों की किस समय क्या विषय-वस्तु होती है। परन्तु हमें अज्ञात मन के रहस्य, संघर्ष तथा उसकी अनवरत सुप्त कार्य-प्रणाली, उसकी जागृत और कुण्ठित इच्छा-भावनाएँ आदि अनेक सत्यों का बोध प्रायः नहीं होता। तब भी मनोवैज्ञानिक आधार पर यह प्रमाणित हो गया है कि अज्ञात मन का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन पर सदा पड़ता रहता है। ज्ञात मन समय और समाज के नियम-बन्धनों से परिवेष्टित होता है। इस कारण अव्यक्त प्रवृत्तियों के प्रदर्शन—और कभी-कभी प्रस्फुटन—में बाधा डालता है। परिणाम यह होता है कि अव्यक्त इच्छाएँ रूपान्तर अथवा छद्मरूप (disguise) में प्रदर्शित होती हैं।

मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ

इस नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अन्वेषण और निरूपण के लिये वियाना के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड की तुलना सहज ही डार्विन[1] स्पिनोज़ा[2] और न्यूटन[3] आदि से हो जाती है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड की कृति का वही मान-महत्त्व है जो भौतिक क्षेत्र में डार्विन और न्यूटन की कृतियां का। फ्रायड के सुझाये-बताये इस अज्ञात मन के आचार-व्यवहार के आधार पर एक स्वतंत्र विज्ञान का निर्माण हुआ जो 'मनोविश्लेषण' (Psychoanalysis) के नाम से प्रसिद्ध है। इस विज्ञान के प्रारम्भिक काल में उसके सिद्धान्तों पर तीखा वाद-विवाद रहा। अधिकतर लोगों की धारणा थी कि वह स्थायी नहीं हो सकेगा। इसका प्रमुख कारण समाज की सर्कुचित दृष्टि में उसके सिद्धान्तों और स्थापनाओं का अनुचित समझा जाना था। उनमें, अर्थात् फ्रायड के सिद्धान्तों में, काम-वासना तत्त्व का प्राधान्य था। किंतु समय पाकर इस विज्ञान का इतना विकास हुआ कि बरबस सबका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और आज एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में उसकी सत्ता निर्विवाद बनी है। कितना भी वितण्डा और खंडन होने 'मनोविश्लेषण' का समाज-विज्ञान, शिक्षा-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान और मानव-विज्ञान आदि पर गंभीर और अचूक प्रभाव है। एक प्रकार से इन सब विज्ञानों की रूप-रेखा और रचना-प्रणाली ही बदल गई है। मनोविश्लेषण में केवल सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया गया है; व्यावहारिक पहलू पर विशेष रूप से विचार किया गया है। जीवन के प्रायः सभी स्तरों और दिशाओं की गुत्थियाँ मनोविश्लेषण के सहारे सहज ही समझी और सुलझाई जा सकती हैं। कारण, मनोविश्लेषण मनोलोक के एक-एक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भाव और क्रिया की व्याख्या सुलभ कर देता है। इसका निष्कर्ष बहुत कुछ अनुभव और बाह्य सामग्री (objective data) पर निर्भर करता है। इसके सिद्धान्त क्रियावाद (Behaviourism)[4] और

---

१ डार्विन—विकासवाद सिद्धान्त के प्रवर्तक
२ स्पिनोज़ा—एकत्ववाद और सर्वेश्वरवाद के प्रवर्तक
३ न्यूटन—आकर्षण शक्ति सिद्धान्त के प्रवर्तक
४ क्रियावाद—मनोविज्ञान के इस धारा के प्रवर्तक जान वॉटसन हैं।

प्रयोजनवाद (Hormic school)[1] के सिद्धान्तों से भिन्न है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें अज्ञात मन की महत्ता पर विशेष रूप से बल दिया गया है। हरेक व्यापार-व्यवहार की व्याख्या अज्ञात मन के प्रसंग में मिलती है।

मनोविश्लेषण का आरम्भ और विकास

मनोविश्लेषण के जन्मदाता डॉ० सिग्मंड फ्रायड प्रारम्भ में स्नायु (nerves) संबंधी रोगों की चिकित्सा करते थे। सन् १८८५ में उन्होंने पैरिस जाकर शारको (Charcot) के साथ मानसिक चिकित्सा का अध्ययन किया। शारको उन दिनों हिस्टीरिया के रोगियों पर सम्मोहन (hypnotism) का प्रयोग कर रहे थे। फ्रायड वियाना लौटे, और जब उन्होंने भी शारको से सीखी हुई युक्ति का प्रयोग करना चाहा तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसका विशेष कारण यह था कि वहाँ अभी तक यह ज्ञान न था कि कुछ शारीरिक रोगों का संबंध मानसिक विकारों से होता है। वे केवल 'स्वस्थ मन का स्वस्थ काया में वास' (Healthy mind in a healthy body) वाली बात ही जानते थे। इस अनभिज्ञता के कारण किसी भी रोग के लिए औषधि, इंजेक्शन और बिजली का प्रयोग केवल किया जा सकता था। थकान और शिथिलता में शक्तिदायक द्रव्य ही दिया जाता। जब औषधि निष्फल हो जाती तब बिजली और ठंडे पानी का प्रयोग करते। फ्रायड ने भी मानसिक रोगों के लिए पहले बिजली का प्रयोग किया, पर कुछ ही काल में उसे सर्वथा अनुपयुक्त पाया। कुछ रोगियों पर सम्मोहन का भी प्रयोग किया गया, परन्तु वह सब पर सफल न हुआ। इसके कुछ कारण हैं : एक तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति को सम्मोहित करना सम्भव नहीं, विशेषतः उन्हें जो दृढ़ और जागृत संकल्प हों, जिनमें आध्यात्मिक शक्ति हो, अथवा जिनकी सम्मोहक (hypnotiser) के प्रति श्रद्धा न हो और उसकी ओर ध्यान केन्द्रित न कर सकें या न करना चाहें; दूसरी बात यह है कि इसके द्वारा कोई रोगी स्थायी रूप में स्वस्थ नहीं किया

१ प्रयोजनवाद—इस धारा के प्रवर्तक मैक्डूगल हैं जिनका वृत्ति का सिद्धान्त प्रसिद्ध है।

जा सकता, कुछ समय ही बाद रोग के उभरने की संभावना रहती है; तीसरी बात यह है कि सम्मोहन मे संक्रमण (transference) की समस्या सुलझाना असंभव सा है। इन कठिनाइयों के कारण फ्रायड ने मानसिक रोगों की इस चिकित्सा-विधि को छोड़ दिया। फिर भी, जैसा उन्होंने अपनी पुस्तक 'साइकोएनैलिसिस : एक्सप्लोरिंग द हिडेन रीसेस ऑफ द माइन्ड' मे लिखा है "मनोविश्लेषण के विकास के इतिहास मे सम्मोहन की उपयोगिता नहीं भूली जा सकती। ज्ञान और चिकित्सा क्षेत्रों मे मनोविश्लेषण वही काम करता है जो रूपान्तर मे सम्मोहन करता था।" तात्पर्य यह है कि सम्मोहन ने मानसिक चिकित्सा की पृष्ठभूमि निश्चित की और उसी के आधार पर मनोविश्लेषण के अबाध मन:आयोजन (free association) की विधि का विकास हुआ। अनुभव और निरीक्षण से फ्रायड इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्मोहन बिना भी पिछली और दबी-छिपी भावना-ग्रंथियों की स्मृति जगाना (reactivation of the past complexes) संभव है। बीती घटनाओं तथा दुःखपूर्ण अनुभवों की पुन:स्मृति के लिये उन्होंने अबाध मन:आयोजन की ही विधि सबसे अधिक उपयुक्त पायी। यह विधि बहुत कुछ कैथलिकों की स्वीकृति-विधि (confession) की ही तरह है। यह बातचीत के द्वारा उपचार करना है। फ्रायड को विशेषकर उत्तेजना शारको और ब्राअर से मिली। इस प्रकार मनोविश्लेषण का आरम्भ और विकास हुआ। आगे-पीछे कई महत्व के ग्रंथ* प्रकाशित हुए; एक 'मनोविश्लेषण समिति' की स्थापना हुई: इसके लगभग सभी प्रमुख मनोवैज्ञानिक सदस्य बने। और फिर तो फलस्वरूप 'मनोविश्लेषण' का विकास तीव्र गति से हो चला।

पिछले पचास वर्षों मे इसकी प्रगति इतनी तीव्र रही कि इसमे से दो और बड़ी शाखाएँ फूट निकलीं जो 'वैयक्तिक मनोविज्ञान' (Individual psy-

*१९०० Interpretation of Dreams
१९०१ Psycho-pathology of Everyday life
१९०५ Wit and Its Relation to the Unconscious
१९१० Formation of Psychoanalytical Society.

chology) और 'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान' (Analytical psychology) नाम से विख्यात हैं। इनके जन्मदाता फ्रायड के ही दो सहयोगी विद्वान् ऐडलर और युंग थे। आरम्भ मे ऐडलर और युंग फ्रायड के ही विचारों के समर्थक थे। बाद मे मूल सिद्धान्तों मे मतभेद होने के कारण इन दोनों ने अपने स्वतन्त्र विचार-सिद्धान्त स्थापित किये। फ्रायड के मतानुसार 'प्रकृत काम-प्रवृत्ति' (natural sex-desire) ही मानव की सब क्रियाओं की मूल थी। ऐडलर ने काम-प्रवृत्ति के स्थान पर 'आत्म-स्थापन' (self-assertion) को मानव जीवन मे मूल प्रवृत्ति का प्रमुख स्थान दिया; और युंग ने काम-प्रवृत्ति के अतिरिक्त जीवन मे व्यक्त होने वाली अन्य प्रवृत्तियों—सामाजिक, धार्मिक तथा रचनात्मक—की ओर भी संकेत किया।

मनोविश्लेषण क्या है ?

'मनोविश्लेषण' शब्द का प्रयोग कई अर्थों मे किया जाता है :—

१. निर्देशन (suggestion), पुनःशिक्षण (re-education) और सम्मोहन (hypnotism) आदि की तरह मनोविश्लेषण भी मानसिक चिकित्सा की एक विधि है। इसकी सहायता से मानसिक रोगों का उपचार सरलता से किया जा सकता है। इसका प्रभाव स्थायी होता है, और अनेक रोगों पर इसका प्रयोग सफल रहा।

२. मनोविश्लेषण अज्ञात मन के अन्तर्द्वन्द्वों (conflicts) तथा भावना-ग्रंथियों (complexes) का ज्ञान प्राप्त करने की एक विशेष विधि है।

३. मनोविश्लेषण एक विद्या, सिद्धान्त या ज्ञान है जिसकी अपनी धारणाएँ और मान्यताएँ हैं और डॉ० सिग्मण्ड फ्रायड जिसके प्रवर्तक थे। आजकल यह एक स्वतंत्र विज्ञान माना जाता है क्योंकि इसके सिद्धान्त वैज्ञानिक विधि से प्रमाणित किये जा सकते हैं और इसका खोज-क्रम भी वैज्ञानिक है। प्रस्तुत पुस्तक का संबंध इसी 'मनोविश्लेषण'

से है। और इस युग मे, जो मनोवैज्ञानिक युग के नाम से प्रसिद्ध है, इसका अध्ययन विशेष उत्साह से किया जा रहा है।

मनोविश्लेषण का मानसोपचार शास्त्र से संबंध

अब प्रश्न यह है कि एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप मे मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) का मानसोपचार शास्त्र (Psychiatry) से क्या संबंध है। यह स्पष्ट करने के पहले, मानसोपचार शास्त्र का क्षेत्र और उद्देश्य क्या है इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है। यह औषधि विज्ञान (medical science) की एक शाखा है जिसका कार्य मानसिक रोग का निदान और उपचार करना है। इसके द्वारा विकृत अथवा असाधारण व्यक्तियों के मानसिक अवस्था का पूर्ण बोध हो जाता है। इसका उपयोग औषधि-क्षेत्र मे विशेष रूप से है। मनोविश्लेषण का भी महत्व है; किन्तु दोनों के क्षेत्र और विधि मे भेद है :

१. मनोविश्लेषण मे रोगी की मानसिक अवस्था का पता लगाने के लिये सूक्ष्म अध्ययन होता है; मानसोपचार शास्त्र मे मानसिक रोग के सामान्य नियम-सिद्धान्त (general principles) का अन्वेषण होता है।
२. मनोविश्लेषण मे रोग के कारण, उत्पत्ति का अध्ययन अतीत वर्त्तमान और भविष्य के प्रसंग से किया जाता है; मानसोपचार शास्त्र मे वंशागत विशेषता (hereditary characteristics) के प्रसंग मे व्याख्या दी गयी है।
३. मनोविश्लेषण मे मन के निचले स्तर के बारे मे अन्वेषण किया गया है; मानसोपचार शास्त्र मे बाह्य रंग-ढंग और अवस्था का। उपमा रूप मे मानसोपचार शास्त्र मे अवयवों के आकार-प्रकार का अध्ययन होता है : यह नहीं कि शरीर के अवयव किन मूल तत्वों से बने हैं।

यदि हम मनोविश्लेषण को मानसिक रोग के उपचार की एक विधि ही मान बैठे तो यह मानसोपचार शास्त्र का एक भाग मात्र है। जिस प्रकार मानसो-

पचार शास्त्र मे निर्देशन, सम्मोहन, बिजली, रासायनिक द्रव्य इत्यादि विधियों का उल्लेख है उसी प्रकार मनोविश्लेषण भी है। किंतु वास्तव मे मनोविश्लेषण मानव के मानसिक अवस्था का गूढ़ अध्ययन है। आंतरिक संघर्ष, दमन-परिमार्जन, ह्रास-विकास, संतुलन-असंतुलन का इतिहास है।

२

मनोगठन

(*Mental Structure*)

'मनोविश्लेषण' की स्थापना के पहले भी मनोवैज्ञानिकों को मन के व्यापार-व्यवहार समझने के लिये अवचेतन (sub-conscious) मन के अस्तित्व की आवश्यकता लगी थी, और कल्पना, अनुभव, और निरीक्षण के आधार पर आगे जाकर यह प्रमाणित भी हुई। पश्चिमी दार्शनिक लाइबनीज़ ने अवचेतन मन के विषय मे आधुनिक दर्शन के प्रारंभ मे ही उल्लेख किया था और जब मानसिक विकार (psychopathology) के विषय मे फ्रांस मे अध्ययन हुआ, इस अवचेतन मन की धारणा की महत्ता और भी बढ़ गयी। फ्रायड की अज्ञात मन की धारणा हार्टमैन की अज्ञात मन की धारणा का ही वैज्ञानिक रूप है।

यदि यह कहा जाय कि ज्ञात मन ही सब कुछ है तो कई समस्याएँ उठती हैं—

१. निद्रावस्था मे पूरी चेतना न होने पर स्वप्न आते हैं। जागने पर उनकी स्मृति रहती है। चेतन मन के अभाव मे उन स्वप्नों की सर्जना निश्चय कोई दूसरी शक्ति करती है जिसका हमे ज्ञान नहीं।

२. कोई भी घटना विस्मृत होती है तो चेतन मन से बाहर चली जाती है; परन्तु फिर भी उसकी पुनः स्मृति होती है।

३. निद्रावस्था मे चेतना प्रायः नहीं रहती। ऐसी दशा में उससे पहले जाग्रतावस्था की घटनाओं की स्मृति शून्य हो जायेगी। फिर भी अगले दिन वे याद आती हैं।

४. हम किसी भी परिचित वस्तु को, जिसे बहुत समय से नहीं देखा, देखते ही पहचान लेते हैं।

५. मन के अनेकों व्यवहार ज्ञात अथवा चेतन मन के आधार पर नहीं समझे-सुलझाये जा सकते, न वह उनके लिये उत्तरदायी ही होता है। फिर भी वे असाधारण व्यवहार होते हैं। क्यों ?

इन सब समस्याओं को सुलझाने तथा भौतिक क्षेत्र (physical realm) की तरह मानसिक क्षेत्र मे भी व्यवस्था दिखलाने के लिये अवचेतन (sub-conscious) मन की कल्पना आवश्यक हो गई और इस प्रकार अन्त को उसका अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया। इस अवचेतन मन पर आधुनिक मनोविज्ञान मे कई सिद्धान्त प्रचलित हैं।

अवचेतन पर आधुनिक दृष्टिकोण

द्वि मनःसिद्धान्त (*Dual Mind Theory*):—

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक टी० आई० हडसन थे। उनकी दृष्टि मे प्रत्येक व्यक्ति के दो मन होते हैं—'ज्ञात' और 'अवचेतन'। हडसन की परिभाषा मे ये दो मन 'बाह्य मन' (objective mind) और 'आंतरिक मन' (subjective mind) कहलाते हैं। ये एक दूसरे पर आश्रित नहीं, तो भी इनका एक दूसरे पर प्रभाव रहता है। इन दोनों के स्वभाव, गुण और शक्ति भिन्न-भिन्न हैं। 'बाह्य मन' को बाहरी वस्तुओं के बोध के लिये ज्ञानेन्द्रियों की आवश्यकता होती है; 'आंतरिक मन' को उसके लिये ज्ञानेन्द्रियों की आवश्यकता नहीं पड़ती—आंतरिक मन का साधन अन्तर्ज्ञान (intuition) है। बाह्य मन को अनुभव के लिये वस्तु (object) की आवश्यकता है; आंतरिक मन को स्मृति और संवेग की। बाह्य मन मे सामान्य तर्क (inductive reasoning) होता है; आंतरिक मन मे विशेष तर्क (deductive reasoning) होता है। मन के सम्बन्ध मे हडसन का यह 'द्वि मनःसिद्धान्त' वैज्ञानिक नहीं हो सकता। कारण, मन अविच्छिन्न वस्तु है, निरवयव है। उसका विभाजन नही किया जा सकता। एक ही मन के कई पहलू हो सकते हैं; पर एक ही व्यक्ति मे कई मन होना संभव नहीं।

अवचेतन मन का परा-सीमान्तर दृष्टिकोण (*Ultra Marginal view of the Sub-conscious*) :—

इस दृष्टिकोण के अनुसार अवचेतन मन (sub-conscious) व्यक्तिगत ज्ञात मन (personal conscious mind) की सीमा के परे है। साधारणतया चेतन या ज्ञात मन को दो भागों में बाँटा जा सकता है: एक 'केन्द्रीय भाग' (central or focal region) और दूसरा 'सीमान्त भाग' (marginal region)। सीमान्त भाग को प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेम्स के शब्दों में 'चेतना की कोर' (fringe of consciousness) कहते हैं। अवचेतन मन 'चेतना की कोर' का विस्तार मात्र है। इसके विचार स्थिर नहीं। वे किसी भी समय साधारण अवस्था में ही ज्ञात मन में प्रवेश कर सकते हैं।
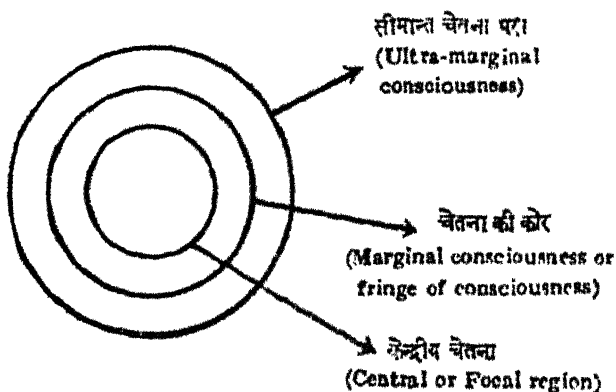
इस प्रकार इस दृष्टिकोण के अनुसार मन के तीन भाग मिलते हैं। किन्तु इस पर भी विशेष आक्षेप हुए : एक तो यह कि इसके अनुसार अवचेतन मन (sub-conscious) चेतन का ही एक भाग है; दूसरा कि यह दृष्टिकोण अवचेतन मन का कोई विवरण नहीं देता।

अवचेतन मन का अन्तश्चेतन दृष्टिकोण (*Subliminal view of Subconscious*):—

इस दृष्टिकोण के अनुसार अवचेतन मन का साधारणतः ज्ञान-बोध नहीं हो जाता। यह मन का निचला स्तर है और व्यक्तिगत मन (personal conscious mind) ऊपर का भाग है। जिस प्रकार सागर में तैरने वाले बर्फ के पहाड़ का थोड़ा ही भाग जल की सतह के ऊपर दिखलाई पड़ता है और अधिकांश नीचे रहता है उसी प्रकार मन की स्थिति है। तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत चेतन मन में विचार-भावनाओं की ऊर्मियाँ थोड़ी ही रहती हैं, अधिकतर वे अवचेतन मन में छिपी रहती हैं। फिर भी अवचेतन मन के विचार-भावों का चेतन या व्यक्त मन में आना कठिन नहीं। तैराक और सबमेरीन की तरह हमारे मन के विचार-विषय (contents) व्यक्त चेतन मन के स्तर के ऊपर-नीचे आया-जाया करते हैं।

मुन्स्टरबर्ग का आक्षेप

अवचेतन (sub-conscious) मन की धारणा की मनोविश्लेषण में आवश्यकता होने पर भी इस नये सिद्धान्त का विरोध और खंडन किया गया। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त की ऐसी व्याख्या भी दी कि जिसमें अवचेतन का महत्व-मूल्य मन के प्रसंग में न रहकर शरीर के प्रसंग में हो गया। इस दिशा में मुन्स्टरबर्ग का आक्षेप विशेष उल्लेखनीय है :

अवचेतन मन का सिद्धान्त बाधित है, क्योंकि उसका स्वयं अपने से ही खंडन होता है। जो चेतन नहीं, वह मन सम्बन्धी कैसे हो सकता है? और यदि वह मन सम्बन्धी नहीं तो शरीर सम्बन्धी होगा। इस प्रकार जो अचेतन अथवा अवचेतन है उसका अस्तित्व ही असंभव है। मुन्स्टरबर्ग की भाषा में इस अवचेतन (sub-conscious) मन के विषय में सीधे और सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि वह है ही नहीं (*It is not*)। साथ ही उनके मत में अवचेतन मन की धारणा ही अनावश्यक है। उनका कहना है कि मानसिक विचार स्वभाव से ही अस्थिर, कार्य-कारण रहित तथा अनियंत्रित हैं। भौतिक

क्षेत्र की तरह मानसिक क्षेत्र मे किसी नियम-क्रम का पालन नहीं होता। इस कारण मनःक्षेत्र मे विचार-भावनाओं की ऊर्मियों का कार्य-कारण क्रम बनाये रखने के लिये इस सिद्धान्त की कल्पना आवश्यक नहीं। मन की क्रियाओं के विश्लेषण मे भी यह काम नहीं आता, उसकी सहायता बिना ही मन के सब व्यापार-व्यवहारों की व्याख्या की जा सकती है।

फ्रायडवाद

इतना वाद-विवाद तथा दृष्टिकोणों मे भेद रहते भी सूक्ष्म निरीक्षण तथा अध्ययन के आधार पर मनोविज्ञान मे इस नये सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। फ्रायड का मन सम्बन्धी सिद्धान्त विशेष विकसित है; उन्होंने मन का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया है। वर्गीकरण के सम्बन्ध मे फ्रायड द्वारा प्रचारित दो प्रकार के सिद्धान्त मिलते हैं:—

प्रारम्भिक अवस्था मे मन का वर्गीकरण 'ज्ञात' (conscious) 'अज्ञात' (unconscious) और 'ईषद्-ज्ञात' (pre-conscious) मन के रूप मे है। आगे चलकर, सिद्धान्तों का पूर्ण विकास होने पर, उसका वर्गीकरण 'अहं' (ego), 'इदम्' (Id), और 'नैतिक मन' (super-ego) मे रूपान्तरित हुआ। फ्रायड की पिछली पुस्तकों मे मन की प्रत्येक क्रिया के विश्लेषण मे इन्हीं विचार-धारणाओं (concepts) का उल्लेख मिलता है। और वास्तव मे
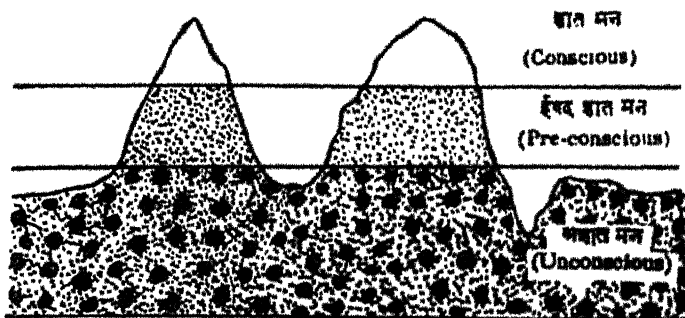
'मानवी व्यक्तित्व' इन्हीं तीनों मानसिक शक्तियों (psychic forces) की परस्पर संगति (interaction) का परिणाम है।

प्रारम्भ मे फ्रायड ने मन का जो विभाजन किया उसको समझने के लिये बायें पृष्ठ पर दिया हुआ चित्र विशेष सहायक होगा।

कल्पना कीजिये कि एक पहाड़ है और उसकी घाटी। पहाड़ के ऊँचा होने के कारण सूर्य का प्रकाश घाटी मे नहीं पहुँचता। चोटियों पर सब कहीं फैला रहता है। चोटियों के निचले भाग में वह केवल दोपहर को या गर्मी के दिनों मे पहुँचता है। घाटी मे प्रकाश नहीं ही पहुँचता। इस चित्र मे सूर्य से पूर्णतया प्रकाशित स्थान ज्ञात (conscious) मन का प्रतिनिधि (representative) है; चोटी का निचला भाग जहाँ प्रकाश केवल दोपहर को पड़ता है 'ईषद्-ज्ञात' (pre-conscious) मन का प्रतिनिधि है; और वह घाटी जहाँ प्रकाश कभी नहीं पहुँचता 'अज्ञात' (unconscious) मन का प्रतिरूप है। हमे ज्ञात मन के बारे मे पूर्ण ज्ञान होता है। इसी कारण उसे पूर्ण प्रकाशित स्थान का रूप दिया गया है।

ज्ञात मन की विशेषताएँ

१. मन का यह भाग जाग्रत अवस्था मे क्रियाशील रहता है।

२. यह वास्तविकता-सिद्धान्त (reality principle) से संचालित होता है। अर्थात् हमारी चेतनावस्था की क्रियाएँ प्रायः वही होती हैं जो वातावरण और बाह्य परिस्थिति से प्रेरित और प्रभावित हैं।

३. मन का यह भाग विचारशील है: किसी भी क्रिया को करने से पहले यह उस पर सोच-विचार कर लेता है।

४. इसका संबंध 'ज्ञान' से है, 'आवेग' (temporary emotion) से नहीं।

५. इसकी इच्छाएँ तथा आकांक्षाएँ अधिकतर विचारगम्य होती हैं; तर्क द्वारा वे समझी और संतुष्ट की जा सकती हैं।

ईपद्-ज्ञात मन (pre-conscious) में उन विचार-भावनाओं का स्थान है जिनका हमें ज्ञान नहीं रहता, पर किसी भी समय परिस्थिति अनुकूल बनते ही वे चेतन मन में प्रवेश कर सकती हैं। इस कारण मन के इस भाग की तुलना चोटी के निचले भाग से की गई है जो केवल निम्न और थोड़े समय ही प्रकाशित होता है। साधारणतः जीवन में अनेक प्रकार के अनुभव होते रहते हैं। प्रत्येक अनुभूति की चेतना हर घड़ी नहीं रहती, हाँ चाहने पर सहज ही उन्हें ज्ञात (conscious) मन में लाया जा सकता है। ऐसे विचार जिनकी चेतना नहीं रहती, पर जिनका पुनरावाहन किया जा सकता है, ईपद्-ज्ञात (pre-conscious) मन में रहते हैं। ये विचार 'ध्यान' (attention) के 'सीमान्त-भाग' (marginal region) पर रहते हैं, 'केन्द्रीय-भाग' (central region) में नहीं। उदाहरण के लिये, एक कलाकार है। वह कल्पनालोक में बैठा कूची और रंग से चित्र बनाने में संलग्न है। गर्मी के दिन हैं : पंखा चल रहा है कि कलाकार को गर्मी न लगे। सहसा पंखा रुकते ही उसकी कल्पना-लड़ी टूट जाती है और वह कह उठता है : यहाँ गर्मी है ! चित्र बनाते समय, अब तक, वह चित्र कलाकार के ध्यान की केन्द्र-स्थली में था; बहिर्जगत् का सब ज्ञान-बोध ध्यान-कूल पर। और क्योंकि वह बाहर कूल पर ही था इसलिये वातावरण में परिवर्तन होते ही उसे ध्यान-केन्द्र में आते देर न लगी। वातावरण—बहिर्जगत्—के विषय में कलाकार सजग हो उठा, जिसका कुछ ही समय पहले उसे ज्ञान भी न था। इस प्रकार ईपद्-ज्ञात मन की भावनाएँ सहज ही ज्ञात मन में प्रवेश कर सकती हैं।

अज्ञात मन (unconscious) की इच्छाओं का ज्ञात (conscious) और ईपद्-ज्ञात (pre-conscious) मन में प्रवेश करना सहज-साधारण बात नहीं। अज्ञात मन में प्रायः वे ही इच्छाएँ संचित रहती हैं जो ज्ञात मन में से बहिष्कृत हैं या स्वभाव से अनुचित और अग्राह्य होने के कारण चेतना में कभी न आने पायी हों। इसी कारण अज्ञात मन की तुलना उस घाटी से की गई जहाँ सूर्य का प्रकाश कभी नहीं पहुँचता। अज्ञात और ईपद्-ज्ञात मन के बीच एक 'द्वारपाल' रहता है जो अज्ञात मन की अवांछित इच्छाओं को ईपद्-ज्ञात

तथा ज्ञात मन मे आने से रोक देता है। फ्रायड की शब्दावली मे इसे 'सेन्सर'* कहते हैं। इस कारण अज्ञात मन को अव्यक्त इच्छाएँ प्रकट करने मे कुछ चतुराई बरतनी पड़ती है: अर्थात् वह उन्हें ऐसा रूप देता है जो ज्ञात मन को स्वीकार हो।

ईषद्-ज्ञात और अज्ञात मन का भेद

१. ईषद्-ज्ञात मन मे संचित अनुभूतियाँ सहज ही ज्ञात मन मे प्रवेश कर सकती हैं जब कि अव्यक्त इच्छाओं पर प्रतिबन्ध रहता है।

२. ईषद्-ज्ञात मन की कार्य-व्यवस्था सहज और साधारण है; अज्ञात मन को अपने भाव व्यक्त करने के लिये चाल चलनी पड़ती है। इसका विशेष उल्लेख चौथे प्रकरण मे किया गया है।

३. ईषद्-ज्ञात मन की इच्छाएँ अपने मे बुरी या अनुचित नहीं होतीं। स्वभाव मे वे बहुत कुछ ज्ञात मन की इच्छाओं के समान होती हैं और अज्ञात मन की इच्छाओं से भिन्न-विरोधी हैं।

४. ईषद्-ज्ञात मन मे जो विषय निहित हैं उनके बारे मे बहुत कुछ बोध रहता है, किन्तु अज्ञात मन का ज्ञान मन के विश्लेषण बिन सम्भव नहीं।

इस प्रकार फ्रायड ने मन को तीन भागों—ज्ञात, ईषद्-ज्ञात और अज्ञात—मे रखा है और उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

युंगवाद

'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान' (*Analytical Psych*[illegible]) के प्रवर्त्तक

* CENSOR:—फ्रायड की यह धारणा (concept) बड़ी दूरदर्शी है। इसका अस्तित्व सहज ही अनुभव किया जा सकता है। मानव की विभिन्न क्रियाओं का निरीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मनःक्षेत्र मे कोई ऐसा सूक्ष्म तत्व है जो प्रकृत इच्छा-वासनाओं की अभिव्यक्ति में नैतिक प्रतिबन्धक का कार्य करता है। यही कारण है कि अज्ञात मन की इच्छाओं की चेतना नहीं होती, और यदि होती भी है तो विकृत (distorted) रूप में।

युंग ने मन को दो भागों मे विभाजित किया है—ज्ञात और अज्ञात। अज्ञात मन की कल्पना उन्होंने विशद रूप मे की है। युंग के अनुसार उसके दो भाग हैं—

१. व्यक्तिगत अज्ञात मन (personal unconscious)

२. सामूहिक अज्ञात मन (collective unconscious)

व्यक्तिगत अज्ञात (personal unconscious) मन मे दबायी हुई इच्छाएँ संचित रहती हैं। परिस्थिति और सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण जब कभी कोई प्रकृत इच्छा दबायी जाती है तो वह ज्ञात मन से निकल कर व्यक्तिगत अज्ञात मन मे समा जाती है। साथ ही, जीवन की अनुभूतियाँ भी, समय जिन्हें धीरे-धीरे भुला देता है, उनके स्मृति-चिह्न भी मन के इसी भाग मे बने रह जाते हैं। यही कारण है कि वर्षों की भूली-पुरानी घटनाएँ भी समय या आवश्यकता आने पर विस्मृति से उठकर हमे याद हो आती हैं।

सामूहिक अज्ञात (collective unconscious) मन मे जातीयता के गुण (racial characteristics) समाविष्ट रहते हैं। दूसरे शब्दों मे, यह भाग जातीयता के गुणों—अर्थात् पूर्वजों से प्राप्त गुण-विशेषताएँ जो प्रत्येक व्यक्ति मे होती हैं—का कोष है। ये जातीयता के गुण 'भाव-प्रतिमाओं' के रूप मे होते हैं। युंग के शब्दों मे इन्हें 'आरचेटाइपस' कहते हैं।

ये भाव-प्रतिमाएँ कई प्रकार की होती हैं। 'ऐनिमा' (anima) की भाव-प्रतिमा स्त्री-गुण विशेषता का प्रतीक है। जिस पुरुष मे इस भाव-प्रतिमा (archetype) की प्रधानता होती है उसमे स्त्री-गुण अधिक रहते हैं। ऐसे पुरुष भीरु-लजीले स्वभाव के होते हैं। उनमे आत्म-स्थापन (self-assertion) की वृत्ति लुप्त रहती है और हीनत्व-ग्रंथि (inferiority-complex) बन चलती है। इसी प्रकार जिस स्त्री मे 'ऐनिमस' (animus) की प्रधानता रहती है उसमे पुरुषत्व के गुण अधिक होते हैं। वे स्त्रियाँ पुरुषों से समानता और स्पर्धा लेती हैं, उनमे शासन की प्रवृत्ति प्रमुख रहती है।

ये दोनों भाव-प्रतिमाएँ प्रत्येक स्त्री और पुरुष के सामूहिक अज्ञात मन (collective unconscious) मे रहती हैं, किन्तु इनकी प्रधानता के अनुपात मे अन्तर होता है। किसी पुरुष मे ऐनिमस (animus) की प्रधानता

रहती है, किसी मे ऐनिमा की; यही बात स्त्रियों के विषय मे भी है। किस व्यक्ति मे किस भाव-प्रतिमा (archetype) की प्रधानता है इसी पर बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व का प्रकार अवलम्बित रहता है। इन दोनों के अतिरिक्त और भी कई भाव-प्रतिमाएँ मानव के अज्ञात मन मे हैं जिनका उल्लेख आगे किया जायगा।

इस प्रकार डॉ० युंग का अज्ञात मन का सिद्धान्त विशेष विशद है। उनके व्यक्तिगत अज्ञात मन (personal unconscious) की धारणा-कल्पना फ्रायड के समूचे अज्ञात मन की धारणा-कल्पना को ढाँक देती है। परन्तु यह आक्षेप रहते भी यह मानना पड़ेगा कि फ्रायड वास्तव मे अज्ञात मन के सिद्धान्त के जन्म-दाता हैं। आगे जाकर फ्रायड की मन संबंधी धारणा और भी विकसित हुई। ज्ञात (conscious), अज्ञात (unconscious) और ईषद्-ज्ञात (pre-conscious) मन की धारणा-कल्पनाओं (concepts) के स्थान पर अहं (ego), इदम् (Id), और नैतिक मन (super-ego) की धारणाओं (concepts) का जन्म हुआ।
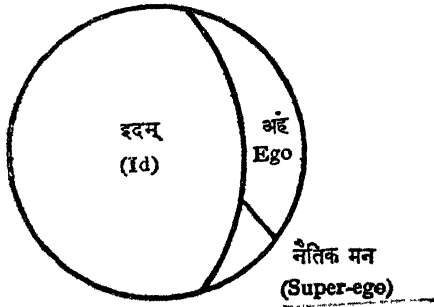
इदम् की विशेषताएँ

'इदम्' और 'अज्ञात मन' तथा 'अहं' और 'ज्ञात मन' मे काफी समानता होते भी हम उन्हें परस्पर तद्रूप नहीं कह सकते। इस कारण इदम्, अहं और नैतिक मन के विशिष्ट लक्षणों का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। इदम् की विशेषताएँ हैं:—

१. मन का यह भाग अज्ञात है। इसके विषय विचार-वस्तु (contents) का ज्ञान नहीं होता।
२. यह 'ऐन्द्रिक वासना-तृप्ति सिद्धान्त' (pleasure principle) से शासित है। परिस्थिति और समाज के नियमों का इस पर कोई प्रभाव नहीं। इसका उद्देश्य मानव की प्रकृत काम-वासनाओं की तुष्टि करना है, और इस कारण यह उन्हीं विषय, विचार और क्रियाओं के पक्ष मे रहता है जो उस उद्देश्य के अनुकूल हों।
३. यह नीति या अनीति नहीं जानता, न ही भले-बुरे आचरण का इसे ज्ञान है। यह विवेक-रहित, अबोध (a-moral) है। इसकी क्रियाएँ उन्मुक्त, स्वचालित हैं : भले-बुरे की भावना से वे निर्धारित नहीं होतीं।
४. यह दबी-दबायी इच्छा-वासनाओं का भाण्डार है। इसकी इच्छाएँ प्रकृत और अव्यवस्थित रूप मे रहती हैं। सब इच्छाएँ या तो काम सम्बन्धी होती हैं या विद्रोह प्रकृति की, और तुष्टि के लिये सदैव प्रयत्न-शील रहती हैं। सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय होने के कारण अधिक-तर काम-वासनाएँ दबा दी जाती हैं और तब वे मन के इस भाग मे आकर स्थान बना लेती हैं। फ्रायड के अनुसार मानव मे काम-प्रवृत्ति की प्रधानता होती है और अन्य प्रवृत्तियाँ उसी के भिन्न-भिन्न रूप हैं।
५. यह 'कामशक्ति' (libido) का कोष (reservoir) है। मन की क्रियाओं का दायित्व, चाहे वे क्रियाएँ उच्च कोटि की हों अथवा निम्न कोटि की, इसी पर है।
६. पूर्वजों द्वारा प्राप्त जातीय गुण-विशेषताएँ (racial characteristics) भी इसी मे समाविष्ट रहती हैं।
७. इसी मे जीवन मरण की वृत्तियों का संघर्ष (conflict of Eros and Thanatos) भी चलता रहता है।

अज्ञात मन और इदम् का यदि तुलनात्मक अध्ययन करें तो जान पड़ेगा

कि कुछ विशेष लक्षणों मे समानता होते भी पहले वर्गीकरण के अज्ञात मन और पिछले वर्गीकरण के इदम् की धारणाओं मे अन्तर है। इसका प्रधान कारण यह है कि अज्ञात मन का कुछ भाग अहं (ego) के अधिकार मे है—यद्यपि यह भाग अनुपात मे इदम् (Id) द्वारा अधिकृत भाग से बहुत छोटा है।

फ्रायड की अहं (ego) सम्बन्धी धारणा 'ज्ञात मन' का प्रतिनिधित्व करती है। अहं अपने विषय, कार्य-प्रणाली (mechanism) तथा लक्ष्य द्वारा किस प्रकार इदम् (Id) का प्रतिद्वन्द्वी है, यह जानने के लिये अहं की विशेषताओं का उल्लेख करना आवश्यक है।

अहं की विशेषताएँ

१. अहं चेतन और विचारशील है।

२. इसका संबंध अधिकतर बाह्य जगत् और वास्तविक जीवन से है।

३. यह तीन शक्तियों—बाह्य जगत् के नियम, इदम् की प्रकृत प्रवृत्ति के वेग-दबाव और 'नैतिक मन' के सिद्धान्त—मे मध्यस्थता करता है, अर्थात् उनकी पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं मे समझौता लाता है, जिससे हमारे व्यक्तित्व का संतुलन (balance of personality) भंग न हो। बाह्य जगत् मे मनुष्य नियमों से बँधा है। इदम् (Id) की प्रकृत इच्छा इस प्रकार के बंधनों को तोड़ना चाहती है। परिणाम यह होता है कि बाह्य जगत् उसे एक ओर खींचता है, प्रकृत इच्छाएँ दूसरी ओर। नैतिक मन (super-ego) का नियम तो और भी कड़ा है। इसके साथ प्रकृत इच्छाओं की तुष्टि का प्रश्न ही नहीं उठता। नैतिकता के कड़े नियमों से संचालित होने के कारण उसका प्रतिबन्ध कठोर रहता है। इस प्रकार ये तीन शक्तियाँ (forces) हमे तीन विभिन्न रास्तों पर ले जाने का प्रयत्न करती हैं।

४. अहं (ego) नियमित रूप से नैतिक मापदण्डों (moral standards) से संचालित होता है।

५. निद्रावस्था मे अचेतन रहने पर भी अहं अज्ञात मन की इच्छाओं पर

प्रतिबंध बनाये रखता है। इसके कारण अज्ञात मन की इच्छाएँ स्वप्न मे भी अपने स्वाभाविक रूप मे प्रकट नहीं हो पातीं।

६. इसके विषय-विचार (contents) शब्द के रूप मे हैं। 'इदम्' की तरह चित्ररूप (pictorial representation) मे नहीं हैं।

इन विशेषताओं को देखते हुए 'अहं' (ego) सम्बन्धी बाद की धारणा और फ्रायड की ज्ञात मन सम्बन्धी पूर्व की धारणा मे काफी सीमा तक तादात्म्य (identification) स्थापित किया जा सकता है।

फ्रायड के 'नैतिक मन' (super-ego) की धारणा की तुलना आचार-शास्त्र (Ethics) मे प्रयुक्त 'अन्तःकरण' से की जा सकती है। यह बाल्यावस्था मे ही अर्जित नीति की नियमावलि (earliest moral code of the child) है। बाल्यावस्था मे हम माता-पिता तथा शिक्षकों के सम्पर्क मे आते हैं। वे नीति की बातें बतलाते हैं। प्रकृत इच्छा कुछ और रहती है। इससे भावना-ग्रंथियाँ (complexes) पड़ती हैं और फलस्वरूप नैतिक मन का निर्माण होता है। फ्रायड के अनुसार हमारी भावना-ग्रंथियाँ बाल्यावस्था मे ही पड़ती हैं और उसी समय 'नैतिक मन' का प्रस्फुटन होता है।

'नैतिक मन' की विशेषताएँ

१. नैतिक मन अहं (ego) की क्रिया तथा आदर्श का प्रतिफल है। ऐसा होते भी यह 'अहं' पर शासन करता है। इस शासन का प्रमुख कारण है 'नैतिक मन' (super-ego) की कठोर नीति और अनीति की भावना।

२. नैतिक मन (super-ego) नैतिकता के आधार पर हमारी क्रियाओं की आलोचना अव्यक्त रूप से करता है। इस आलोचना के फलस्वरूप अहं मे एक अव्यक्त अपराधी भाव (unconscious sense of guilt) आ जाता है। अपनी अक्षुण्यता बनाये रखने के लिये अहं (ego) इस भाव का दमन कर देता है।

३. मन का यह भाग अन्त:करण का पर्याय समझा जाता है, यद्यपि यह हमारे परिचित अन्त:करण से भी अधिक नैतिक है।
४. यह अहं की पहुँच के बाहर है, पर इदम् (Id) से इसका निकट सम्पर्क है।
५. नैतिक मन (super-ego) के होने के कारण द्विभाव (Ambivalence)[1] का बोध नहीं होता।
६. नैतिक मन के कारण मातृ-पितृ कामेच्छा (*Oedipus desire*)[2] की चेतना नहीं होती। फ्रायड के इस सिद्धान्त का विरोध किया

---

१ Ambivalence—फ्रायड की यह धारणा यद्यपि निरीक्षण तथा अनुभव के आधार पर निर्धारित की गई है, फिर भी साधारण तौर पर इसमें विश्वास नहीं होता। इस धारणा के अनुसार हर एक व्यक्ति का मित्र-संबंधी के प्रति दोहरा भाव (dual attitude) रहता है। यदि कोई व्यक्ति किसी को जाग्रत मन में बहुत प्यार करता है तो इसका अर्थ है कि सुप्त मन मे वह उससे घृणा करता है। यह बात फ्रायड के दृष्टिकोण से सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति मे हर अवस्था मे पाई जाती है बच्चों के माता-पिता के प्रति व्यवहार मे यह दोहरा भाव (dual attitude) स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उनमे माता-पिता के प्रति ज्ञात मन मे तो श्रद्धा और प्रेम का भाव रहता है, लेकिन अज्ञात मन मे घृणा का। विक्षिप्तावस्था मे भी इसका प्रमाण मिलता है। विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ है कि यह भावना 'स्थिर भ्रम रोग' (paranoia) के रोगियों मे विशेष रूप से पाई जाती है। इन रोगियों का अपमान-भ्रम (delusion of persecution) केवल उनके प्रिय के प्रति सुप्त मन के घृणा के भाव का आरोपण मात्र है। इसका उदाहरण प्राचीन काल की प्रचलित प्रथा मे भी विशेष मिलता है। उस समय किसी को राज-पद पर प्रतिष्ठित करने से पहले उसे मार-मार कर अधमरा किया जाता था। अधिकतर जनता अपने शत्रु को ही राजा बनाती थी, जिससे बदला लिया जा सके। इन प्रथाओं तथा साधारण-असाधारण मनुष्यों की क्रियाओं का अवलोकन तथा विश्लेषण करने पर फ्रायड की यह 'द्विभाव' (ambivalence) की धारणा आधारहीन नहीं लगती।

२ यह सिद्धान्त ग्रीक पुराण की 'इडीपस' की आख्यायिका से लिया गया है। कहा जाता है कि 'इडीपस' ने अपने पिता की हत्या की और माँ से विवाह किया। पर वह यह नहीं जानता था कि जिसकी वह हत्या कर रहा है वह उसका पिता है और जिससे वह विवाह करने जा रहा है उसकी माँ।

गया। यह हास्यास्पद लगता है कि मातृ-पितृ कामेच्छा के कारण ही लड़कों की माँ और लड़कियों का पिता की ओर विशेष आकर्षण होता है।

७. नैतिक मन (super-ego) का अधिक भाग अज्ञात होता है और इसका संबंध विशेषकर जातीय गुण से है।

आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से मनोगठन का संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। अज्ञात मन के विस्तार को देखकर अब प्रश्न यह उठता है कि मन की धारणा (concept of mind) मे इसका क्या स्थान है।

१. अज्ञात मन मे संचित विचार और इच्छाएँ ज्ञात मन से कहीं समृद्ध हैं। जब हम कोई पिछली घटना स्मरण करने का प्रयत्न करते हैं तब इसकी समृद्धता का प्रमाण मिलता है। जीवन मे ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब हम भूली-बीती घटनाएँ स्मरण करने के लिए व्यग्र हो उठते हैं। यत्न और श्रम से वे कभी-कभी स्मृति-पटल पर आ जाती हैं, कभी सारे उपाय विफल जाते हैं। अतीत की घटनाएँ, अर्थात् उनकी स्मृति, संचित रखने का तथा आवश्यकता पर उन्हें प्रत्यक्ष ला देने का श्रेय अज्ञात मन को है। इस प्रकार की घटनाओं के निरीक्षण के बाद फ्रायड इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मानव के मन मे एक ऐसा स्थान है जिसमे इस प्रकार के अनुभव इकट्ठे किये गये हैं और उनको सामान्य रूप से प्रायः स्मरण नहीं किया जा सकता। अबाध मनःआयोजन (free-association) या सम्मोहन (hypnotism) के विशेष यंत्र द्वारा उनका पुनरावाहन किया जा सकता है। यह प्रमाणित करता है कि जो विचार ज्ञात (conscious) और ईषद्-ज्ञात (pre-conscious) मन मे नहीं हैं वे अज्ञात (unconscious) मन मे हो सकते हैं। अज्ञात मन एक बड़ा भाण्डार है जिसमे ज्ञात मन से बहिष्कृत इच्छाएँ ही नहीं, वरन् ऐसी भी इच्छाएँ रहती हैं जो हमारी चेतना मे कभी न आई हों। केवल यही नहीं कि अज्ञात मन विषय-वस्तु (contents) मे ज्ञात मन से अधिक भरा-पुरा है, बल्कि इसके विचार भी विशेष संवेगात्मक होते हैं। अव्यक्त विचार तथा इच्छाएँ (unconscious desires) विशेष रूप से संवेगात्मक होती हैं, इस बात का ज्ञान फ्रायड को अबाध मनः-

आयोजन के यंत्र द्वारा हुआ। संवेगों से संबंधित होने से अज्ञात मन का प्रभाव व्यक्तित्व और चरित्र-गठन पर अत्यधिक पड़ता है। वास्तव मे व्यक्तित्व तथा चरित्र अज्ञात मन के स्वभाव तथा विषय पर आश्रित है।

२. ज्ञात और अज्ञात मन के विचारों मे सामंजस्य नहीं है। इसका प्रमाण संज्ञाहीनावस्था (anesthesia) और निद्रा-विचरण (somnambulism) मे मिलता है। विक्षिप्तावस्था मे रोगी बहुधा ऐसी बातें करता है जो ज्ञात मन की नहीं हो सकतीं। यही बात निद्रा-विचरण में भी होती है। इस अवस्था में मनुष्य सोया-सोया घूमता है। उसका व्यवहार, उसकी बातें, तथा क्रियाएँ ऐसी होती हैं मानो वह जाग्रत अवस्था मे ही है, जब कि वास्तव मे वह जाग्रत अवस्था मे नहीं होता। सबेरे को यदि उससे रात की बातें और व्यवहार के बारे मे कहा जाय तो वह कभी मानने को तैयार न होगा कि उसने उस प्रकार का असाधारण आचरण किया। ज्ञात और अज्ञात मन की इच्छाएँ परस्पर असंगत (incompatible) होती हैं, फिर भी हम उनसे प्रभावित होते हैं। यह अज्ञात मन की प्रधानता को प्रमाणित करता है। हमारी अनेक क्रियाएँ हैं जिनका ज्ञात मन के आधार पर कोई भी विवरण नहीं दिया जा सकता। वस्तुतः ऐसी क्रियाओं के लिये हमारा अज्ञात मन उत्तरदायी है।

३. संमोहनोत्तर घटनाएँ (post-hypnotic phenomena) इस बात के प्रमाण हैं कि मन में एक ऐसा भाग है जिसके विषय मे मनुष्य को चेतना नहीं रहती, किन्तु जो इतना अपरिचित होते भी किसी भी प्रकार की क्रिया के लिये उसे बाध्य कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति को सम्मोहित करके उसे कुछ निर्देश दिया जाय तो सुधि मे आने पर वह व्यक्ति बिना किसी के याद दिलाये ही निर्देशित कार्य कर आयेगा। इससे अज्ञात मन का अस्तित्व प्रमाणित होता है। उदाहरण के लिये, सम्मोहित अवस्था मे किसी व्यक्ति को सम्मोहक ने यह निर्देश दिया: 'देखो आज मंगलवार है, बुधवारकी साँझ को मुझसे रुपया लेकर बर्ट की 'ऐप्लाइड साइकॉलजी' अवश्य ला देना'। वह व्यक्ति होश मे लाया गया। होश मे आने पर उसे इस आदेश की स्मृति नहीं थी, किन्तु न जाने कसे बुधवार की साँझ को वह एकाएँक उठा और जेब में रुपया रखकर वह

पुस्तक लाने बाजार चला गया। यह आदेश उसके ज्ञात मन मे नहीं था, न उसके ईषद्-ज्ञात (pre-conscious) मन मे। वास्तव मे यह उसके अज्ञात मन मे था।

४. स्वप्नावस्था की क्रियाएँ भी अज्ञात मन की प्रधानता की द्योतक हैं। सर्वप्रथम फ्रायड ने ही स्वप्न का वैज्ञानिक निरूपण किया था और प्रमाणित किया था कि स्वप्न का संबंध अज्ञात मन से है। स्वप्न मे हमारी उन इच्छाओं का प्रदर्शन होता है, जो अव्यक्त हैं। निद्रावस्था मे भी हमारा अज्ञात मन सक्रिय रहता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रकृत इच्छाएँ स्वप्न की निराधार कल्पना (phantasy of the dream) के रूप मे प्रकट होती हैं। सामान्य दृष्टि से स्वप्न केवल दिन भर के अनुभवों, विचारों और घटनाओं का प्रदर्शन है, किन्तु वास्तव मे हरेक स्वप्न के पीछे एक बड़ा मानसिक इतिहास छिपा रहता है जिसका विवरण सरल नहीं।

५. दैनिक जीवन मे नित्य-प्रति मनुष्य जो भूलें करते हैं, उनका कारण भी अज्ञात मन ही है। किसी को पत्र लिखना भूल जाना, लिखते और बोलते समय शब्द छोड़ जाना, किसी व्यक्ति का नाम भूल जाना, तथा कोई काम निश्चय करके भी भूलने का स्वांग रचना—ये सब भूलें आकस्मिक घटनाएँ नहीं हैं। वास्तव मे इस प्रकार की भूलों का मनोवैज्ञानिक कारण होता है। बात यह है कि मानसिक क्षेत्र मे कार्य-कारण का वैसा ही घनिष्ठ संबंध है जैसा भौतिक क्षेत्र मे। मन संबंधी प्रत्येक क्रिया का कुछ न कुछ कारण होता है। ज्ञात मन जब किसी क्रिया का कारण नहीं दे सकता तो कारण समझने के लिए हमे अज्ञात मन मे खोज करनी पड़ती है। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र मे कोई घटना या क्रिया आकस्मिक नहीं होती। इन सब का तात्पर्य यह है कि दैनिक जीवन पर भी अज्ञात मन का प्रभुत्व रहता है।

६. सब से बड़ा क्षेत्र जिसमे अज्ञात मन की प्रधानता विशेष रूप से देखी जाती है मानसिक रोगों से संबंधित है। मानसिक रोगों के उपचार का अर्थ है अज्ञात मन की खोज करना। फ्रायड ने तो यहाँ तक कहा है कि जिस घड़ी रोगी को अपने सुप्त मन की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हो जाता है वह

नीरोग हो जाता है। रोगों का मुख्य कारण अज्ञात मन की भावना-ग्रंथियाँ (complexes) हैं। इन ग्रंथियों को सुलझाना ही मनःसमीक्षक का प्रधान उद्देश्य है। इस प्रकार इस आधार पर अब यह प्रमाणित हो जाता है कि हमारे व्यक्तित्व पर भी अज्ञात मन का भरपूर प्रभाव है। अज्ञात मन का स्वरूप, विशेषता और कार्य-प्रणाली को जानने की आवश्यकता विक्षिप्तावस्था मे अत्यधिक पड़ती है।

इस तरह मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के जीवन मे अज्ञात मन की धारणा की प्रधानता का स्थान निर्धारित किया और यह घोषित किया कि मनुष्य की क्रियाओं का वास्तविक संचालक अज्ञात मन है।

३

अज्ञात मन के लक्षण

Characteristics of Unconscious

मानसिक व्यापार-व्यवहार के साथ अज्ञात मन का क्या संबंध है इस पर प्रकाश डाला जा चुका है। अब अज्ञात मन की विशेषता बताना आवश्यक है। अज्ञात मन सम्पूर्ण मन का एक बड़ा—लगभग तीन चौथाई—भाग है। युंग ने मन की तुलना सागर से की है जिसमे ज्ञात मन केवल एक द्वीप के समान है। जर्मन भाषा मे अज्ञात मन को 'अनबिवस्ट' कहते हैं। इसका अर्थ अंग्रेजी मे 'अन्नोन' अर्थात् 'अज्ञात' है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि अज्ञात मन मे वे ही विचार संचित हैं जिनका हमे अनुभव नहीं होता और जिन्हें हम नहीं जानते, जैसा कि साधारणतः समझा जाता है। वास्तव मे अज्ञात मन एक अनुभवात्मक मानसिक शक्ति (positive psychic force) है। सामान्य जीवन मे भी हम अज्ञात मन की प्रतिक्रिया (reaction) का अनुभव करते हैं। मानसिक रोग के रोगियों को देखकर हमारे मन मे स्वाभाविक रूप से यह भावना आती है कि वे किसी अव्यक्त शक्ति के हाथों के खिलौने हैं, जिस पर उनका कोई अधिकार नहीं है। पहले अज्ञात मन से संचालित क्रियाओं का कारण भूत-प्रेत समझा जाता था। इसी कारण मूर्छा आने पर झाड़-फूंक की जाती थी। परन्तु आधुनिक मनोविज्ञान मे नये-नये तत्त्वों के अन्वेषण से ऐसे अवैज्ञानिक विचारों मे परिवर्तन हो गया। मानसिक रोग के आधार पर अज्ञात मन का अस्तित्व प्रमाणित किया गया। अज्ञात मन वास्तव मे कोई निरी कल्पना (theoretical concept) नहीं; यह अनुभव का विषय है।

स्वप्नों से भी यह प्रमाणित हो सकता है कि अज्ञात मन एक अनुभवात्मक मानसिक शक्ति (positive psychic force) है। निद्रावस्था मे हमारी चेतन क्रियाएँ मौन हो जाती हैं। बाह्य जगत् का हमे ज्ञान नहीं रहता, फिर भी हम स्वप्न देखते हैं और स्वप्न मे का सारा व्यापार-व्यवहार करते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसका विचारयुक्त विवरण यही है कि निद्रावस्था मे भी हमारा अज्ञात मन सक्रिय रहता है, जिसके कारण हमे स्वप्न मे अनेक ऐसी कल्पित वस्तुएँ भी दिखाई देती हैं जिनका बाह्य अर्थात् जाग्रत जगत् से कोई संबंध नहीं होता। वास्तव मे निद्रावस्था मे अज्ञात मन अधिक सजग रहता है और इसका प्रमुख कारण है ज्ञात मन के प्रतिबंधों का उस समय शिथिल होना। मन का यही भाग हमारी अनुभूतियों मे तारतम्य रखता है। इस प्रकार यह कहना अत्युक्ति न होगा कि अज्ञात मन एक अनुभवात्मक मानसिक शक्ति है।

यही शक्ति हमारी शारीरिक और मानसिक—चेष्टात्मक (conative), वोधात्मक (cognitive) और संवेगात्मक (emotive)—क्रियाओं का संचालन करती है। मन के इस भाग का प्रभाव हमारे व्यवहार और विचारों पर परोक्ष रूप से सदैव पड़ता रहता है। इसी पर हमारे व्यक्तित्व का विकास आश्रित है। किसी व्यक्ति के अज्ञात मन मे विरोधी भावों के द्वन्द्व (conflict) से जितनी ही अधिक भावना-ग्रंथियाँ (complexes) पड़ जाती हैं, उतना ही जटिल और संघर्षमय उसका जीवन हो जाता है। उदाहरणार्थ, एक युवक का किसी युवती से प्रथम दर्शन पर प्रेम हो गया। सामाजिक बंधनों ने उस युवक को वास्तविक भाव दबाने के लिये बाध्य किया। फिर अपनी इच्छा के विरुद्ध कहीं अन्यत्र उसने विवाह किया और साधारण दाम्पत्य जीवन बिताने लगा। समय बीतते वह पुरानी प्रेम-कहानी भूल गया। चेतन मन मे इस घटना के संबंध मे अब सब मौन है; किन्तु अज्ञात मन अपने स्वभाव से विवश है और वह इस प्रकार की घटनाओं को नहीं भुला सकता। उसमे तो एक विचार-अनुभूति की स्थायी रेखा बन जाती है, और वे ही विस्मृत किन्तु संचित घटनाएँ हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित और निर्मित करती हैं। प्रेम-कहानी

भूल जाने पर भी अतीत की उस अनुभूति का प्रभाव उस युवक के जीवन पर बराबर ही पड़ता रहा ।

अज्ञात मन गतिशील (dynamic) है। इसमे सदा विरोधी इच्छाओं अथवा विचारों का संघर्ष चलता रहता है, यद्यपि हमे उसकी चेतना नहीं रहती। हमे ज्ञान नहीं रहता कि वह संघर्ष किन्हीं दो मूल प्रवृत्तियों मे है या मूल प्रवृत्ति और आदर्श मे। अज्ञात मन कभी निश्चेष्ट नहीं रहता; कुछ न कुछ क्रिया यहाँ होती ही रहती है।

अज्ञात मन मे केवल स्थूल विचार तथा मूल प्रवृत्तियों से बनती-उठती विचार-प्रतिमाएँ होती हैं। मूल प्रवृत्तियों का समाधान करनेवाली वस्तुएँ वहाँ शब्द के रूप मे न रहकर चित्र के रूप मे रहती हैं। अज्ञात मन का सबसे अधिक प्रभाव विक्षिप्तावस्था और स्वप्नावस्था की क्रियाओं पर पड़ता है, परन्तु इन क्रियाओं के निरीक्षण मात्र से हमे अज्ञात मन की इच्छाओं का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो जाता। इसका कारण यह है कि इन सब क्रियाओं मे हमारी अव्यक्त इच्छाएँ परोक्ष रूप मे प्रदर्शित होती हैं। दूसरे शब्दों मे, स्वप्न मे देखी वस्तुएँ हमारी प्रकृत इच्छाओं का समाधान वास्तविक रूप मे नहीं करतीं। मन की इच्छाएँ प्रतीक (symbol) रूप मे प्रकट होती हैं। विक्षिप्तावस्था की शारीरिक और मानसिक चेष्टाएँ सांकेतिक हैं : मानसिक रोग के लक्षण अव्यक्त इच्छाओं (unconscious desires) के प्रतीक (symbol) मात्र हैं।

अब प्रश्न यह है कि हमारे अज्ञात मन की इच्छाएँ अपने वास्तविक रूप मे क्यों नहीं प्रकट होतीं? इस पर मनोवैज्ञानिकों के अपने-अपने विचार हैं। फ्रायड के अनुसार इसका प्रमुख कारण है कि इनकी अभिव्यक्ति सामाजिक नियमों के अनुकूल नहीं। सामाजिक प्रतिबंधों के कारण सामान्य जीवन मे हम अपनी प्रकृत वासनाओं की इच्छानुसार पूर्ति नहीं कर पाते। इसलिये उनका दमन किया जाता है। पर दमन द्वारा किसी मूल प्रवृत्ति का नाश नहीं हो जाता, केवल ज्ञात मन से बहिष्कृत होकर वह अज्ञात मन मे चली जाती है। वे बहिष्कृत इच्छाएँ अन्य रूप मे प्रकट होती हैं, क्योंकि ज्ञात मन इन इच्छाओं को अपने प्रकृत रूप मे प्रकट होने मे बाधा डालता है।

युंग के मत से अज्ञात मन की विषय-वस्तु का अन्य रूपों मे व्यक्त होना इस दमन-क्रिया के कारण ही नहीं है; वह अज्ञात मन की सहज रीति है। अज्ञात मन की यह विशेषता है कि वह अपनी इच्छाओं तथा विचारों को उसी रूप मे व्यक्त करना नहीं चाहता। उसे 'परोक्ष प्रदर्शन' (indirect representation) अधिक रुचिकर है। फलस्वरूप अव्यक्त इच्छाओं का परोक्ष प्रदर्शन होता है। उदाहरणार्थ, किसी पुरुष का किसी स्त्री के प्रति स्वाभाविक आकर्षण है। मनोवैज्ञानिक भाषा मे कहा जायगा कि उसका झुकाव 'ऐनिमा' की भाव-प्रतिमा (*archetype of anima*) की ओर अधिक है। फलस्वरूप वह स्वप्न मे देखता है कि वह सागर-तट पर बैठा है। सहसा लहरों के थपेड़े खाती हुई तूफान से बच कर एक नाव वहाँ आ लगी। उसमे कई युवतियाँ थीं। वह दौड़ पड़ता है। प्रेमालाप होता है। इसी बीच युवक का पिता आ जाता है। युवक संकोच और खीझ मे उन युवतियों के पीछे छिप जाता है। युवतियाँ ठहाका लगाती हैं और उसकी निद्रा भंग हो जाती है। स्वप्न की युवतियाँ उसके अज्ञात मन के स्त्री-गुण (female characteristic) की प्रतिमा का द्योतक है। यह गुण एक जातीय विशेषता है। यह दमन से नहीं उत्पन्न होता।

अज्ञात मन 'ऐन्द्रिक वासना-तृप्ति सिद्धान्त' (pleasure principle) से संचालित होता है; वास्तविकता (reality) से उसका कोई संबंध नहीं। ज्ञात मन को किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पहले वास्तविकताओं के आधार पर विचार-विमर्श करना आवश्यक है। इसे सामाजिक प्रतिबन्धों, नैतिकता और अनैतिकता का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। इसके विपरीत अज्ञात मन सामाजिक नियमों से परिसीमित नहीं है। उसका काम केवल मूल प्रवृत्ति का समाधान करना है। शिक्षा से भी इसका सुधार नहीं हो सकता। शिक्षा तो केवल मस्तिष्क के प्रकाशित भाग को और भी प्रकाशित करती है। उसमे मनुष्य, उसकी प्रकृत इच्छाओं और स्वभाव को जानने-समझने तथा उनमे सुधार करने की क्षमता नहीं है।

बचपन की दुःख-भरी अनुभूतियों की पुनरावृत्ति अज्ञात मन मे सदैव हुआ करती है और ये ही अनुभूतियाँ विक्षिप्तता तथा स्वभाव और प्रकृति

की असाधारण बातों के विशेष कारण हैं। इस प्रकार की अनुभूतियाँ—जिन्हें फ्रायड की भाषा मे 'ट्रौमा'* (मानसिक आघात) कहते हैं—कभी हिस्टीरिया मे की हुई शारीरिक चेष्टाओं द्वारा प्रदर्शित होती हैं, कभी स्थिर-भ्रम रोगी (paranoiac) के भ्रमात्मक विचारों द्वारा। बात यह है कि अज्ञात मन मे बचपन की जो कुछ अनुभूतियाँ संचित होती हैं वे हमारी मन की क्रियाओं पर विशेष प्रभाव डालती हैं।

अज्ञात मन की इन विशेषताओं से यह स्पष्ट लगता है कि अज्ञात मन किस प्रकार ज्ञात मन से भिन्न है। वास्तव मे ज्ञात और अज्ञात मन के बीच कहीं सीमा-रेखा खींचना कठिन है क्योंकि दोनों मे बराबर ही आदान-प्रदान चला करता है। ज्ञात मन की इच्छाएँ बहुत कर अज्ञात मन मे अपना घर बना लेती हैं, और अज्ञात मन की अव्यक्त इच्छाएँ रूपान्तर से ज्ञात मन मे प्रवेश करती हैं।

---

* Trauma—painful experiences of early childhood.

४

अज्ञात मन की कार्य-पद्धति

Mechanisms of the Unconscious

अज्ञात मन की कार्य-पद्धतियाँ कई हैं । उनमे विस्थापन (displaceme-nt), संक्षिप्तीकरण (condensation), तादात्म्य, (identification) प्रक्षेपण (projection), प्रतीकीकरण (symbolization), कल्पना (phantasy), युक्त्याभास (rationalisation), उन्नयन (sublimation), दमन (repression) और प्रत्यावर्त्तन (regression) प्रमुख हैं । ये कार्य-पद्धतियाँ अज्ञात मन की रक्षा के हेतु क्रियमाण रहती हैं । हमारे अज्ञात मन मे ऐसी अनेकानेक इच्छाएँ हैं जो ज्ञात मन मे उसी रूप से प्रकट नहीं हो सकतीं । अज्ञात मन की कार्य-पद्धतियों से उन्हें वह रूप मिलता है जो ज्ञात मन को मान्य हो । इन कार्य-पद्धतियों की पहली विशेषता यह है कि ये कामशक्ति को जो कामभाव से निवत्त नहीं हुई हैं प्रकृत माध्यम के स्थान पर कुछ और विषय-वस्तु देती हैं; दूसरे, कामभाव से निवृत्त कामशक्ति इन कार्य-पद्धतियों के कारण वह रूप लेती है जो अहं से समन्वित है; तीसरे, ये पद्धतियाँ दीवार रूप मे हैं जो बिना परिमार्जित कामशक्ति को बिल्कुल ही नहीं आने देतीं । इस प्रकार अज्ञात मन की कार्य-पद्धतियों के कारण ज्ञात और अज्ञात मन मे एक प्रकार का अद्भुत समझौता लाया जाता है ।

विस्थापन (*Displacement*)

अज्ञात मन अपनी दबी-दबायी और कुंठित इच्छाएँ प्रकट करने के लिये विस्थापन कार्य-पद्धति (dynamism) का विशेष रूप से प्रयोग करता है।

इसमे हमारी मनः शक्ति-धारा एक विषय-विचार से हटकर दूसरे विषय-विचार की ओर चली जाती है। परिणाम यह होता है कि वास्तव के अनावश्यक विषय-विचार आवश्यक लगने लगते हैं और आवश्यक विषय-विचार अनावश्यक।* संवेग अपने वास्तविक विषय से हटकर किसी दूसरे विषय (substitute) पर स्थिर हो जाता है। और इस प्रकार संवेग (emotions) तथा संवेदनाओं (sensations) का संबंध यथार्थ वस्तु से हटकर अयथार्थ से हो जाता है।

विस्थापन (displacement) की क्रिया दबायी हुई इच्छाओं (repressed desires) और दमन करने की शक्ति (repressing force) मे समझौता लाती है। एक ओर अहं (ego) की मर्यादाएँ भंग नहीं होतीं, और दूसरी ओर इदम् (Id) का रूपान्तर मे समाधान हो जाता है। फ्रायड की दृष्टि से इस विस्थापन (displacement) का प्रमुख लक्ष्य है काम सम्बन्धी इच्छाओं को ऐसे विषय-विचार (object-idea) पर स्थिर करना जहाँ ज्ञात मन (conscious mind) कोई आपत्ति न कर सके। जैसे, किसी युवती का पति की मृत्यु के बाद पर-पुरुष से प्रेम करने के बदले अपने बच्चे मे मन रमाना। यह केवल कामशक्ति का उस दिशा को मुड़ना (transference) है जो सामाजिक दृष्टि से वांछनीय है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि विस्थापन (displacement) मे मनःशक्ति का मोड़ सदा उसी विषय की ओर हो जो समाज की दृष्टि से उचित और महत्त्व का है। कई दशाओं मे वह ऐसी दिशाओं को भी हो सकता है जो सामाजिक मापदण्डों से हेय या अनावश्यक हैं।

विस्थापन-क्रिया (mechanism of displacement) अधिकतर स्वप्न और विक्षिप्तावस्थाओं मे चलती है। इसके कारण हम अपनी इच्छाओं का

---

* Freud describes this *'displacement'* in Nietzche's phrase as *'transvaluation of all values.'* The work of the Libido is to strip the intensity from elements that are of high psychic value and then create new values by way of 'over exaggeration' for elements of small value.

वास्तविक, मूल स्वभाव नहीं पहचान पाते। अज्ञात मन का यह स्वभाव आवश्यकतानुसार आपोआप चलनेवाले यंत्र (automatic machine) के समान चलता रहता है। इसके कारण स्वप्न पहेली-से लगने लगते हैं। फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'इन्टरप्रेटेशन ऑव् ड्रीम्स' (*Interpretation of Dreams*) मे एक अपने स्वप्न का वर्णन किया है जो 'बोटैनिकल गार्डेन' के विषय मे है। वर्णन पढ़ने से यही लगता है कि स्वप्न का मुख्य विषय 'बोटैनिकल गार्डेन' है, पर विश्लेषण से उसका कुछ और ही अर्थ बनता है। इसी प्रकार कल्पनाग्रह (obsession) मे रोगी का इच्छा-विषय (object of interest) कुछ का कुछ हो जाता है और अनावश्यक विचारों-क्रियाओं मे वह इतना और ऐसा व्यस्त हो जाता है कि उसे किसी भी आवश्यक और उपयोगी काम या विचार के लिये समय ही नहीं मिलता। उदाहरण के लिए, लेडी मैकबेथ का हत्या के बाद हाथ धोना*। वह घटना केवल मनःशक्ति के विस्थापन का प्रमाण है, जिसके कारण मनुष्य इस शक्ति को वास्तविक वस्तु (real object) की ओर न लगा उसका विकल्प-प्रतिनिधि (substitute) खोजता है। विस्थापन की कार्य-पद्धति केवल स्वप्न और विक्षिप्तावस्था मे क्रियमाण नहीं होती; यह साधारण व्यक्तियों के भी जीवन मे चलती रहती है। इसके उदाहरण जोन्स के ग्रंथ 'पेपर्स ऑन साइकोएनैलिसिस' मे बहुत से दिये हैं। जोन्स का कथन है हरेक अवस्था मे विस्थापन का अर्थ है बाह्य जीवन मे एक विचार-वस्तु के स्थान पर दूसरे विचार-वस्तु का स्थानापन्न करना जो अधिक मान्य हो।

संक्षिप्तीकरण (*Condensation*)

संक्षिप्तीकरण भी अज्ञात मन की इच्छाओं तथा वासनाओं को व्यक्त करने की एक कार्य-पद्धति (mentaldynamism) है। इसके कारण अज्ञात

* यह दृष्टान्त शेक्सपिअर के नाटक 'मैकबेथ' से लिया गया है। लेडी मैकबेथ स्वभाव से ही बड़ी उच्चाकांक्षिणी थी। इस कारण उसने षड्यन्त्र रचकर किंग डन्कन की हत्या करवा डाली। हत्या के बाद उसका ही अन्तःकरण उसे कोसता है और वह अपने को ऐश-आराम मे भूल जाने के स्थान पर कुछ असाधारण व्यवहार करने लगती है। 'यह हाथ धोने की क्रिया' उन्हीं असाधारण क्रियाओं में से एक है।

(unconscious) मन की इच्छाएँ, जो अनेक और अनेक प्रकार की हैं, संक्षेप मे प्रकट होती हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि अज्ञात मन एक बड़ा कोश है जिसमे अनेकों विचार-इच्छाएँ समायी हैं, जिन्हें व्यक्त करना सरल नहीं। इन संचित इच्छाओं को व्यक्त करना ही संक्षिप्तीकरण (condensation) का उद्देश्य है, क्योंकि एक तो अज्ञात मन की सब इच्छा-वासनाओं को जिस-तिस रूप मे प्रकट करना सम्भव नहीं; और दूसरे कुण्ठित इच्छाओं को संक्षेप मे व्यक्त करने से वे चेतन मन के बहुत कुछ अनुकूल (agreeable) हो जाती हैं, जैसे वाक् विनोद (wit and humour) में।

संक्षिप्तीकरण (condensation) कई प्रकार से होता है। मुख्य प्रकार दो हैं—

१. दबी-घुटी और कुण्ठित इच्छा-वासनाओं मे से संक्षिप्तीकरण के समय जिन्हें सहज ही छोड़ा जा सके छोड़ दिया जाता है; इसमे बहुतेरी भावना-ग्रंथियाँ (complexes) अभिव्यक्ति नहीं पातीं।

२. वे अनेक विषय-विचार, जिनमे देश, काल और विशेषता साम्य (similarity of space, time and personal character) हों, किसी अन्य ऐसे एक विषय-विचार द्वारा व्यक्त हों जिसमे उन सब साम्यों का समन्वय (composite figure) रहे। इस प्रकार अज्ञात मन की अनेक इच्छा-वासनाओं का एक ही विषय-विचार समवेत प्रतिनिधित्व करता है।

इस 'कार्य-पद्धति' की यथार्थता स्वप्न और विक्षिप्तावस्थाओं की क्रिया-व्यवहारों के विश्लेषण से प्रमाणित हो जाती है। स्वप्न मे यह संभव नहीं होता कि सभी इच्छाएँ एक साथ और विस्तार से प्रकट हों। प्रायः स्वप्न का जितना वृत्तान्त स्वप्नद्रष्टा देता या दे सकता है वह समूचे स्वप्न का निरा अल्पांश होता है; पर यदि उसका विश्लेषण और संश्लेषण किया जाय तो उस अल्प वृत्तान्त के पीछे एक लंबी कहानी मिलती है। इस पर से स्वप्न-समीक्षक यह मान लेता है कि अज्ञात (unconscious) मन की इच्छाएँ अनेक अमित हैं और

संक्षिप्तीकरण (condensation) क्रिया के कारण वे संक्षेप मे प्रकट होती हैं। इसी प्रकार विक्षिप्तावस्था मे मनुष्य जो कुछ करता है उसके पीछे एक घना और लम्बा इतिहास छिपा रहता है।

तादात्म्य (*Identification*)

अज्ञात मन की इस तीसरी कार्य-पद्धति मे मनुष्य अपने अतीत के किसी दबे-कुण्ठित विषय का—जिसकी उसे कोई स्मृति नहीं और जो अज्ञात मन का एक भाग मात्र रह गया है—किसी नये बाहरी विषय से ऐसा कल्पित सम्बन्ध स्थापित करता है कि इस नये विषय के प्रति उसके अन्तर मे वही भावना बन जाती है जो अतीत के उस मूल विषय के प्रति थी। यह क्रिया मानसिक चिकित्सा के समय रोगी के अन्तर्जगत मे प्रायः चला करती है। ऐसे रोगी डॉक्टर के प्रति आकर्षण का अनुभव (positive transference) करते हैं क्योंकि वे अपने अज्ञात मन मे बसे अतीत के प्रेम-पात्र और इस डॉक्टर को एक-रूप पाते हैं। अज्ञात मन की इस विलक्षण कार्य-पद्धति के कारण डॉक्टर को सावधान रहने की आवश्यकता है, नहीं तो रोगी की भावना-ग्रंथि (complexes) सुलझाने के बदले डॉक्टर और उलझा देगा।

सामान्य मानसिक विकास की अवस्था मे भी अज्ञात मन की यह कार्य-पद्धति सक्रिय रहती है। इसी से बच्चों मे माता-पिता के समान होने की इच्छा तीव्र हो उठती है। यह 'प्रारम्भिक तादात्म्य' (primary identification) है। इसके आगे 'उत्तर तादात्म्य' (secondary identification) मे मनुष्य अपने अहं (ego) और प्रेम के बहिर्विषय मे सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और इसके कारण अन्त मे उसका वह अहं (ego) ही उसके प्रेम का विषय (object of love) हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि धीरे-धीरे वह अपने मे ही ऐसा लीन हो जाता है कि बाहरी जीवन और जगत मे उसकी रुचि नहीं रह जाती।

'तादात्म्य' (identification) मे, देखा जाय तो, अनुकरण (imitation) का भाव समाया हुआ है, पर वस्तुतः दोनों भिन्न क्रियाएँ हैं।

'अनुकरण' (imitation) चेतन क्रिया है; 'तादात्म्य' अचेतन पद्धति है। 'अनुकरण' मे सफलता मिलने पर वह क्रिया दोहरायी जाती है और असफल होने पर हीनत्व की भावना तथा निराशा आती है; 'तादात्म्य' (identification) की कार्य-पद्धति मे हम दूसरे व्यक्ति के गुण-दोष पहले ही अंगीकार (introject) कर लेते हैं और इस प्रकार उसकी भली या बुरी विशेषताएँ हमारे व्यक्तित्व का एक भाग हो जाती हैं।

प्रक्षेपण (*Projection*)

यह अज्ञात मन की एक आत्मरक्षार्थ क्रिया (protective measure) है जिसके द्वारा अज्ञात मन अपने अपराध-भाव (unconscious sense of guilt) को किसी बाहरी विषय पर आरोपित करके अपना भार हलका कर लेता है। यह आरोपण प्रायः अव्यक्त और अनजाने होता चलता है। उसका मूल, प्रमुख कारण अज्ञात मन का 'ऐन्द्रिक वासना-तृप्ति सिद्धान्त' (pleasure principle) से परिचालित होना है। इस सिद्धान्त से परिचालित होने के कारण जो विषय-आवेग वेदना देने वाले होते हैं उन्हें अज्ञात मन सहन नहीं कर सकता। ऐसे विषय-आवेग अधिकतर वही होते हैं जो अज्ञात मन मे किसी प्रकार की दोषी अथवा अपराधी भावना जगाते हैं। अज्ञात मन इस 'प्रक्षेपण' (projection) क्रिया मे उसी दोषी भावना को स्वीकार करने के बदले किसी अन्य विषय पर आरोपित कर देता है और उस दोष अथवा अपराध से सहज ही छुटकारा पा जाता है।

यह क्रिया 'स्थिर-भ्रम रोग' (paranoia) मे विशेष रूप से चलती है। 'स्थिर-भ्रम रोग' एक मानसिक रोग है। इसमे रोगी के चित्त मे कोई भ्रम घर कर लेता है जिसका कारण मूल मे किसी अतीत के विषय-विचार से अज्ञात मन मे बना अपराध-भाव है। इस अपराध-भाव को रोगी अनजाने मे अपने 'प्रिय' (object of love) पर आरोपित करता है और इस प्रकार ज्ञात मन मे अपने को दोषी न मान 'प्रिय' को दोषी ठहराता है—ऐसा भाव कि उसका प्रिय उसे प्यार नहीं करता बल्कि उसे ज़लील और अपमानित कर रहा

है। यदि विश्लेषण किया जाय तो पता लगेगा कि रोगी के अपराध-भाव (sense of guilt) का कारण उसके अज्ञात मन की प्रिय के प्रति उदासीनता तथा वैमनस्य का भाव है और वह उसी भाव का आरोपण अपने प्रिय पर कर देता है। यह बात विशेषकर उन 'स्थिर-भ्रम रोग' के रोगियों मे मिलती है जो 'अपमान-भ्रम' (delusion of persecution) के शिकार हैं। फ्रायड के ग्रन्थ 'कलेक्टेड पेपर्स' (Collected Papers) मे इसके कई उदाहरण हैं। नित के जीवन मे भी इस कार्य-पद्धति (dynamism) के उदाहरण मिलते हैं। कॉलेज मे बहुधा लड़कियाँ सोचती हैं कि सभी लड़के उनके प्रति आकर्षित हैं। वास्तव मे यह लड़कियों का भ्रम होता है और इस प्रकार के विश्वास मे केवल उनके अज्ञात मन की इच्छा का आरोपण है।

प्रतीकीकरण (*Symbolization*)

अज्ञात मन की इस कार्य-पद्धति के कारणउस की दबी-दबायी इच्छाएँ 'प्रतीक' (symbol) रूप मे प्रकट होती हैं—प्रतीक (symbol) अर्थात् कोई वह वस्तु या विचार जो किसी अन्य वस्तु या विचार का प्रतिरूप हो अथवा उसका स्थानापन्न बने। प्रतीक और उस मूल वस्तु या विचार मे, जिसका वह प्रतीक (symbol) है, एक अटूट संबंध होता है, जिसके कारण प्रतीक को न 'यथार्थ' वस्तु कहा जा सकता है, न 'अयथार्थ'। 'प्रतीक' अनेकों होते हैं और हमारी विभिन्न प्रकृत इच्छाओं की व्यंजना करते हैं। फ्रायड के अनुसार प्रत्येक प्रतीक मनुष्य की काम-वासना और उससे संबंधित क्रियाओं का ही द्योतक है। ये 'प्रतीक' स्वप्न, धर्म-पुराण गाथाओं और विक्षिप्तावस्था मे बराबर मिलते हैं। अज्ञात मन 'इनडोसाइकिक सेन्सर'* के निरीक्षण से बचने के लिये इन प्रतीकों का उपयोग करता है। उनके सहारे अज्ञात मन की प्रकृत इच्छाएँ सभी—भले ही रूपान्तर मे—अभिव्यक्ति पा जाती हैं। हाँ, उनका 'प्रतीक रूप' उनके 'प्रकृत रूप' का ऐसा परिवर्तित रूप होता है कि उन्हें और उनके वास्तविक स्वभाव का पहचानना असंभव रहता है। फ्रायड के इस

---

* पृष्ठ : २३

सिद्धान्त पर कि 'प्रत्येक प्रतीक का संबंध कामेच्छा से है' विशेष विवाद रहा। वास्तव मे जैसा युंग ने कहा है, किसी प्रतीक का अर्थ हम उस व्यक्ति के स्वभाव, स्थिति तथा वातावरण के आधार पर ही लगा सकते हैं। हम उसका कोई नियत और स्थायी अर्थ नहीं स्थापित कर सकते—कि अमुक प्रतीक का अमुक ही अर्थ है। फ्रायड के अनुसार प्रतीक अनेक हैं, पर वे विषय-विचार आदि जिनके प्रतीक हैं पाँच या छः ही होंगे—माता-पिता, जन्म-मरण, काम-क्रिया तथा काम संबंधी अंग इन्हीं के प्रतीक बहुत कर मिलते हैं। एक प्रकार से प्रतीकीकरण (symbolization) अज्ञात मन की इच्छाओं को व्यंजित करने का मुख्य साधन है; अन्य कार्य-पद्धतियाँ इसमे सहयोग भर देती हैं।

कल्पना-क्रिया (*Phantasy*)

अज्ञात मन की यह कार्य-पद्धति युवावस्था मे विशेष रूप से क्रियमाण रहती है और अचेतन रूप से विचार-क्रिया को निर्धारित करती है। इस पद्धति का क्रियमाण होना इस बात का द्योतक है कि व्यक्ति-विशेष का जीवन अपूर्ण है, उसे निराशा मिली है। इच्छाओं की पूर्ति का साधन न मिलने के कारण वह अपने को कल्पना मे खो बैठता है और वास्तविक जगत को छोड़कर कल्पित मे आनन्द-विभोर होता है। कल्पना के द्वारा वह अपनी आकांक्षा की पूर्ति करता है। वास्तविक जगत की कमी को कल्पना के द्वारा शांत कर लेता है। शरीर से दुर्बल व्यक्ति अपने को पहलवान की कल्पना कर प्रसन्न होता है; एकाकी बालक कल्पित साथी के साथ खेलता है; निर्धन अपने को धनी मान कर प्रसन्न होता है। बात यह है कि कल्पना मे मनुष्य स्वतंत्र होता है; धन, ऐश्वर्य, ओहदा, हरेक कमी की पूर्त्ति कर ले सकता है। ठोकरें, नियम-बंधन नहीं रह जाते। जीवन-संग्राम में थके रहने पर दिल-बहलाव हो जाता है। किन्तु कल्पित जगत मे अत्यधिक रमने पर मनुष्य की मानसिक अवस्था विकृत रूप ले लेती है। इसका प्रमाण असामयिक मनोह्रास के रोग मे विशेष रूप से मिलता है जिसमे मनुष्य अपना नाता-संबंध वास्तविक जगत से तोड़ देता है, अपने भाव-विचार इच्छा को अपने मे समेट हवाई किले बनाता रहता है। उसे प्रकार-प्रकार की भ्रम-भ्रान्तियाँ होने लगती हैं।

युक्त्याभ्यास (*Rationalization*)

इस कार्य-पद्धति के द्वारा मनुष्य अचेतन रूप से अपने किसी भी कार्य-विचार का युक्तिसंगत कारण ढूंढ़ लेता है। जब किसी वस्तु के प्राप्ति की इच्छा उठती है और वह वस्तु नहीं मिल पाती तब यह कहकर संतोष दिया जाता है कि उस वस्तु का कोई मूल्य-महत्व नहीं है। कहावत है, अंगूर नहीं मिले तो खट्टे हैं। यदि परीक्षा मे कम नम्बर मिले तो विद्यार्थी इसका कारण यह बतलावेगा कि परीक्षा के समय उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था; या तो उसे ऊँची श्रेणी पाने की अभिलाषा ही नहीं। इस पद्धति के क्रियमाण होने से किसी व्यक्ति की महत्ता नहीं बढ़ जाती, न तो वह समाज मे प्रशंसापात्र ही बनता है। केवल यह होता है कि वह अपने को अनुचित परिस्थिति मे होने से बचा लेता है जिससे अन्य व्यक्ति उसके प्रति तिरस्कार या मखौल का भाव न बना पावें। यह विधि आत्मरक्षार्थ है।

दमन (repression), उन्नयन (sublimation), तथा प्रत्यावर्तन (regression) का उल्लेख मानसिक शक्ति (psychic energy) के प्रसंग मे अगले अध्याय मे आयगा।

५

कामशक्ति

Libido

अब प्रश्न यह है कि वह कौन सी शक्ति है जो इन कार्य-पद्धतियों (mechanisms) का परिचालन करती है। शारीरिक शक्ति की भाँति अवश्य ही कोई मानसिक शक्ति है जो मन की क्रियाओं को प्रेरणा और गति देती है। फ्रायड की भाषा मे यह मनःशक्ति 'लिबिडो' (कामशक्ति) कही गई है। यही अव्यक्त रूप से हमे प्रकार-प्रकार के विचार और कार्य के लिये प्रेरित करती है। दूसरे शब्दों मे हमारी मन सम्बन्धी प्रत्येक क्रिया का संचालक 'लिबिडो' ही है। यह जीवन मे बचपन से ही सक्रिय रहती है। बच्चों के कितने ही कौतूहलपूर्ण प्रश्न तथा अनेक खेल-कूद के प्रकार इसके प्रमाण हैं। इस 'कामशक्ति' (libido) के विकास की कई अवस्थाएँ हैं:—

स्वतः काम पूर्णावस्था (*Auto-erotic stage*)

यह प्रारम्भिक अवस्था है। इस अवस्था मे बच्चों का मन केवल भोजन और मलमूत्र त्याग (excratory) सम्बन्धी क्रियाओं तक ही सीमित रहता है। अर्थात् यह 'कामशक्ति' जो बाद मे बाह्य वस्तुओं की ओर आकृष्ट होती है, बचपन मे शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों की प्रारम्भिक संवेदनाओं-आवश्यकताओं से ही सम्बन्धित रहती है।

स्वकाम पूर्णावस्था (*Narcissistic stage*)

यह स्वतः काम पूर्णावस्था (auto-erotic stage) और बाह्य वस्तु-प्रेम (allo-erotism) के बीच की अवस्था है। इस अवस्था मे बालक के

आकर्षण और प्रेम की वस्तु केवल अपना शरीर और अहं (ego) होता है। यही कारण है कि इस अवस्था मे वह बाह्य वस्तुओं मे रस नहीं लेता। उनमे उसकी रुचि वहीं तक सीमित रहती है जहाँ तक कि उनसे उसे कोई सुख या सन्तोष-प्रसन्नता मिलता है। यह विकास की साधारण अवस्था है। इसके बाद वह बाह्य वस्तुओं मे रुचि लेता है। परन्तु कभी-कभी विकास के दूसरे स्तर मे पहुँच जाने पर भी उसकी कामशक्ति अपने मे ही सीमित-संकेन्द्रित रह जाती है। तब यह असाधारण अवस्था का द्योतक है। इसका प्रमाण 'स्थिर-भ्रम रोग' (paranoia) और 'असामयिक मनोह्रास' (dementia praecox) के रोगियों मे विशेषकर मिलता है। 'स्थिर-भ्रम रोग' (paranoia) का उल्लेख किया जा चुका है। 'असामयिक मनोह्रास' (dementia praecox) भी एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसमे रोगी को भाँति-भाँति की भ्रान्ति (hallucinations) होती हैं। इस रोग मे वह अपनी सम्पूर्ण कामशक्ति को बाह्य-वस्तुओं से खींचकर अपने मे ही सीमित-केन्द्रित कर लेता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अन्तर्मुखी (introvert) प्रकृति* के होते हैं, उनकी भी कामशक्ति का विकास प्रायः इस अवस्था तक आकर रुक जाता है। स्त्रियाँ विशेषकर स्वभावतः अन्तर्मुखी होती हैं। यही कारण है कि वे अपनी 'कामशक्ति' को अपने मे ही केन्द्रित रखती हैं और 'पैसिभ' भी

* विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology) के प्रवर्त्तक युंग के अनुसार 'व्यक्तित्व' (personality) दो प्रकार के होते हैं : अन्तर्मुख (introvert) और बहिर्मुख (extrovert)। अन्तर्मुखी व्यक्तियों की रुचि मित्रवर्ग या समाज मे नहीं होती। वे शर्मीले, गम्भीर और एकांत प्रिय होते हैं और किसी काम का उत्तरदायित्व लेने के पहले उस विषय पर सोच-विचार करते हैं। जीवन के प्रति राग न होकर एक प्रकार की उदासीनता का भाव रहता है। प्रायः, स्वभाव से खुशामदी न होने के कारण, ठोकरें खानी पड़ती हैं। समाज में ऊँचा स्थान पाने के लिये इच्छुक नहीं होते; न तो समाज-सुधार की ही इच्छा रहती है। राजनीति से तो दूर भागते हैं। एक प्रकार से बाह्य जगत् के सम्पर्क मे आना ही नहीं चाहते। फिर भी उनके जीवन का उद्देश्य ऊँचा होता है और वे आदर्शवादी होते हैं। ऐसे व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं: एक तो विचारप्रधान; और दूसरे, भावप्रधान। विचारप्रधान मे दार्शनिक हैं; भावप्रधान मे बड़े-बड़े कवि तथा चित्रकार हैं।

रहती हैं। यह बात अधिकतर स्त्रियों के साथ लागू होती है। जब कामशक्ति (libido) का निरोध और संयमन (withdrawal) अधिक मात्रा मे होता है तो मनुष्य अव्यावहारिक हो जाता है।

बाह्य वस्तु-प्रेम (*Allo-erotism*)

इस अवस्था मे पहुँचने पर मनुष्य की कामशक्ति-धारा बहिर्वस्तुओं की दिशा पकड़ने लगती है। जिस ओर वह आकृष्ट होता है वह सहवर्गी (same sex) का भी हो सकता है और परवर्गी (opposite sex) का भी। शैशव मे बालक के आकर्षण की वस्तु माता-पिता रहते हैं। लड़कों का आकर्षण अधिकतर माँ की ओर, और लड़कियों का पिता की ओर होता है। शैशव पार होने पर उनका ध्यान माता-पिता की ओर से बँटकर मित्रों की ओर चलता है। प्रारम्भ मे सहवर्गियों से सहज स्नेह-सम्बन्ध बनता-जुड़ता है; फिर धीरे-धीरे परवर्गी आकर्षित करने लगता है। इस सम्बन्ध मे ध्यान मे रखने की यह बात है कि फ्रायड के मत से युवावस्था का प्रेम-पात्र, फिर चाहे सहवर्गी हो चाहे परवर्गी, उस व्यक्ति के माता-पिता का प्रतिनिधि (substitute) ही है।

कामशक्ति (libido) की इस तीसरी अवस्था का व्यक्तित्व के विकास मे वड़ा आवश्यक और महत्त्व का स्थान है, क्योंकि यह केवल काम-प्रवृत्ति (sexual trend) के साधारण विकास का ही द्योतक नहीं, बल्कि इसमे परोपकारी प्रवृत्ति (altruistic tendencies) के विकास का भी अवसर रहता है। वास्तव मे फ्रायड ने 'काम' (sex) शब्द का बहुत ही व्यापक अर्थ मे प्रयोग किया है। इससे स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण-भाव ही अभिप्रेत नहीं, बल्कि हरेक प्रकार का प्रेम-संवेग—स्नेह, ममता, आकर्षण, सहानुभूति सभी—उसमे समाया हुआ है। यहाँ तक कि बच्चों मे माता-पिता और खेल-कूद के साथियों के प्रति जो भावना होती है, उसे भी फ्रायड की शब्दावली मे 'सेक्स डिजायर' ही कहते हैं।

इस प्रकार 'मनोविश्लेषण' के अनुसार 'कामशक्ति' (libido) की ये विभिन्न अवस्थाएँ हैं। जिस व्यक्ति का सहज और सामान्य रूप से विकास होता

है वह स्वभावतः एक अवस्था को पार करता दूसरी मे प्रवेश करता है। विकास असाधारण होने से कामशक्ति विकास की किसी एक अवस्था मे स्थिर हो जाती है या, तीव्र गति से आगे बढ़ जाती है।

'कामशक्ति' (libido) के सम्बन्ध मे अब महत्त्व का प्रश्न यह उठता है कि इसकी धारा कौन कौन दिशाएँ ले सकती हैं ? 'मनोविश्लेषण' के अनुसार ये दिशाएँ निम्न प्रकार हैं :—

१. **बहिर्मुखीकरण** (*extroversion*)
२. **अन्तर्मुखीकरण** (*introversion*)
३. **केन्द्रीयण** (*arrest—fixation on an object of immature choice*)
४. **प्रत्यावर्त्तन** (*regression*)
५. **प्रतिबन्धन** (*dammed-up libido*)
६. **दिशान्तरण** (*deflection*)

१. ''कामशक्ति' (libido) का वाह्य वस्तुओं की ओर आमुख होना विकास की साधारण अवस्था बताता है। जीवन और जगत मे अधिकतर यही स्थिति दिखाई देती है। विशेषकर बहिर्मुखी व्यक्तियों* (extroverts) की रुचि का विषय वहिर्वस्तु ही होता है। इस कारण उनकी अधिकांश शक्ति का

---

* बहिर्मुखी व्यक्ति समाजप्रिय होते हैं : अकेलापन उन्हें बहुत अखरता है। स्वभाव से हँसमुख-प्रसन्नचित्त और सांसारिक जीवन मे बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ रखते हैं। समाज मे प्रतिष्ठा के इच्छुक हैं। समाज-सुधार और राजनीतिमे हाथ बँटाने मे विशेष रुचि रहती है। व्यवसाय में सफलता पाने के लिये और मान-प्रतिष्ठा की अभिलाषा मे नयी-नयी योजना रचते हैं। यदि सफलता न मिली तो भी प्रसन्नचित्त रहेंगे : न तो निराश होंगे और न जीवन के प्रति वैराग्य होगा। इस वर्ग के व्यक्ति एकान्त मे बैठकर कल्पना की उड़ान नहीं लगाते; उन्हें तो हर वक्त मित्र चाहिए, अपरिचित से भी सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। इनके मन मे अधिकतर किसी प्रकार का संघर्ष या उथल-पुथल नहीं रहता।

* ये व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं : विचारप्रधान और भावप्रधान। भावप्रधान मे विचारों की कमी होती है; विचारप्रधान में समाज के नेता और राजनीतिज्ञ हैं।

व्यय बहिर्वस्तुओं की खोज तथा प्राप्ति मे होता है। हाँ, वह पात्र जिस पर उनकी मानसिक शक्ति केन्द्रित है प्रौढ़ावस्था या युवावस्था का विषय हो सकता है और प्रारम्भिक अवस्था का भी। जैसे, किसी युवक का प्रेम : वह चाहे किसी युवती से हो, चाहे माता-पिता-मित्र से ही। युवती और माता-पिता-मित्र सब एक समान बाह्य विषय हैं; अन्तर केवल इतना है कि माता-पिता 'प्रारम्भिक आकर्षण' का विषय है और युवती युवावस्था की रुचि का।

२. कभी-कभी ऐसा भी पाया गया है कि कामशक्ति (libido) की धारा वाह्य विषयों की दिशा न ले अभ्यन्तर की दिशा पकड़ती है। अर्थात् अपना ही अह (ego) प्रेम का विषय (object of love) हो जाता है। ऐसे व्यक्ति अधिकतर कल्पनालोक मे रहते हैं और वहीं अपनी प्रकृत इच्छाओं की तुष्टि भी कर लेते हैं। उन्हें अपनी इच्छाओं की तुष्टि के लिये न कोई सहवर्गी (homosex) चाहिये और न परवर्गी (hetrosex)। इस श्रेणी के लोगों को अन्तर्मुखी कहते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी तो स्वभाव से ही अन्तर्मुखी रहते हैं और कभी परिस्थिति के कारण होजाते हैं। उदाहरण के लिये निराश प्रेमी। वह अपनी कामशक्ति को 'प्रिय' की ओर से समेटकर अपने मे ही सीमित-संकेन्द्रित कर लेता है, और पल-घड़ी कल्पनालोक मे रहते अपने व्यक्तित्व और प्रिय मे ऐसा घना तादात्म्य (indentification) स्थापित कर लेता है कि अंत को 'प्रिय' के स्थान पर उसे अपने ही अहं (ego) के प्रति आकर्षण हो जाता है। फ्रायड की भाषा मे यह 'अन्तर्मुखीकरण' (introversion) कहलाती है। कला-भावना और कला-सृजन इसी कामशक्ति के अन्तर्मुखीकरण का फल है। मनुष्य की मानसिक शक्ति, जो अन्यथा इधर-उधर नष्ट हुआ करती है, 'अन्तर्मुखीकरण' मे मन ही मन संचित होती है और समय और सुविधा बनने पर उसी संचित शक्ति के बल मनुष्य कला-सृजन करता है।

संक्षेप मे इस संबंध की निम्न बातें स्मरण रखना आवश्यक हैं :—

क. अन्तर्मुखीकरण (introversion) मे अपना अहं (ego) ही का विषय (object of love) होता है।

ख. यह विकास की साधारण अवस्था का द्योतक है।

ग. कहीं-कहीं यह अवस्था परिस्थिति से बाध्य होनेपर आती है।

३. जीवन गतिशील है। उसका विकास एक प्रगतिशील क्रम (progressive series) मे होता है। आरम्भ मे बच्चों का माता-पिता के प्रति राग होता है; फिर मित्रों के प्रति खिंचाव है; और युवावस्था मे परवर्गीकी ओर—स्त्री का पुरुष के प्रति और पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण होता है। इस प्रकार रुचि एक विषय से दूसरे पर बदलती जाती है। यह विकास की 'साधारण अवस्था' है; किन्तु विकास के इस क्रम मे कामशक्ति किसी भी अवस्था विशेष मे स्थिर हो सकती है। यही कारण है कि युवावस्था मे पहुँच जाने पर भी कुछ लड़के-लड़कियों का अपने माता-पिता के प्रति इतना आकर्षण रहता है कि वे विवाह से उदासीन रहते हैं। मनःसमीक्षा से जान पड़ा कि ऐसे व्यक्तियों की कामशक्ति का विकास शैशव मे ही रुद्ध-स्थिर (arrest) हो जाता है। इस कारण आगे का 'साधारण क्रम' स्थगित सा हो जाता है और कामशक्ति की समूची धारा का प्रवाह उन्हीं विषयों मे अटकी-लगी रह जाती है जो प्रारम्भिक अवस्था की विशेषता हैं।

४. 'प्रत्यावर्त्तन' (regression) मे कामशक्ति का विकास अपनी सहज साधारण रीति से चलते-चलते सहसा किसी घटना या परिस्थिति-विशेष के कारण बाधा पा जाता है और प्रेम और आकर्षण का स्थानान्तरण (transference) 'प्रारम्भिक अवस्था' की रुचि के पात्रों की ओर हो जाता है। इस प्रकार 'प्रत्यावर्त्तन' (regression) मे कामशक्ति का प्रवाह आगे जाते सहसा पीछे को गति (backward movement) ले लेता है। कामशक्ति (libido) के 'केन्द्रीयण' (arrest) और 'प्रत्यावर्त्तन' (regression) मे अन्तर इतना ही है कि 'केन्द्रीयण' मे कामशक्ति का विकास किसी पिछली अवस्था पर रुक जाता है; और 'प्रत्यावर्त्तन' मे साधारण रीति पर विकास होते-होते पीछे को घूम पड़ता है। ऐसा प्रायः निराश प्रेम मे होता है।

५. 'प्रतिबंधित कामशक्ति' का तात्पर्य उस शक्ति से है जो अनुचित होने के कारण चेतन मन से बहिष्कृत कर दी गई है। सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण

कामशक्ति (libido) अंशत दबायी जाती है। ऐसी दबायी हुई कामशक्ति इदम् (Id) का भाग बन जाती है। इस पर नैतिक मन (super-ego) का प्रतिबन्ध चलता है। कामशक्ति प्रतिबन्धित हो जाने के कारण जीवन मे उलझनें और अड़चनें खड़ी करती है। यह मानसिक रोगों का मूल भी है और 'व्यक्तित्व-संतुलन' (balance of personality) नष्ट करती है। साथ ही यह प्रतिबन्धित कामशक्ति (dammed up libido) मनोविच्छेद (mental dissociation) का भी कारण है। बात यह है कि तिरस्कृत या प्रतिबन्धित कामशक्ति निस्तेज नहीं हो जाती; उल्टे ज्वालामुखी की नाई कभी भी उसका विस्फोट संभव रहता है। इस प्रकार, स्पष्ट ही, प्रतिबन्धन से कामशक्ति क्षीण नहीं होती; वह उग्र और कभी-कभी विकृत रूप भी ले लेती है।

६. कामशक्ति के 'दिशान्तरण' (deflection) मे कामशक्ति की धारा ऐसी दिशा लेती है जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हो, नैतिक हो और उच्च कोटि की हो। इस प्रकार हमारी कामशक्ति के एक अंश का उपयोग उचित और जीवनोपयोगी विषयों मे भी होता है। कामशक्ति (libido) के ऐसे 'दिशान्तरण' का मुख्य प्रयोजन ही यह होता है कि उसका निम्न कोटि की प्रक्रियाओं मे ह्रास न हो। सच,जीवन और समाज मे 'कामशक्ति के दिशान्तरण' से ही कला और धर्म की उत्पत्ति होती है। 'दिशान्तरण' (deflection) मे तीन बातें मुख्य होती हैं :——

क. कामशक्ति का 'एकत्रीकरण'

ख. एकत्रित कामशक्ति का 'उन्नयन' (sublimation)

ग. उन्नयित या परिमार्जित कामशक्ति का 'सामाजिक' उपयोग'

इस प्रकार कामशक्ति का प्रवाह कई दिशाओं मे हो सकता है। किसी व्यक्ति-विशेष की कामशक्ति किस दिशा मे अधिक प्रवाहित हो रही है, यह उसके स्वभाव और उसकी परिस्थितियों पर निर्भर है। बचपन से ही जिसने उपयुक्त शिक्षा पाई है उसकी कामशक्ति सहज परिमार्जित होगी और उसका

भली दिशाओं मे उपयोग होगा। जिसका मानसिक विकास साधारण रीति से नहीं हुआ है उसकी कामशक्ति का 'केन्द्रीयण' (arrest) हो जाता है; कभी-कभी विकास होकर फिर उसका उपयुक्त परिस्थितियों के अभाव मे 'प्रत्यावर्त्तन' (regression) हो जाता है। कुछ व्यक्तियों में कुछ जन्मना अभाव (constitutional deficiency) रहता है जिसके कारण 'कामशक्ति' (libido) का साधारण विकास नहीं हो पाता।

विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान मे 'लिबिडो' का अर्थ

Conception of 'Libido' in Analytical Psychology

'लिबिडो' शब्द का क्या अर्थ है, यह आरम्भ से ही विवाद का विषय रहा। 'मनोविश्लेषण' की दृष्टि से, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'लिबिडो' कामशक्ति के अर्थ मे आता है। 'कामशक्ति' ही हमारे मनोलोक मे जीवन डालती है और हमारी हरएक क्रिया के लिये उत्तरदायी है। जब उसका असाधारण दमन होता है, हमे मानसिक रोग हो जाते हैं; जब उसका 'उन्नयन' (sublimation) किया जाता है, कला तथा धर्म-भक्ति पर भावनाएँ उपजती हैं।

युंग के मत से 'लिबिडो' कामशक्ति का पर्यायवाची नहीं। वह वास्तव मे एक 'मानसिक शक्ति' है जिसके द्वारा हमारी मन की प्रत्येक क्रिया संचालित होती है। वह हमारी प्रकृत इच्छाओं को—हमारे अपने-अपने स्वभाव के अनुसार किसी को कम और किसी को अधिक—गति देती है। वह एक असाधारण शक्ति है जिसका प्रवाह कई दिशाओं में हो सकता है। मानव मे अनेक वृत्तियाँ होती हैं। जिस व्यक्ति मे जिस प्रवृत्ति की प्रधानता रहती है, उसी दिशा मे उसकी मानसिक शक्ति का विशेष प्रवाह हो जाता है। किसी व्यक्ति की 'मानसिक-शक्ति' के प्रवाह का रुख किस तरफ है, यही उसके चरित्र और व्यक्तित्व के प्रकार निर्धारित करता है। उदाहरण के लिये, किसी व्यक्ति-विशेष मे रचनात्मक प्रवृत्ति (creative urge) तीव्र है। स्वभावत: उसकी मन की शक्ति का प्रवाह तत्सम्बन्धी क्रियाओं मे ही विशेष होगा और सम्भव है वह भविष्य मे कोई बड़ा कलाकार बन जाय। यही बात सामाजिक, धार्मिक या अन्य किसी भी

प्रवृत्ति की प्रधानता पर होती है। फ्रायड ने इस मानसिक शक्ति को 'कामशक्ति' समझा क्योंकि उनकी दृष्टि मे काम प्रवृत्ति मात्र जीवन की समस्त क्रियाओं के लिये उत्तरदायी थी। किन्तु वास्तव मे काम-प्रवृत्ति अनेक प्रवृत्तियों मे से केवल एक प्रवृत्ति है। यह कहना या सोचना अनुचित है कि मानव मे काम-प्रवृत्ति मात्र मूल प्रवृत्ति है ; अन्य सब प्रवृत्तियाँ उसकी शाखा-उपशाखा (off-shoot) हैं ; या उसके रूपान्तर हैं। ऐडलर ने भी फ्रायड की तरह एक प्रवृत्ति को मूल प्रवृत्ति माना और उनके मत से वह आत्म-स्थापन (self-assertion) की प्रवृत्ति थी। इसके अनुसार मानव की प्रत्येक क्रिया—सामाजिक हो या व्यक्तिगत—हीनत्व-ग्रन्थि (inferiority complex) पर विजय पाने के लिये ही होती है, जिससे आत्म-स्थापन की प्रकृत और मूलभूत इच्छा सन्तुष्ट हो। ऐडलर के विचार से मानव की काम वासना सम्बन्धी क्रियाएँ तक उसकी आत्मस्थापन की प्रवृत्ति के ही तोषण के लिये होती हैं।

पर सत्य यह है कि मानव मे अनेक मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं और 'मानसिक शक्ति' का प्रवाह किसी भी दिशा मे हो सकता है।

६

मनोविश्लेषण और मानसिक रोग

मनोदौर्बल्य (*Psychoneuroses*)

अज्ञात मन के ज्ञान-बोध के साथ मनोवैज्ञानिकों ने यह अनुभव किया कि कुछ ऐसे भी रोग हैं जिनका सम्बन्ध मन से ही है। इससे पहले उन्हें इस बात का आभास न था कि मानसिक रोग जैसे भी रोग हो सकते हैं और कि उनका वस्तु-कारण मानसिक विकार है। मानसिक रोगों का अस्तित्व स्थापित होने के पहले प्रत्येक रोग का निदान (diagnosis) शारीरिक आधार पर ही होता था। बीसवीं शताव्दी के आरम्भ मे जब नये-नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अन्वेषण हुआ तो उनके आधार पर पहले-पहले रोगों का 'मानसिक' और 'शारीरिक' मे वर्गीकरण किया गया। इस वर्गीकरण का यह तात्पर्य्य नहीं कि 'मानसिक' और 'शारीरिक' रोगों मे कोई सम्बन्ध ही नहीं। वास्तव मे दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं; यहाँ तक कि मानसिक रोगों के चिकित्सिकों (psychiatrists) ने कई शारीरिक रोगों का कारण मानसिक भावना-ग्रन्थियाँ (mental complexes) पाया है। उदर-विकार तथा उससे सम्बन्धित अन्य कई रोगों मे तथा हृदय-धड़कन मे प्रायः ऐसा ही होता है। इस प्रकार कुछ रोग मूल मे मानसिक हैं और कुछ शारीरिक होते भी भावना-ग्रंथियों से ही संबंधित हैं। फलतः उपचार-चिकित्सा क्षेत्र मे भी मनोविज्ञान का उपयोग और मूल्य माना गया। सचमुच एक स्वतंत्र विज्ञान का ही विकास हो गया जो 'साइको सौमेटिक मेडीसिन' के नाम से प्रसिद्ध है।

मानसिक रोग के कारणः—फ्रायड के सिद्धान्त के अनुसार मानसिक रोगों का प्रमुख कारण अन्तर का 'संघर्ष' (conflict) और 'दमन' (repression) है। जब कभी ज्ञात मन (conscious mind) मे कोई संघर्ष उठता है तो हम तर्क-वितर्क द्वारा उसे शान्त कर लेते हैं या दबा देते हैं। इसके लिये मस्तिष्क मे कुछ न कुछ आवश्यक सूझ-सुझाव आ ही जाते हैं; क्योंकि संघर्ष के विषय-वस्तु का हमे बोध रहता है; उसके लाभ हानि पर हम विचार कर लेते हैं। परन्तु अज्ञात मन का संघर्ष भयंकर होता है। हमे चेतना नहीं होती कि वास्तव मे हम क्या चाहते हैं। इच्छा की वस्तु-प्रकृति का ज्ञान ही नहीं होता। हाँ, विश्लेषण पर इतना अवश्य जान पड़ा कि यह संघर्ष हमारी प्रकृत मूल इच्छा और आदर्श का द्वन्द्व है। इस द्वन्द्व मे किसी की भी जय-पराजय हो सकती है। कभी अज्ञात मन (unconscious mind) की प्रकृत इच्छाएँ विजय पाती हैं, कभी वातावरण से बनाये जीवन के आदर्श। प्रायः प्रकृत इच्छाएँ ही पराजित होती हैं और उनका दमन कर दिया जाता है; किन्तु यह प्रत्यक्ष सत्य है कि किसी भी इच्छा को दबाने के लिये उसका दमन यथेष्ट नहीं होता। दमन से वे इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं; उल्टे अभिव्यक्ति के लिये और भी उत्सुक और सबल हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त दमन का यह भी परिणाम होता है कि मनोजगत् मे अनेक भावना-ग्रंथियाँ (mental complexes) बन जाती हैं जो 'मनोविच्छेद' (mental dissociation) का कारण बनता है। और अन्ततोगत्वा अनेक मानसिक रोग हो जाते हैं। पागलपन या मानसिक दुर्बलता की अवस्था मे जो कुछ हमारी मन की क्रिया और अंगों की चेष्टाएँ की जाती हैं वे दो विरोधी भाव—आदर्श और प्रकृत इच्छा—के संघर्ष और उनमे से एक के दमन का प्रतिफल हैं। यदि अन्तर लोक मे ऐसा कोई संघर्ष न हो और किसी भी प्रकृत इच्छा का दमन न किया जाय तो मानसिक रोग होना ही संभव नहीं।

अब प्रश्न उठता है कि दबायी हुई इच्छाओं का—जो मानसिक रोगों का मूल कारण हैं—क्या स्वभाव है। इस सम्बन्ध मे फ्रायड का संकेत केवल कामवासना की ओर ही है। सामाजिक बंधन, रूढ़ि, नियम-परम्परा तथा

नैतिक सिद्धान्तों के कारण काम-प्रवृत्ति को अपने प्रकृत और पूर्ण रूप में तृप्ति पाने का अवसर नहीं मिलता। परिणाम-स्वरूप अज्ञात मन मे भाव-ग्रंथियाँ (mental complexes) बनती हैं और तदुपरान्त मानसिक रोग हो जाते हैं। फ्रायड के समर्थक कार्ल अब्राहम और फेरेन्कजी ने रोगी की विकृत अवस्थाओं (clinical aspects) पर महत्वपूर्ण विचार किया है और बहुत कुछ लिखा है।

ऐडलर के अनुसार मानसिक रोग का कारण हीनत्व-ग्रंथि है। जीवन की मुख्य तीन समस्याएँ हैं—समाज संबंधी, व्यवसाय संबंधी और विवाह संबंधी। इन क्षेत्रों मे प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार की कठिनाई, त्रुटि या कमी का अनुभव करना पड़ता है। वह प्रवृत्ति जिसकी उसमे प्रधानता है आत्म-स्थापन (self-assertion) की है। इस मूलभूत इच्छा और जीवन की समस्याओं मे मेल-व्यवस्था न होना ही मानसिक रोगों का कारण है। आत्म-स्थापन की प्रवृत्ति प्रबल होने के कारण मानव मे यह सहज आकांक्षा रहती है कि उसे समाज मे ऊँचा स्थान-मान मिले, मित्र-परिचित उसकी प्रशंसा करें, व्यवसाय मे उन्नति हो, और वैवाहिक जीवन मे प्रभुत्व रहे। जब कभी अनुपयुक्त सामाजिक वातावरण (environment) के कारण इस आत्म-स्थापन (self-assertion) की प्रवृत्ति को तृप्त होने का अवसर नहीं मिलता तब ही मानसिक असंतोष उपजता है जो आगे चलकर मानसिक रोग का कारण बन जाता है। इस प्रवृत्ति के असंतुष्ट रहने से हीनत्व-ग्रंथि (inferiority complex) बनती है और जीवन मे व्यवस्था-समायोजन (adjustment) नहीं रह जाता।

जैनेट के अनुसार मानसिक रोग का कारण शक्ति की कमी (lack of energy) है। इसका प्रमाण ध्यान को केन्द्रित न कर सकना, भाव-इच्छा का कम होना और निराश रहना है। शक्ति की कमी के कारण मनोविच्छेद (mental dissociation) हो जाता है। मन की क्रमबद्ध श्रृंखला भंग हो जाती है, और एक-एक भाग अलग-अलग काम करने लगता है। इसी कारण कभी-कभी ऐसा लगता है कि एक ही व्यक्ति के अनेक व्यक्तित्व

ltiple personality) हैं। ब्लूलर का कथन है कि मानसिक रोग मान त मन (conscious mind) का छोटा-सा भाग ही असंबंधित नहीं दा ; बल्कि संपूर्ण अज्ञात मन भी असंबंधित हो जाता है। फ्रायड ने कोट के मत का खंडन किया है। उनके अनुसार शक्ति की कमी के कारण मनोविच्छेद नहीं होता। यह मन के एक भाग और दूसरे भाग मे सामंजस्य के कारण होता है।

युंग के मतानुसार जब हमारी प्रकृत इच्छाओं और वातावरण मे सामंजस्य नहीं होता, अथवा प्रकृत इच्छाओं की पूर्ति असम्भव होती है तब मानसिक रोग उत्पन्न होता है। इसी असामंजस्य (maladjustment) के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व-संतुलन जाता रहता है। अज्ञात मन मे पड़ी सब भावना-ग्रन्थियाँ (mental complexes) स्वतंत्र रूप से काम करने लगती हैं। ये 'भावना-ग्रन्थियाँ' प्रायः निम्न प्रकार की होती हैं :

हीनत्व-ग्रंथि (inferiority complex)
काम-ग्रंथि (sex-complex)
समाज-ग्रंथि (social complex)
धर्म-ग्रंथि (religious complex)

भावना-ग्रंथियों के स्वरूप और लक्षण की ओर दृष्टिपात करने से यह पता लगता है कि ये केवल मन के विकार हैं और इनके अधिक जटिल और गूढ़ होने पर मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है। जिस प्रकार रोग के कीड़ों से शरीर जर्जर हो जाता है उसी प्रकार भावना-ग्रंथियों से मन दुर्बल होता है। मानव का विचार-भाव-व्यवहार असंबद्ध हो जाता है। कभी तो रोगी अकारण निराशा के सागर मे गोते मारता है, और कभी प्रबल हो उठता है। दूसरों पर आक्रमण करता है। वास्तव मे भावना-ग्रंथियाँ ही रोग के बीज हैं। और इन ग्रंथियों का प्रमुख आदि कारण मनःशक्ति का किसी एक दिशा मे अत्यधिक प्रवाह है। किसी भी एक विशेष दिशा मे शक्ति के प्रवाहित होने से दूसरी दिशाओं मे उसकी कमी हो जाती है; और इस प्रकार उस व्यक्ति के जीवन मे संतुलन नहीं रह जाता।

मैकडूगल के अनुसार मानव मे कई-एक जन्मजात वृत्तियाँ-प्रवृत्तियाँ हैं। इनका परस्पर संघर्ष ही मानसिक रोग का मूल है*। मानव के व्यवहार–साधारण अथवा विकृत–को समझने के लिये वृत्ति-प्रवृत्ति के प्रकृत तथा परि-मार्जित रूप के बारे मे, उससे क्या हानि-लाभ है, इसका विशद व सूक्ष्म ज्ञान आवश्यक है। वृत्ति-प्रवृत्ति की तुष्टि न होने पर ही भावना-ग्रंथियाँ बनती हैं और मानसिक अवस्था विकृत हो जाती है।

कभी-कभी मानसिक दुर्बलता और विक्षिप्तता का बीज वंश-परम्परा (hereditary characteristics) से मिलता है। विकृत व्यक्तियों के पारिवारिक जीवन का अध्ययन करने से इसकी पुष्टि होती है। जिस व्यक्ति मे विकृत होने का स्वभाव है, वातावरण से विषम परिस्थिति मिलने पर उसकी मानसिक अवस्था तुरत विकृत होने की आकस्मिक संभावना अधिक रहती है। जिस व्यक्ति मे शरीर संबंधी पैतृक दोष है उसमे मन संबंधी दोष भी पैदा हो जाता है। मंद बुद्धि व्यक्ति की मानसिक अवस्था जीवन-पर्यन्त विकृत ही रहती है; उस पर कोई रोकथाम नहीं लगाया जा सकता। माता-पिता मे से जब एक का जेनस (genus) दोषी रहता है और दूसरे का साधारण तब बच्चों मे विक्षिप्तता कम आती है; यदि आक्रमण हुआ भी तो साधारण। जब दोनों के जेनस दोषी होते हैं, तब बच्चों की अवस्था शोचनीय हो जाती है। उपचार का प्रयत्न प्रायः निष्फल जाता है। मनुष्य का गुण-अवगुण उसके जेनस की विशेषता पर निर्भर करता है और वह जेनस को ही पैतृक रूप मे पाता है; जिस बालक के जेनस की जो विशेषता हो। इसी कारण एक ही माता-पिता के चार बच्चों मे एक की मानसिक अवस्था विक्षिप्त प्रकार की है और दूसरों की नहीं है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि विकृत माता-पिता के पुत्र विकृत ही स्वभाव के होते हैं। वातावरण अनुकूल रहने पर विकृत होने की जो पैतृक विशेषता रहती है, उसका बहुत कुछ निवारण हो जाता है। आदर्श वातावरण मे पालन-पोषण होने से अधिक व्यक्त लक्षण (overt symptoms) नहीं

* Outline of Abnormal Psychology

पैदा होते। यह भी बात है कि मनुष्य चिंता, भ्रम, उन्माद, भ्रांति, असामाजिक वृत्ति, निराशा-जन्य भाव लेकर नहीं पैदा होता। ये सब विकृत भावनाएँ-इच्छाएँ परिस्थिति से उत्पन्न की जाती हैं। यह सब संघर्ष का परिणाम है।

मानसिक रोग के संबंध मे कायिक अवस्थाओं (biological factors) पर भी विचार करना आवश्यक है। शरीर की बनावट (constitution) बहुत कुछ वंशागत विशेषता और अन्तः स्राव (endocrine secretion) पर निर्भर है। शरीर के रोग और भोजन का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व और शारीरिक बनावट मे बहुत संबंध है। कुछ विशेष प्रकार की शारीरिक बनावट होती है जिसको देखते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि अमुक व्यक्ति के आभ्यन्तरिक क्षेत्र मे संघटन-संतुलन नहीं हो सकता। आकृति से सामाजिक रुख (social attitude), वृत्ति-प्रवृत्ति, भाव-विचार का अनुमान लगाया जा सकता है। आकृति मे समानता रहने पर व्यक्तित्व मे भी समानता पनपती है। जो व्यक्ति शरीर से दुबला-पतला (asthenic) है, जिसमे शक्ति नहीं है, वह स्वभाव से जोशीला-अग्रणी कभी नहीं हो सकता; कृषि और दुःखी सा रहता है। संभव है कि वह असामयिक मनोह्रास (dementia praecox) रोग का आखेट भी हो जावे। अधिकतर असामयिक मनोह्रास के रोगी की शारीरिक बनावट इस प्रकार की मिलती भी है। जो व्यक्ति शरीर से गोल, नाटा कद का होता है, वह विकृत होने पर अधिकतर उत्साह-विषाद चक्र मानसावस्था (manic-depressive insanity) का शिकार होता है। करीब-करीब दो तिहाई रोगी पिकनिक टाइप (pyknic type) के होते हैं। जरमनी के प्रख्यात मानस-चिकित्सक क्रेश्मेर ने शरीर-बनावट और व्यक्तित्व के परस्पर संबंध के बारे मे सूक्ष्म विचार किया और मानव को चार भागों मे बाँटा: पिकनिक, (pyknics) एसथेनिक, (Asthenics) अथलेटिक, (athletics) और डिसप्लैस्टिक (dysplastics)। पिकनिक का शरीर गोल-मठोल नाटा और गठीला होता है। एसथेनिक लंबे और पतले होते हैं। अथेलैटिक भरे और सुडौल अंगवाले होते हैं।

अब शरीर के भीतरी भाग-क्षेत्र मे उपस्थित ग्रंथि-स्राव (glandular secretion) के प्रभाव, महत्ता-विशेषता पर प्रकाश डालना है। जब थायराइड से कम रस का प्रवाह होता है तब क्रेटिन का रोग होता है। एड्रिनल ग्रंथि से कम रस-प्रवाह होने पर पुरुष-गुण (male characteristic) बढ़ जाता है। स्त्रियों मे पुरुषत्व की प्रधानता हो जाती है। ग्रंथि-स्राव पर मनुष्य की संवेगात्मक अवस्था निर्भर होती है। क्रोध, प्रेम तथा भय का भाव उत्पन्न होने पर आभ्यन्तरिक अवस्था मे परिवर्तन हो जाता है। क्रोध मे ऐड्रिनल ग्रंथि से अधिक प्रवाह होता है। थाइराक्सीन कम होने पर शरीर और मन का विकास रुक जाता है। आयु अधिक हो जाने पर भी व्यक्ति बौना ही बना रहता है। एक पन्द्रह-सोलह वर्ष के युवक का व्यवहार आठ-दस वर्ष के बालक की तरह होता है। उसके भाव- विचार मे परिपक्वता नहीं आ पाती। ग्रंथि-स्राव का प्रभाव मानसिक अवस्था पर पड़ता है, किंतु दोनों का संबंध अनिवार्य नहीं है।

मानसिक रोगों का कारण जान लेने के बाद अब उनके वर्गीकरण का प्रश्न उठता है। साधारणतः मानसिक रोगों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं :—

मनो-दौर्बल्य (psycho-neuroses)
मनोविक्षेप (psychoses)

मनो-दौर्बल्य (psycho-neuroses) के रोग साधारण हैं तथा उनका उपचार भी सरल है। मनोविक्षेप (psychoses) के रोग कठिन हैं और इनका उपचार सरलता से नहीं किया जा सकता। इसमे रोगी पागलों-सा व्यवहार करता है। पर इन दोनों वर्ग के रोगों मे परस्पर संबंध भी है। कभी-कभी मनो-दौर्बल्य (psycho-neuroses) मानसिक विक्षेप (psychoses) का रूप लेता है। जैसे, शारीरिक रोगों मे टाइफाइड से निमोनिया हो जाना। किन्तु मनो-दौर्बल्य (psycho-neuroses) और मनोविक्षेप (psychoses) के रोग एक नहीं हैं। इनका स्वतंत्र अस्तित्व है और इनकी उत्पत्ति और विकास के कारण भी पृथक्-पृथक् हैं। मनो-दौर्बल्य मनोविक्षेप

की प्रारम्भिक अवस्था नहीं है। सांख्यिक विवरण यह है कि केवल चार-छ प्रतिशत मनो-दौर्बल्य के रोगी आगे चलकर मनोविक्षेप के आखेट बनते हैं। इसका कोई मूल कारण नहीं है; केवल निदान मे भूल है। भूल से मनः समीक्षक एक वर्ग के रोगी को दूसरे वर्ग का रोगी मान बैठता है। पैतृक विशेषता (hereditary characteristics) की दृष्टि से भी इसकी पुष्टि होती है। लिविस ने प्रयोग किया और यह पाया कि केवल चार प्रतिशत मनो-दौर्बल्य से त्रस्त रोगी के माता-पिता मनोविक्षेप से त्रस्त मिल पाये।

निम्न बातें दोनों की भिन्नता को समझने मे सहायक होंगी :—

१. मनोविक्षेप (psychoses) के रोगी का व्यवहार अन्य जनों के प्रति नित्य बदलता रहता है; मनो-दौर्बल्य (psycho-neuroses) के रोग मे ऐसा नहीं होता।

२. मनोविक्षेप के रोगी मे किसी बात को परखने तथा समझने की बुद्धि अवशेष नहीं रह जाती। वह यह नहीं समझता कि उसके मस्तिष्क मे कुछ दोष है। किन्तु मनो-दौर्बल्य मे रोगी को इस बात की पूरी समझ रहती कि उसके बहुत से विचार और आदत अनावश्यक और आधाररहित हैं। फिर भी अपने पर नियंत्रण रखने की शक्ति का अभाव होने के कारण वह उनका शिकार हो जाता है। वह अपनी भूल समझता भी है और विशेष बात तो यह है कि वह अपनी कठिनाइयों के लिये परिस्थिति को उत्तरदायी मानता है।

३. मनोविक्षेप मे रोगी को समय, स्थान तथा अपने व्यक्तित्व का ध्यान नहीं रहता; किन्तु मनो-दौर्बल्य मे इनका ध्यान रहता है। वह समझता है कि वह कहाँ है और क्या कर रहा है। ऐसा कभी ही होता है कि वह अपने व्यक्तित्व (personal identification) को भूल जाय, यद्यपि हिस्टीरिया (hysteria) मे रोगी कभी-कभी अपने व्यक्तित्व को भूल जाता है।

४. मनोविक्षेप के रोगी को भ्रम (delusion) और भ्रान्ति (hallucination) विशेषकर होती हैं; यह मनो-दौर्बल्य मे नहीं होता।

५. मनोविक्षेप मे रोगी की आध्यात्मिक शक्ति निःशेष हो जाती है, मन की क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जाती हैं, बातचीत असंबंधित और तर्कहीन हो जाती हैं। मनो-दौर्बल्य मे रोगी मे सोच-विचार तथा निर्णय की शक्ति बनी रहती है, बातचीत व्यवस्थित और तर्कयुक्त रहती है, व्यवहार असाधारण नहीं होता ।

६. मनोविक्षेप के रोगी बाह्य जगत् से बहुत कम मतलब रखते हैं ; अधिकतर वे कल्पना-लोक मे विचरण करते हैं; सामाजिक आदान-प्रदान का भाव नहीं रहता। मनो-दौर्बल्य मे रोगी का संबंध बाह्य जगत् और समाज से रहता है। उसका व्यवहार समाज के अनुकूल रहता है ।

७. मनोविक्षेप का रोगी दैनिक क्रिया का संपादन व्यवस्थित रूप से नहीं करता । प्रायः आत्महत्या का भाव-विचार मन मे उठता रहता है । इस कारण इन्हें मानसिक चिकित्सालय मे रखना आवश्यक है। मनो-दौर्बल्य का रोगी दैनिक क्रिया का संपादन व्यवस्थित रूप से करता है, किसी पर आश्रित नहीं होता, और आत्महत्या की असंगत इच्छा उसके मन मे नहीं उठती ।

८. मनोविक्षेप मे रोगी को स्वस्थ करना समस्या बन जाती है। कभी-कभी तो मनोह्लास के कारण रोगी मृत्यु का आखेट बनता है। मनो-दौर्बल्य मे थोड़ा प्रयास करने से ही रोगी स्वस्थ हो सकता है। पुनर्शिक्षण, निर्देशन और विश्लेषण पर्याप्त है। रासायनिक और शारीरिक उपचार की आवश्यकता नहीं पड़ती।

९. मनोविक्षेप के रोगी को साधारण व्यक्तियों से अलग करना आसान होता है, क्योंकि उसमे रोग के स्पष्ट लक्षण होते हैं : व्यवहार चाल-ढ़ाल भाव-विचार सब असंबंधित रहता है । मनो-दौर्बल्य के रोगी को पृथक् करना कठिन हैं। इनका व्यवहार भाव-विचार बहुत कुछ व्यवस्थित होता है। अत्यधिक प्रबल नहीं हो उठते और आदान-प्रदान का भी भाव रहता है ।

१०. मनोविक्षेप का कारण मानसिक अवस्था के अतिरिक्त स्नायु-

(neurological factor), अन्तः स्राव (endocrinoligical factor) और मानसिक आघात (brain injury) भी हो सकता है; मनो-दौर्बल्य का कारण सदैव मानसिक होता है।

११. मनोविक्षेप का रोगी यह कभी स्वीकृत नहीं करता है कि उसका मस्तिष्क विकृत है; मनो-दौर्बल्य मे रोगी अपनी लाचारी समझता है और अपने को अस्वस्थ मानता है।

मनो-दौर्बल्य (psycho-neuroses) और मनोविक्षेप (psvchoses) मे कई प्रकार के रोग हैं: पहले मे, स्नायविक (neurasthenia), चिंता (anxiety neurosis), भीति (phobia), कल्पनाग्रह (obsession), हठ प्रवृत्ति (compulsion) और उन्माद (hysteria) के रोग आते हैं; दूसरे मे स्थिर-भ्रम (paranoia)), असामयिक मनोह्रास ((dementia-praecox) और उत्साह-विषाद-चक्र मनोदशा (manic depressive psvchosis) के रोग हैं। जैनेट ने मनो-दौर्बल्य के रोग को दो वर्ग मे बाँटा है: हिस्टीरिया और साइकेस्थेनिया।
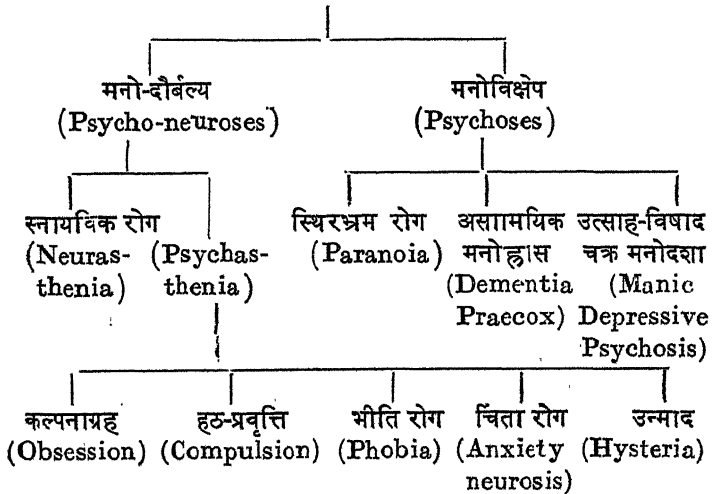
इस प्रकार इन ऊपर लिखे आधारों पर हम मानसिक रोगों का साधारण वर्गीकरण कर सकते हैं। प्रत्येक मानसिक रोग के लक्षण, कारण और उसका उपचार क्या है, अब इस पर विचार करना है।

स्नायविक रोग (*Neurasthenia*)

यह मानसिक रोगों मे एक प्रचलित और साधारण रोग है। इसका शब्दश: अर्थ है थकान, अर्थात्, स्नायुबल का ह्रास होना। अच्छा हो कि इसे 'फेटिग न्युरौसिस' कहा जाय।

लक्षण :—इस रोग के नाम से ही बोध होता है कि 'थकान' इसका प्रमुख लक्षण है। पर साधारण थकान और इस रोग की थकान मे अंतर है :—

१. साधारण थकान मे विश्राम से लाभ होता है ; इस रोग की थकान पर उसका कोई प्रभाव नहीं होता।

२. स्नायविक रोग की थकान रात से सबेरे अधिक रहती है।

३. हारटेनवर्ग ने यंत्रद्वारा परीक्षा करके यह प्रमाणित किया है कि इस रोग की थकान का संबंध स्नायु (nerves) से नहीं होता।

४. इसकी थकान गहरी होती है और हर समय बनी रहती है।

स्नायविक रोग मे सिर मे दर्द होता है। इससे आँखों मे घुटन, भारीपन, धुंध (blurred vision) और दुखन रहती है। थकान की तरह यह सिर-दर्द भी बराबर बना रहता है और बहुत होता है। यही नहीं शरीर के हरेक भाग मे, विशेषकर पीठ मे दर्द अधिक होता है और बहुत कुछ गठिया (rhematism) जैसा जोड़ों पर विशेष रूप से होता है।

इस रोग मे कोष्ठबद्धता भी रहती है। भूख कम लगती है, और भोजन मे कुछ चुनी हुई वस्तुओं पर रोगी की रुचि रहती है।

स्नायविक रोग(neurasthenia)मे अनिद्रा (insomnia)की भी शिकायत रहती है। बिस्तर पर देर तक पड़े रहने पर भी नींद नहीं आती। कुछ रोगियों को नींद मे बेचैनी रहती है। एक दो घंटा सोने के बाद आँख खुल जाती है और फिर

सोना कठिन हो जाता है। कुछ रोगियों को बार-बार नींद लगती है और खुला करती है।

अस्थिर मन, क्षणिक संवेग, चिंता, और अतिवेदकता (hyperaes-thesia) इस रोग के अन्य लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त रोगी का स्वभाव चिड़चिड़ा भी हो जाता है, और बात-व्यवहार मे यह सदा प्रत्यक्ष रहता है। ये रोगी बाहरी वस्तुओं—प्रकाश, कोलाहल आदि—से बड़ी जल्दी प्रभावित होते हैं। पास-पड़ोस मे कहीं रेडियो बजे तो उन्हें सहन न होगा। कोई धीरे से भी यदि द्वार खोले तो वे चौंक पड़ेंगे। सूर्य की चौंध और तीव्र प्रकाश की सदा उन्हें शिकायत रहती है। भूख न लगने की भी शिकायत रहती है, यद्यपि भोजन अच्छी तरह करते हैं और भले-चंगे होते हैं।

शरीर के स्वास्थ्य के विषय मे चिंतित रहनेवाले स्नायविक रोगी अति-चिंतक (hypochondriac) कहे जाते हैं। ऐसे रोगी को हर क्षण यही भ्रम रहता है कि वे शरीर के कुछ न कुछ रोग से पीड़ित हैं, जब कि वास्तव मे उस दृष्टि से वे स्वस्थ होते हैं। ऐसे भ्रम-रोगी आजकल अनगिनत होते हैं: 'मुझे ऐनीमिया हो गया है, सिर मे दर्द है, और भूख नहीं लगती'—यह तो दुबले-पतले लोगों की प्रायः सभी की शिकायत है। निम्न उदाहरण इसे समझने मे सहायक होगा :—

एक तीस वर्षीय युवती थी। उसके दो छोटे बच्चे थे और पति फिल्म कंपनी मे डायरेक्टर। उस युवती को 'ऐनीमिया' की शिकायत थी। देखने मे वह भली-चंगी लगती; पर उसका ऐनीमिया का भ्रम इतना पक गया था कि चारपाई से उठना मुश्किल हो गया। कोई यदि मिलने आता तो आदि से अन्त तक वह अपने स्वास्थ्य का ही रोना रोती। घर की धनी थी, डॉक्टरों की दौड़-धूप लगी रहती, इन्जेक्शन और बलदायक औषधियाँ चला करतीं; किन्तु किसी उपचार से कुछ लाभ न होता। डॉक्टरों ने देखा, परीक्षा की: पाया कि शरीर से वह बिलकुल स्वस्थ है। उस युवती को जब यह पता लगा तो वह बहुत रुष्ट हुई और फिर उन डॉक्टरों को कभी नहीं बुलाया।

किन्तु अपनी चिकित्सा उसने बनाये रक्खी और उठते-बैठते सदा सभी से अपने अस्वस्थ होने की चर्चा करती।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर उसके रोग के कारण का पता लगा। मूल कारण पति का फिल्म-डायरेक्टर होना था। उस काम से वह रात्रि को देर से लौटता। उस समय पति का ध्यान आर्कषित करने के लिये उसका अज्ञात मन युक्तियाँ ढूँढ़ता और अस्वस्थ होने का बहाना ही उसे सहज-सरल और सबसे उपयुक्त युक्ति जँचती। फिर इसके अतिरिक्त पति का ध्यान आर्कषित करने के लिये उसके पास और कोई युक्ति थी भी नहीं जिसका वह सहारा लेती। साधारणतः मानव मे आत्म-स्थापन (self-assertion) की प्रवृत्ति बड़ी प्रबल होती है। जब इस प्रकृत इच्छा की तुष्टि का उपाय नहीं बनता तो मन मे 'हीनत्व ग्रंथि' (inferiority-complex) पड़ जाती है। मानव इस ग्रंथि पर जय पाने के लिये और आत्म-स्थापन की प्रकृत इच्छा की तुष्टि के लिये झूठे बहाने ढूँढ़ता है। मानव-स्वभाव ऐसा, इस प्रकार का जटिल, होने के कारण ही वह युवती अपनी देह मे रोगों की भावना और धारणा करती थी। किन्तु ध्यान मे रखने की बात यह है कि यह सारा व्यवहार वह जान-बूझकर नहीं करती, उसे सचमुच शरीर-दौर्बल्य का अनुभव होता था।

फ्रायड के सिद्धान्त को ध्यान मे रखने से इस प्रकार 'रोगों का बहाना,' अतृप्त कामवासना का द्योतक है। उसका पति फिल्म-डायरेक्टर था। इस कारण सदा लड़कियों (अभिनेत्रियों) के साथ रहता। इससे उसकी पत्नी—वह युवती—अपने अज्ञात मन मे उससे असंतुष्ट रहती। समय लेकर यही असंतोष तथा संदेह उस प्रकार के रोग के रूप मे प्रकट हुआ।

इसी प्रकार कभी-कभी पूर्ण स्वस्थ व्यक्तियों को यह शंका हो जाती है कि उन्हें क्षयरोग हो गया है, जब कि वस्तुतः यह उनका निरा मन का भ्रम होता है। शरीर की दृष्टि से यह भले ही हानिकारक न हो, किन्तु मन की दृष्टि से महत्त्व का है।

स्नायविक रोग के कारण :—विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ है कि

यह रोग अधिकतर अन्तर्मुखी प्रकृति के लोगों को होता है। रोग का कारण मन की दशा से सम्बन्धित है। सिर मे दर्द तथा देह मे थकान के अनुभव का कारण शारीरिक नहीं मानसिक है। रोगी की अज्ञात और अव्यक्त इच्छाओं (unconscious desires) तथा परिस्थिति की प्रतिकूलता का परस्पर संघर्ष इस रोग का मूल है। अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाने मे जो कठिनाइयाँ रोगी को आती हैं, उन्हें समझ लेना ही रोग का कारण जान लेना है। ये कठिनाइयाँ प्रायः दो प्रकार की होती हैं: मुख्य (primary) और गौण (secondary)। मुख्य कारण 'हीनत्व-ग्रंथि' (inferiority-complex) और गौण 'काम-ग्रंथि', (sex-complex) है। यह बात ऊपर लिखे उदाहरण के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाती है। हमे यह भली-भांति विदित है कि 'हीनत्व-ग्रंथि' (inferiority-complex) किस प्रकार हमारे वातावरण को अनुकूल बनाने मे बाधक होती है। अथवा इस ग्रंथि का हमारे जीवन मे कोई भी उपयोग नहीं है। आत्म-स्थापन की मूल प्रवृत्ति की उपस्थिति के कारण मनुष्य 'हीनत्व ग्रंथि' पर जय पाना चाहता है, और जय का अन्य साधन-उपाय न देख अपनी दुर्बलताओं को ही उचित और सहज-स्वाभाविक सिद्ध करने के लिये मनोरोगों का आश्रय लेता है। इस प्रकार स्नायविक रोग मानव के मनःक्षेत्र मे दो परस्पर-विरोधी शक्तियों—आत्म-स्थापन और हीनत्व-ग्रंथि अथवा प्रकृत इच्छा और प्रतिकूल परिस्थिति—मे एक समझौता लाता है। और जीवन मे आत्म-निर्वाह का अवसर लाता है।

फ्रायड के अनुसार स्नायविक रोग का प्रमुख कारण 'काम-ग्रंथि' है और गौण 'हीनत्व-ग्रंथि'। वस्तुतः 'काम-ग्रंथि' से ही 'हीनत्व-ग्रंथि' बनती-उठती है।

स्नायविक रोग प्रायः भावुक व्यक्तियों को होता है। दाम्पत्य के दायित्वों से उन्हें भय लगता है: वे उस विषय को बहुत गूढ़ और गंभीर मानते हैं। साथ ही जीवन की समस्या को कठिन-दुरूह समझते हुए भी वे प्रसन्नचित्त रहते हैं। दूसरे शब्दों में, वे जीवन के प्रति उदासीन रहते हैं, कठिनाइयों

को विशेष महत्त्व नहीं देते। स्वभाव के वे भावुक (sensitive) होते हैं: एक साधारण सी घटना भी उन्हें चंचल-उद्विग्न कर देती है। अधिकतर स्त्रियाँ विवाह के बाद इस रोग की रोगिणी हो जाती हैं। अवस्था अधिक होने पर उससे छुटकारा पा जाती हैं। कारण, भावुकता युवावस्था मे ही रहती है। तभी छोटी-छोटी बातें भी हृदय पर आघात करती हैं। फिर ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती है मनुष्य न तो उतना भावुक रहता है और न उसकी बड़ी बड़ी आकांक्षाएँ होती हैं कि उसके अज्ञात मन मे 'हीनत्व' या किसी और प्रकार की ग्रंथियाँ बन सकें।

"एक लड़की स्वभाव से अन्तर्मुखी थी। सभा-सोसाइटी मे आना-जाना तथा खेल तमाशों मे भाग लेना उसे पसन्द नहीं था। अधिकतर वह अपने कल्पना-लोक मे ही रहती। उसने अपने को जीवन की वास्तविकताओं—परिस्थितियों—के मेल मे लाना चाहा, किन्तु असफल रही। परिणाम-स्वरूप उसमे 'हीनत्व-ग्रंथि' पड़ गई। भाग्य से उसका विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हुआ जिसमे 'आत्म-स्थापन' की प्रवृत्ति प्रबल थी और जिसे जीवन मे भरपूर सफलता भी मिल रही थी। विवाह के बाद वह लड़की अपने उस पति पर सर्वथा आश्रित रहने लगी, और इस प्रकार उसमे जो हीनत्व की भावनाएँ घर कर गयी थीं, जाती रहीं। कारण, उस पति के साथ से तथा उसकी सफलता को देखकर उसमे आत्म-प्रकाशन की भावना जग गयी थी। कुछ समय बाद पति की मृत्यु हो गयी और वह पुनः उस मानसिक रोग का आखेट हो गई।" कहने का तात्पर्य यह है कि इस रोग का प्रमुख कारण जीवन की वास्तविकताओं—परिस्थितियों—से सामंजस्य स्थापित न कर सकना है।

उपचार:—इस रोग मे निर्देशन (suggestion) का कभी-कभी अच्छा प्रभाव पड़ता है, यद्यपि 'अबाध मनः आयोजन' (free-association) विधि रोग का निदान (diagncses) करने-समझने के लिये सबसे अधिक उपयुक्त साधन है और रोग के सही निदान का महत्त्व तो स्वयंसिद्ध सत्य है। रोग का सही निदान ही रोग का बहुत कुछ निवारण कर देता है। इस रोग पर 'विश्राम' का उल्टा प्रभाव पड़ता है; 'पुनर्शिक्षण' (re edu-

cation) भी व्यर्थ होता है। मनोदशा की वस्तु-स्थिति को समझना ही आवश्यक है। रोगी जब अपनी दुर्बलता को समझ लेता है, वह आप स्वस्थ हो जाता है।

कल्पनाग्रह (*Obsession*)

मॉर्टन प्रिन्स ने 'औब्सेशन' शब्द का प्रयोग विशेष व्यापक अर्थ मे किया है, क्योंकि उनके इस रोग के विवरण मे सभी प्रकार के 'व्यक्तित्व-विकारों' (personality disorders) का वर्णन मिल जाता है। इससे वैयक्तिक भेद (individual differences) का भी अनुमान लग जाता है। उनके अनुसार इस रोग के चार वर्ग हैं :—

१. इस प्रकार के औब्सेशन मे रोगी किसी संवेग (emotion) का अनुभव किये बिना ही उसका प्रदर्शन करता है और इसकी उसे चेतना नहीं रहती। जैसे, युवावस्था में कोई-कोई लड़की अकारण हँसती या रोती पाई जाती है। वास्तव मे उस समय उसे कोई सुख या दुःख नहीं होता। यह एक प्रकार का 'हिस्टीरिया' है।
२. इसमे रोगी संवेग का अनुभव करने के पश्चात् उसका प्रदर्शन करता है, किन्तु वह यह नहीं जानता कि उसे उस संवेग का अनुभव कैसे हुआ। बिना कारण जाने वह प्रसन्न भी होता है और खिन्न भी। जब उसके मन पर, किसी प्रकार का संवेग अनुभव करने पर (प्रेम का ही संवेग हो) कोई चिंता छा जाती है तो वह चिन्ता रोग (anxiety neurosis) से पीड़ित माना जाता है।
३. इसमे मॉर्टन ने 'भीति रोग' (phobia) के रोगी को रखा है। इसमे रोगी भय (संवेग) का अनुभव करता है, उस अनुभव को अपने क्रिया-व्यवहार द्वारा व्यक्त करता है, उसके कारण से परिचित रहता है और उसके 'उत्तेजक-तत्त्व' (stimulus) से भी परिचित रहता है यद्यपि वह तत्त्व मात्र उसके भाव (संवेग) को उत्तेजित करने के लिये पर्याप्त नहीं होता।

४. इसमे रोगी का संवेग व्यक्त होता है, संवेग और उसके उत्तेजक तत्त्व में संबंध रहता है। किन्तु रोगी अपने रोग का जो कारण बताता है वह सदा निराधार और तथ्यहीन होता है। उदाहरणार्थ एक युवती है: वह दुःखी रहती है, क्योंकि वह समझती है कि वह पागल हो जायगी। कोई भी व्यक्ति यह सोच सकता है कि इस प्रकार की बात पर दुःखी रहना स्वाभाविक ही है। दुःख उसके विश्वास की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। पर यदि कारण पर विचार किया जाय तो वह निराधार ही ठहरेगा।

यह धारणा मॉर्टन प्रिंस की निज की है। साधारणतः 'औब्सेशन' शब्द का प्रयोग सीमित अर्थ मे किया जाता है। पावलॉव (Pavlov) ने इसकी व्याख्या कायिक आधार पर की है, 'परंतु व्यक्तित्व-विकारों' (personality-disorders) का संबंध मानसिक अवस्था से होता है।

कल्पनाग्रह रोग के लक्षण :—इसका प्रमुख लक्षण विलक्षण कल्पनाओं का आखेट होना है। ये कल्पनाएँ व्यक्ति को निकम्मा कर देती हैं। विशेषता यह है कि इस रोग का रोगी प्रायः आध्यात्मिक और विचारशील होता है। उसे बोध रहता है कि उसकी कल्पनाएँ अर्थहीन हैं। उनका कोई वैज्ञानिक मूल्य-भाव नहीं; किन्तु फिर भी वह उनका खिलौना बना रहता है। जभी वह किसी हठीली (आग्रही) कल्पना से छूटने का प्रयत्न करता है कि कोई दूसरी आ जाती है और इस प्रकार उसके मन पर उनका ताँता छाया रहता है। कल्पनाओं की एक लड़ी-सी बन जाती है। निम्न उदाहरण इसे समझने मे सहायक होगा। यह उदाहरण अर्नेस्ट जोन्स की प्रसिद्ध पुस्तक 'पेपर्स ऑन साइकोएनैलिसिस' (*Papers on Psycho-analysis*) से लिया गया है :—

"रोगी की अवस्था ४६ वर्ष की थी। वह एक प्रिन्टर था। कल्पना-ग्रह के रोग का आक्रमण उस पर कई बार हुआ। पहली बार उसकी अवस्था २८ वर्ष की थी। उस समय उसके मन मे यह कल्पना आयी कि उसकी माँ ने किसी की हत्या कर डाली है। यह कल्पना उसके मन मे एक माह तक बनी रही। वह माँ के कमरे और सब चीज-वस्तुओं की छान-बीन करता

रहता कि कहीं रक्त के चिह्न तो नहीं हैं। इस विचित्र कल्पना से वह परेशान था और प्रयत्न करके भी उसे अपने मन से न निकाल सका। इस आक्रमण के चार वर्ष बाद उसके मन मे यह कल्पना जम गई कि उसे मधुमेह (diabetes) हो गया है। इस कल्पना से भी वह बहुत दिनों तक परेशान रहा। तीसरे आक्रमण मे, जिसका वह पूरे डेढ़ वर्ष तक आखेट रहा, उसके मन मे यह कल्पना बैठ गयी कि उसकी लड़की के मृत शरीर को कोई कब्र से निकाल ले गया है। इस कल्पना ने उसे ऐसा सताया कि उसका खाना-पीना, घूमना-फिरना, सोना-जागना सब दूभर हो गया। यह कल्पना उसके मन मे तब आई जब कि एक दिन सड़क पार करते उसे यह भ्रम हुआ कि उसने सचमुच अपनी लड़की के मृत शरीर को एक गाड़ी मे जाते देखा है। लोगों ने भरसक उसे समझाया। पर सब व्यर्थ रहा। अपने कमरे की खिड़की मे वह सदा इसी आशा मे बैठा रहता कि लड़की का मृत शरीर दिखलाई पड़ जाय। घरवालों ने कमरे की खिड़की बन्द कर दी, किन्तु उसकी कल्पना पर रोक-थाम का कोई उपाय न चल सका।"

इस उदाहरण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि किस प्रकार कल्पनाग्रस्त व्यक्ति (obsessed person) प्रयत्न पर एक कल्पना से मुक्ति पाने पर दूसरी के चंगुल मे आ जाता है। परिणाम यह होता है कि हर बात, हर चीज़ और हर व्यक्ति पर वह सन्देह करने लगता है। यों तो साधारण जन भी कभी-कभी सन्देही स्वभाव के होते हैं। किन्तु उसमे अति हो जाने पर वे मानसिक रोग के रोगी समझे जाते हैं। ऐसे कुछ रोगियों को शुभ-अशुभ का वहम विशेष रहता है।

"एक व्यक्ति के मन मे १३ की संख्या निरन्तर घूमा करती थी। वह केवल यह सोचा करता कि कोई भी चीज जोड़ने या घटाने में १३ न हो जाय। किसी कमरे मे मेज कुर्सी मिलाकर यदि १३ निकलती तो वह तुरंत घबड़ाकर एक हटा देता। १३ अतिथि वह कभी निमंत्रित नहीं करता। किसी गली के नाम मे यदि १३ अक्षर हों तो उसे देखते ही भय लगता और वहाँ से भाग खड़ा होता। घड़ी ने यदि तीन बजाये और कमरे मे उस समय १०

व्यक्ति होते, वह सिहर उठता। अपने घर से तेरहवें घर तक पहुँचने के पहले ही वह किसी गली से मुड़ जाता। सीढ़ी चढ़ते समय तेरहवीं सीढ़ी पर या तो बहुत सँभालकर पैर रखता या कूदने का प्रयत्न करता। उसके मित्र जो उसे जानते थे उससे कभी 'ओह, गुड मॉर्निंग'* नहीं कहते थे। कभी यदि भूल से ऐसा हो जाता तो वह उदास हो जाता।"

इसी उदाहरण मे 'भय' प्रमुख संवेग है। इस कारण यह 'भीति रोग' (phobia) का उदाहरण समझा जा सकता है। पर वास्तव मे यह 'भीति रोग' का उदाहरण नहीं है, क्योंकि इसमे 'उत्तेजक' (stimulus) का अभाव है। जब यह भय का भाव किसी 'उत्तेजक' की उपस्थिति से होगा तो उसका रोगी 'भीति रोग' (phobia) से ग्रस्त माना जायगा। यह रोगी १३ संख्या का इंतजार नहीं करता था कि वह उत्तेजक रूप मे आये और आकर उसे उत्तेजित करे, वह तो हमेशा इस संख्या के बारे मे सोचा-विचारा करता। इसलिये यह उदाहरण 'भीति रोग' (phobia) का नहीं बल्कि कल्पनाग्रह (obsession) का है।

कल्पनाग्रह रोग का कारण:—अब प्रश्न यह है कि इस प्रकार के विलक्षण विचार का क्या कारण है? इस प्रश्न पर भिन्न-भिन्न मनोविज्ञान-वेत्ताओं के भिन्न-भिन्न मत हैं। किस विशेष उदाहरण की व्याख्या मे कौन सिद्धान्त लागू होगा यह रोगी की मनोवृत्ति, उसके जीवन-इतिहास तथा वातावरण पर निर्भर है। इस विभिन्नता का प्रमुख कारण वैयक्तिक भेद (individual differences) होता है। मानव एक दूसरे से रंग-रूप और डील-डौल मे ही भिन्न नहीं, स्वभाव, रुचि और प्रवृत्तियों मे भी भिन्न होता है। किसी मे काम-वासना का प्राधान्य है तो किसी मे आत्म-स्थापन का। किसी भी प्रवृत्ति का दमन रोग का कारण हो सकता है। किन्तु इस रोग मे अधिकतर, जैसा फ्रायड का मत है, काम-प्रवृत्ति का दमन ही रोग का प्रधान कारण है।

उपचार:—इसमे मनोविश्लेषण की 'अबाध मन: आयोजन' (free-association) की विधि उपचार के लिये विशेष उपयोगी है। इसके प्रयोग की विधि अगले अध्याय मे स्पष्ट की जायगी।

* अंग्रेजी मे लिखे जाने पर 'oh, good morning' मे १३ अक्षर होते हैं।

हठ-प्रवृत्ति (*Compulsion*)

हठ-प्रवृत्ति रोग बहुत कुछ कल्पनाग्रह (obsession) रोग जैसा ही है। अन्तर इतना है कि कल्पनाग्रह मे अकारण और बिना किसी उत्तेजन (stimulus) के रहे नाना प्रकार के विचित्र विचार मस्तिष्क मे घूमते हैं; हठ-प्रवृत्ति मे इसी प्रकार विचित्र क्रियाएँ होती हैं। मानसिक द्वन्द्व (conflict) और भावना-ग्रंथियों (complexes) का प्रदर्शन विलक्षण क्रियाओं मे होता है जो आदत का रूप ले लेती हैं। रोगी जानता है कि उसकी वे क्रियाएँ, टेव-बान अकारण, असंगत तथा आधारशून्य हैं, परन्तु वह विवश रहता है। दूसरे शब्दों मे 'कल्पनाग्रह' मानसिक क्रिया (implicit activity) है और हठ-प्रवृत्ति शारीरिक क्रिया (overt activity)। एक की क्रिया अव्यक्त है और दूसरे की व्यक्त। 'कल्पनाग्रह' का रोग कभी-कभी 'हठ-प्रवृत्ति' मे परिवर्तित भी हो जाता है।

हठ-प्रवृत्ति के उदाहरण फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'लेक्चर्स ऑन साइको-ऐनेलिसिस' (*Lectures on Psycho-analysis*) मे निम्न प्रकार दिये हैं :—

"एक तीस वर्ष की युवती थी। उसकी यह बान थी कि दिन मे नित्य कई बार दौड़कर बगल के कमरे मे जाती, वहाँ मेज के पास अमुक भाव-मुद्रा मे खड़ी होती और नौकरानी को बुलाने के लिये घंटी बजाती। नौकरानी के आने पर कभी उससे कुछ काम करने के लिये कहती, कभी यों ही वापस कर देती। फिर दौड़कर अपने कमरे मे लौट आती। इस युवती को यह ज्ञान नहीं था कि यह बान उसे कैसे पड़ गई। पर उस समय के उसके भाव और मुद्रा का एक विशेष रूप-प्रकार अवश्य था, जिसका मनोविश्लेषण के आधार पर निरूपण किया जा सकता है।"

इसी प्रकार एक दूसरी उन्नीस वर्षीया युवती का उदाहरण है। वह शिक्षिता थी और सुसंस्कृत भी। बालपन मे सदा प्रसन्न स्वभाव की थी। पर अब इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते न जाने क्यों वह चिड़चिड़ी हो गयी और

मलीन मन रहने लगी। खेल-कूद, हँसी-चुहल आमोदों से उसकी रुचि जाती रही। घर से वह कठिनाई से ही बाहर निकलती। पर सोने जाने के पहले कुछ नियत चेष्टाएँ करने की उसे बान पड़ गई थी, जिन्हें किये बिना उसे नींद नहीं आती थी। साधारण रीति से कोई भी व्यक्ति उस समय कुछ न कुछ करता है, किन्तु इस युवती की चेष्टाएँ भिन्न थीं। विश्लेषण पर जान पड़ा कि उसकी क्रियाएँ-चेष्टाएँ उसके आंतरिक द्वंद्व के कारण थीं: उसका बाह्य रूप थीं। उसका नियम था कि सोने जाने से पहले वह कमरे का वातावरण ऐसा कर दे, अर्थात् कि कमरे मे ऐसा कुछ न रहने दे जो उसकी निद्रा मे बाधा डाल सके। इसके लिये वह दो बातें करती: एक, बड़ी घड़ी बन्द कर देती और छोटी घड़ियों को पास के कमरे मे रख देती; और दो, सोने के कमरे से गुलदस्ता हटा देती। घड़ी इसलिए बंद करती कि उसकी टिक-टिक से निद्रा भंग न हो, और गुलदस्ता इसलिए हटा देती कि रात मे कहीं गिरकर आवाज न करे। बिस्तर भी वह एक विशेष प्रकार से सजाती थी। इस प्रकार की असामान्य टेवें हमारे अज्ञात मन की ग्रंथियों से संबंधित हैं।

कथा-कहानियों मे भी ऐसे उदाहरण अनेक मिलते हैं। शेक्सपियर के नाटक 'मैकबेथ' मे हत्या के बाद लेडी मैकबेथ की बान हाथ धोने की पड़ जाती है। यह बान अकारण और अकस्मात् नहीं; इसके पीछे वास्तव मे एक बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य छिपा है। विश्लेषण पर ऐसा मानना अनुपयुक्त न होगा कि यह चेष्टा उसके अज्ञात मन के 'किये अपराध से शुद्धि पाने के' उपाय का एक प्रतीक था। साधारणत: हम जब कोई अनुचित काम करते हैं तो 'दमन' के कारण ज्ञात मन भले ही उसका अनुभव न करे, पर अज्ञात मन मे नैतिक बुद्धि (super-ego) के कारण अपराध-भाव (sense of guilt) उपजता है और यही अपराध-भाव इस रोग मे हठीली आदत के रूप में प्रकट होता है। लेडी मैकबेथ का एक सर्वथा मनोवैज्ञानिक केस है। उसके व्यवहार, रंग-ढंग और चरित्र-विश्लेषण से यह पूर्णत: प्रमाणित होता है। हत्या के बाद हाथों का मलना, निद्रा-विचरण (somnambulism) मे कुछ विशेष शब्दों का उच्चारण करना, एक भाव विशेष से बिस्तर से उठकर नाइट गाउन

पहनना, ड्रॉअर खोलकर कागज़ निकालना, कुछ लिखना, उस पर मुहर करना और फिर भी निद्रावस्था मे ही रहना—सब दिखलाता है कि उसका अज्ञात मन हत्या के परिणाम-स्वरूप अपराध-भाव (unconscious sense of guilt) से ग्रस्त है, जिसकी अभिव्यक्ति इन सांकेतिक चेष्टाओं द्वारा होती है।

स्टेकल ने एक और रोचक उदाहरण दिया है। "एक उन्चास वर्षीया स्त्री को पाँच बच्चे थे। नित्य सबेरे वह एक विलक्षण बेचैनी का अनुभव करती और जब तक एक दो घंटा लगातार अपनी गृहस्थी के बारे मे किसी से बातें न कर लेती उसे चैन नहीं मिलता। उसकी उन अनर्गल बातों मे उसके पति की रुचि नहीं होती थी, और नौकरों से बातें करते उसे अपमान लगता। किन्तु चैन पाने के लिये किसी से बात करना ही था। पत्नी की यह मन:स्थिति देखकर पति ने एक दूर की सम्बन्धिनी को इस कार्य के लिये वेतन पर नियुक्त किया। अब नित्य सबेरे साढ़े आठ पर वह उस सम्बन्धिनी युवती के कमरे मे दौड़ती जाती और बेरोक उससे अपनी गृहस्थी, बच्चों, पति-सम्बन्धी परेशानियों की बात करती। यह क्रम तब तक चलता जब तक वह थक न जाती। एक बार वह बीमार पड़ी: गले मे कुछ रोग हो गया। बोलने की एकदम मनाही थी। फिर भी वह अपने को रोक न सकी। नित्य घूमने के बहाने बाहर जाकर बड़बड़ाया करती। इस प्रकार वह क्रम चालू रहा। युद्ध के कारण उनकी आर्थिक स्थिति चिंताजनक हो गई और उस सम्बन्धिनी युवती को हटाना पड़ा। अब उस स्त्री के पास बातें सुनाने के लिये कोई साथी न रह गया। वह उदास और मलिन मन रहने लगी। लाचार पति ने उस युवती को फिर नियुक्त किया। विशेष बात यह हुई कि आगे जाकर यह बान उस दम्पति की लड़की को भी पड़ गई और वह अपनी बातें माँ को सुनाया करती।" विश्लेषण पर ज्ञात हुआ कि वह स्त्री अपने वैवाहिक जीवन से असन्तुष्ट थी। उसके कारण उसके अज्ञात मन मे अपराध-भाव (sense of guilt) बन गया; इसी से वह सदा अपनी परेशानी सुनाया करती कि लोग यह समझें कि उसे अपनी घर-गृहस्थी, पति और बच्चों का बहुत ध्यान है।

"अरविंग एफ एक बाईस वर्ष का चतुर और सुन्दर युवक था। कॉलेज मे

पढ़ता था। निर्धन घर का था; एक भाई और तीन छोटी बहनें थीं। वह बहिर्मुख (extrovert) था, फिर भी आरम्भ से ही कुछ विचार उसके मस्तिष्क मे घूमा करते और वे ही विचार आगे जाकर कार्य रूप मे परिणत हो जाते। साथ ही, विचार और क्रियाओं का स्थानान्तर भी हुआ करता। पहले उसे कंबल के सम्बन्ध मे विचार आया कि उसे बेंच दिया जाय या फेंक दिया जाय। कम्बल से विचार कोट मे गया—जब तक उसने पुराना कोट बदलकर नया न ले लिया उसके मन को शांति नहीं मिली। स्कार्फ़ की चेक डिज़ाइन से उसे ऐसी घृणा हो गई कि जब तक उसने उसे फेंक न दिया व्याकुल रहा। इसी प्रकार उसने तीन स्कार्फ लिये और बदल डाला। एक दिन काम करते समय उसके मन मे विचार आया कि यदि वह चश्मा पहने तो अधिक सुन्दर लगेगा। चश्मा खरीदा। वह पहने हुये काम कर रहा था कि मन मे एकाएक आया कि दूसरी मेज़ पर जो युवती काम कर रही है वह चश्मा पसंद नहीं करती। उसने चश्मा उतार दिया और निश्चय किया कि अब चश्मा जेब मे रखकर काम पर आवेगा"।

इस प्रकार 'हठ-प्रवृत्ति' (compulsion) मे कभी-कभी रोगी असामान्य कल्पनाओं के ही कारण असामान्य चेष्टाएँ करते हैं। 'हठ-प्रवृत्ति' मे रोगी को अपनी चिन्ताओं और विक्षेपों को (disturbing pre-occupations) क्रिया रूप मे व्यक्त करने की सहज प्रवृत्ति रहती है। 'कल्पनाग्रह' (obssession) के रोगी अपने विचार कार्यरूप मे परिणत करने का अवसर नहीं पाते।

भीति रोग (*Phobia*)

'भीति रोग' मे रोगी के मन मे कुछ विषय-वस्तुओं से असाधारण भय रहता है। यों तो यह संवेग (emotion) साधारण व्यक्तियों मे भी रहता है—नदी पार करने, पहाड़ चढ़ने और सूनी अँधेरी जगहों से सभी भय खाते हैं; पर इस भय और भीति रोग के भय मे अन्तर है:—

१. भीति रोग (phobia) मे भय का भाव रोगी के व्यक्तित्व का एक भाग हो जाता है। साधारण अवस्था मे किसी मे जब भय-

संवेग उठता है तो वह क्षणिक होता है : थोड़ी देर के लिये उठता है और कारण हटते ही अथवा परिस्थिति बदलते ही विलीन हो जाता है।

२. भीति रोग का भय साधारण भय-संवेग से अधिक तीव्र होता है।

३. भीति रोग के जो कारण अर्थात् उत्तेजक (stimulus) रहते हैं, साधारण भय उत्पन्न करने के लिये वे काफ़ी नहीं हैं। खुली जगह भीति रोग के रोगी मे भय उपजा सकती है, पर उससे साधारण व्यक्तियों मे भय नहीं होगा।

४. भीति रोग के रोगी को ज्ञात रहता है कि उसका भय हास्यास्पद है; साधारण प्रकार के भय से भीत जन अपने भय को उचित समझते हैं।

५. भीति रोग का रोगी अपने भय पर रोक नहीं लगा सकता। वह उसकी स्वाभाविक (spontaneous) भावना होती है। किन्तु साधारण व्यक्तियों का भय समझाने-बुझाने से हटाया जा सकता है। साधारणतः बालक को अँधेरे से भय लगता है; किन्तु यदि वह बराबर अँधेरे मे ले जाया जाय, तो उसका भय हट जाता है।

भीति रोग का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जा सकता है। यदि यह उन वस्तुओं और विषयों के स्वभाव के आधार पर किया जाय जो भय उपजाते हैं तो एक लम्बी सूची बन जायगी :

ऊँचे स्थान का भय (*acrophobia*)
खुले स्थान का भय (*agorophobia*)
बंद स्थान का भय (*claustrophobia*)
भीड़ का भय (*ochlophobia*)
रोग का भय (*pathophobia*)
चलने फिरने का भय (*phobia of locomotion*)
विष देने का भय (*toxophobia*)
पशुओं का भय (*zoophobia*

इस प्रकार भीति रोग अनेक प्रकार का हो सकता है। परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह तीन प्रकार का है :—

१ सरल स्थूल-मूर्त भीति रोग (*simple concrete phobia*)

२ प्रतीकात्मक स्थूल-मूर्त भीति रोग (*symbolic concrete phobia*)

३ प्रतीकात्मक सूक्ष्म-अमूर्त भीति रोग (*symbolic abstract phobia*)

पहले प्रकार मे किसी स्थूल-मूर्त वस्तु से भय होता है। दूसरे प्रकार मे भी भय का कारण कोई स्थूल-मूर्त पदार्थ ही होता है, किन्तु वह किसी अन्य पदार्थ का प्रतीक होकर भय का कारण बनता है और रोगी यह नहीं जानता कि उस पदार्थ का वास्तव मे क्या अर्थ है। तीसरे प्रकार के भीति रोग मे जिसमे भय-संवेग का विषय अमूर्त-सूक्ष्म प्रतीक है, अर्थ समझना और भी कठिन और दुष्कर होता है।

सरल स्थूल-मूर्त भीति रोग (simple concrete phobia) के उदाहरण:

"एक नवयुवती को सात वर्ष की अवस्था से बहते जल और जल की छप-छपाहट से बड़ा भय लगता था। यहाँ तक कि रोग के आक्रमण के समय उसके स्नान आदि के बारे मे उसके घरवालों को उससे काफ़ी कुछ जबरदस्ती तक करनी पड़ती। एक बार पाठशाला मे फ़व्वारे के जल की आवाज़ से वह बेहोश भी हो गई थी। रेलगाड़ी मे जब कभी वह यात्रा करती तो खिड़की बंद कर लेती कि कोई बहता सोता न दीख जाय। इन सब व्यवहार का जब कभी उससे कारण पूछा जाता वह चुप रहती और प्रयत्न करके भी कोई उत्तर उसे न सूझता।"

मनोविश्लेषण से पता लगा कि उसके इस भय का बीज बचपन की एक घटना थी। सात वर्ष की अवस्था मे वह एक बार अपनी माँ और चाची के साथ घमने गयी थी। माँ लौट आयी थी और वह चाची के साथ रह गयी। चाची के साथ घूमते-घूमते वह अकेली किसी ओर निकल गयी। बहुत खोज पर चाची ने देखा कि वह दो बड़ी चट्टानों के बीच पड़ी है, सिर पर जल गिर रहा है और वह बहुत डरी हुई है। बस, तभी से उस लड़की के अज्ञात मन मे बहते जल से भय बैठ गया। तेरह वर्ष तक उसका भय बना रहा। जब उसकी चाची दुबारा आई और बात-बात मे उस घटना का जिक्र किया, लड़की को

उसका स्मरण हो आया और उसका वह भय जाता रहा और वह स्वस्थ हो गई।

इसी प्रकार एक पचपन वर्ष के पुरुष को बचपन से ही यह भय था कि उसे कोई पीछे से पकड़ लेगा। इस कारण वह जब कभी सड़क पर घूमता बराबर पीछे देखा करता कि कोई पीछा तो नहीं कर रहा है। जब कभी वह कहीं सभा-समाज मे जाता, अपनी कुर्सी दीवार के सहारे लगा लेता। सिनेमा और अन्य भीड़ के स्थानों मे जाने मे वह बहुत भय खाता। यह क्यों, यह उसकी समझ मे ही न आता; पर जब पचपन वर्ष की अवस्था मे वह एक बार नगर मे लौटा जहाँ उसका बचपन् बीता था, उसे उस काल की सब घटनाएँ याद आयीं और उसका भय जाता रहा।

इन उदाहरणों का विश्लेषण करने से रोग की विशेषताएँ समझ मे आ जाती हैं। पहली बात यह है कि इस प्रकार के असाधारण भय अतीत की घटनाओं से संबंधित रहते हैं: ये उसी का परिणाम होते हैं। दूसरे शब्दों मे, इस रोग मे अतीत की घटनाएँ तथा वर्त्तमान अनुभूति और व्यवहार इस प्रकार संबंधित रहते हैं कि भय का संचार होना स्वाभाविक हो जाता है। दूसरी बात यह है कि इसमे रोगी को पिछली घटना की चेतना नहीं रहती और जब वह अपने भय के भाव पर विजय पाना चाहता है, उसका प्रयत्न सदा असफल जाता है। साधारण विस्मरण (forgetfulness) अथवा भुलक्कड़पन और भीति रोग की विस्मृति मे अंतर है। भीति रोग के रोगी के विस्मरण का कारण मूल प्रवृति का दमन है; और प्रारम्भिक अनुभव (original experience) मे अपराध-भाव छिपा रहता है।

प्रतीकात्मक स्थूल-मूर्त भीति रोग (symbolic concrete phoba) मे इस प्रकार की वस्तुएँ जैसे चाकू, झाड़ू, कीड़े इत्यादि से भय होता है। यदि रोगी को चाकू से भय लगता है, यह भय चाकू का नहीं—वरन् उस वस्तु-विषय का जिसका यह प्रतीक है।

"एक युवती को कई वर्ष से यह भय बना रहा कि वह जब सोती होगी तब उसकी माँ उसकी हत्या उस छूरी से कर डालेगी जो रसोईघर मे रखी है। यह भय इतना बढ़ गया कि वह रात मे सो तक न पाती। जब तक माँ जागती

रहती भय के मारे वह सोने को न जाती। वह जानती थी कि उसका यह भय निराधार और हास्यास्पद है; फिर भी उस चाकू को वह कभी न छूती। कभी-कभी वह ऐसा भी अनुभव करती कि चाकू से वह एक तरफ डरती है और दूसरी तरफ वह उसके लिये आकर्षण की वस्तु है।"

विश्लेषण करने पर पता लगा कि वह 'चाकू' उसकी दमन की हुई काम-प्रवृत्ति का प्रतीक था। इसी कारण अज्ञात अतृप्त काम-वासना के प्रतीक 'चाकू' से वह डरने लगी।

प्रतीकात्मक सूक्ष्म-अमूर्त भीति रोग (symbolic abstract phobia) मे मनोविच्छेद (mental dissociation) के रोचक उदाहरण मिलते हैं। इसमे रोगी को 'खुली जगह', 'ऊँची जगह' और 'बंद जगह' से भय विशेष रूप से लगता है। 'खुली जगह' का भय सबसे महत्त्व का है। सचमुच रोगी के भय की वस्तु 'खुली जगह' नहीं है। 'खुली जगह' किसी अन्य वस्तु का प्रतीक है। इसी प्रकार बन्द जगह, ऊँची जगह, या मृत्यु भय के वास्तविक कारण (वस्तुएँ) नहीं, किसी अन्य वस्तु के द्योतक हैं। विश्लेषण करने पर पता लगता है कि ऐसे भय का कारण बाह्य वस्तु नहीं बल्कि आंतरिक असंतोष होता है।

"एक बीस वर्षीय युवक को चलने से एक प्रकार का भय पैदा हो गया। जब कभी वह एक कमरे से दूसरे कमरे मे जाना चाहता चपरासी उसे कुर्सी पर ले जाता। इसका कारण यह था कि उसे सदा यही भय बना रहता कि कहीं चलने से उसकी मृत्यु न हो जाय।"

इस प्रकार के भीति रोग का प्रमुख कारण मूल मे अहं भाव है। जब किसी को आकांक्षाओं की सन्तुष्टि तथा अहं (ego) के पोषण-प्रदर्शन का अवसर नहीं मिलता तो इस प्रकार के आधारशून्य अकारण और असाधारण भय मन मे पैदा हो जाते हैं। मानसिक शक्ति का केन्द्र 'अहं' के हो जाने से व्यक्तित्व-संतुलन (balance of personality) खो जाता है और भावना-ग्रंथियाँ complexes) पड़ जाती हैं।

संक्षेप मे, प्रतीकात्मक स्थूल-मूर्त भीति रोग (symbolic concrete

phobia) का कारण अतृप्त कामवासना होता है, और प्रतीकात्मक सूक्ष्म-अमूर्त भीति रोग (symbolic abstract phobia) का कारण अहं भावना अर्थात् अहं (ego) का अत्यधिक विकास है। प्रतीकात्मक सूक्ष्म-अमूर्त भीति रोग को छोड़ अन्य प्रकार के भीति रोगों मे अहं का तादात्म्य (ego-identification) उन वस्तुओं से होता है जो स्थूल पदार्थ के रूप मे होती हैं। अतीत से संबंधित रहते असाधारण भय सदा वर्त्तमान के लिये ही होता है और रोग के आक्रमण-समय को छोड़ शेष सब समय रोगी काफ़ी प्रसन्न रहता है और अपने को वातावरण के अनुरूप पाता है। इस असाधारण भय के होते भी भीति रोग के रोगी—वे स्त्री हों या पुरुष—विवाह के दायित्व से पीछे नहीं हटते। यह समस्या प्रतीकात्मक सूक्ष्म-अमूर्त भीति रोग के रोगी मे तो उठती ही नहीं। हाँ, प्रतीकात्मक स्थूल-मूर्त भीति रोग मे कभी-कभी उठती है। भीति रोग के लिये दमन की कार्य-प्रणाली आवश्यक है। प्रायः साधारण सूक्ष्म-मूर्त भीति रोग (simple concrete phobia) और प्रतीकात्मक स्थूल-मूर्त भीति रोग (symbolic concrete phobia) मे तो दो विरोधी प्रतिक्रियाएँ (self-repudiating reactions) भी मिलती हैं। स्मरण रखने की बात यह है कि हरेक प्रकार के भीति रोग का सम्बन्ध हमारी मूल-प्रवृत्ति से होना आवश्यक है।

उपचार:—इस रोग से भी बचने के लिये 'अबाध मनःआयोजन' (free-association) की विधि सबसे अधिक उपयुक्त है। इसके प्रयोग से रोगी के जीवन का इतिवृत्त इतिहास जाना जा सकता है। इससे रोगी की दुर्बलताएँ तथा रोग के कारण विदित हो सकते हैं। कभी-कभी 'सम्मोहन' भी सफल होता है। रोगी को सम्मोहित करके 'निर्देशन' द्वारा अतीत की घटनाएँ पुनः स्मरण कराई जा सकती हैं। वास्तव मे मानसिक रोगों के निवारण का सबसे अच्छा उपाय अतीत की घटनाएँ स्मरण कराना तथा व्यक्तित्व के विषय मे पूर्ण ज्ञान पैदा करना ही है। इससे रोगी स्वस्थ हो जाता है। पर इसके लिए रोगी का बहुत सूक्ष्म विश्लेषण करना आवश्यक होता है।

चिंता रोग (*Anxiety Neurosis*)

यह भी एक प्रकार का भय है; किंतु 'भीति' (phobia) और 'चिंता' (anxiety) मे भेद यह है कि 'भीति' का विषय वर्त्तमान होता है और 'चिन्ता' का भविष्य। सभी चिन्ताएँ असाधारण नहीं होतीं। विद्यार्थियों की चिंता, कि कहीं परीक्षा मे असफल न हो जायँ, एक स्वाभाविक चिन्ता है। निर्धन की आहार-चिंता भी साधारण श्रेणी की चिंता है। परन्तु उस व्यक्ति की चिंता जिसकी आर्थिक स्थिति अच्छी है, परिवार के प्राणी सब स्वस्थ हैं, तथा समाज मे उसकी प्रतिष्ठा है—असाधारण कही जायगी। साधारण और असाधारण चिंता मे भेद यह है कि साधारण चिंता परिस्थिति की कठिनाइयों की प्रतिक्रिया है और असाधारण चिंता आंतरिक कठिनाइयों की। अर्थात्, असाधारण चिंता अन्तर द्वंद्व (conflict) अथवा आत्म-संघर्ष का परिणाम है। फिर भी हम उन्हें एक दूसरे से विलग नहीं कर सकते। दोनों प्रकार की चिन्ताएँ एक दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं। यह समझने के लिये कि कोई व्यक्ति 'साधारण' अथवा 'असाधारण' चिंता मे है उसकी परिस्थितियों तथा उसके व्यक्तित्व का गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। प्राय: एक ही परिस्थिति मे कुछ व्यक्ति चिंतित रहते हैं, कुछ नहीं। जो चिंतित रहते हैं वे चिंतित न रहनेवालों से मनोदशा मे भिन्न होते हैं। किन्तु केवल इस आधार पर कि वे चिंतित रहते हैं उन्हें असाधारण नहीं कहा जा सकता। उनकी चिंता साधारण भी हो सकती है। असाधारण चिंता (anxiety neurosis) आंतरिक विक्षेप से सम्बन्धित होती है। रोगी अपनी चिंता का कारण नहीं जानता और उसमें अपने विचारों को न्यायसंगत करने की हठीली बान होती है।

असाधारण चिंता दो प्रकार की होती है :

१. वह जो बिना कारण होती है, अर्थात् जिसका किसी स्थूल वस्तु से संबंध नहीं होता। इसे मुक्तचारी चिन्ता (free-floating anxiety) कहते हैं।

२. वह जिसका संबंध किसी मूर्त-स्थूल वस्तु से होता है, जैसे माँ की बच्चों के लिये चिन्ता। इस प्रकार की चिन्ता के विषय समाज मे स्थान,

आर्थिक स्थिति और स्वास्थ्य भी होते हैं। स्वास्थ्य की चिन्ता 'हाइ-पोकौन्ड्रिया' की विशेषता है। अपने स्वास्थ्य के विषय मे असाधारण रूप मे चिन्तित होने के कारण एक सज्जन अपने घर के बाहर भी न निकलते थे। उन्हें क्षण-क्षण यहीं चिंता सताया करती कि मार्ग मे डॉक्टर की अनुपस्थिति मे कहीं उनके हृदय की धड़कन बन्द न हो जाय। जब कभी वह बाहर निकलने का साहस करते उनके साथ एक डॉक्टर अवश्य रहता। डॉक्टरों ने विश्वास दिलाना चाहा कि उनके हृदय की गति-दशा ठीक है, किन्तु सज्जन महोदय की चिन्ता बनी रही।

चिन्ता रोग के लक्षण:—इस रोग मे शारीरिक और मानसिक दोनों ही लक्षण मिलते हैं। शारीरिक लक्षणों मे नाड़ी और हृदय की गति तीव्र होना तथा रक्त-प्रवाह और ग्रन्थि-स्राव (glandular secretions) का वेग बढ़ना विशेष उल्लेखनीय हैं। मानसिक लक्षणों मे भाँति-भाँति की निराधार कल्पनाएँ हैं। रोगी के मन मे बहुतकर यह कल्पना उठती है कि उसके मित्र-संबंधी की मृत्यु हो जायगी, मुसीबत का पहाड़ उस पर टूटनेवाला है और बस वह चिन्ता करने लगता है। कल्पनाग्रह (obsession) रोग मे चिंता विलक्षण विचार-कल्पनाओं मे छिपी रहती है और हठ-प्रवृत्ति (compulsion) रोग मे अभ्यास-चेष्टाओं के रूप मे रहती है; परन्तु चिंता रोग (anxiety neurosis) मे दमन की हुई इच्छा चिन्ता के ही रूप मे प्रकट होती है। अधिकतर रोगी मे भय, निराशा और आत्महत्या का भाव भविष्य के लिये होता है। किसी विषय-वस्तु मे विशेष रुचि नहीं रहती और अधिक ध्यान-विचार एकाग्र नहीं कर सकता।

१. चिंता रोग मे रोगी का ध्यान अतीत की ओर नहीं जाता। उसके ध्यान और रुचि का विषय वर्त्तमान और भविष्य की घटनाएँ रहती हैं। जो चिन्ताएँ उठती हैं वे वर्त्तमान और भविष्य घटना-संबंधी होती हैं।
२. रोगी दुखी-मलीन रहता है, पर वास्तव मे उतना नहीं जितना वह कहता है। वह अपने को सदैव संवेगात्मक व्यवहार-क्रियाओं (emo-

tional activities) से दूर रखने की चेष्टा करता है और उसकी चिंता बहुतकर अपने तथा अपने कुटुम्ब तक ही सीमित रहती है।

३. वह अपनी नित्य की क्रियाएँ बिना कठिनाई के करता है और उसका व्यवहार अन्य व्यक्तियों के अनुकूल होता है। वह अव्यवहारिक नहीं होता।

४. विवाह से वह घबड़ाता है। प्रायः परवर्गी (opposite sex) की ओर आकर्षित होना ही उसके रोग का कारण होता है।

५. स्वभाव से वह न तो अति बहिर्मुख (extrovert) होता है और न अन्तर्मुख (introvert)।

६. प्रायः स्वार्थी प्रकृति का होता है, और किसी वस्तु के प्रति उसका अनराग लगातार बहुत दिन नहीं रहता।

चिंता रोग के कारण:—फ्रायड के अनुसार चिन्ता रोग के लक्षण 'काम-वासना' के प्रतीक हैं। इस आधार पर इस रोग का कारण काम-वासना का दमन है। फ्रायड का इस विषय का दृष्टिकोण—जिसे मनोविज्ञान शास्त्र मे बड़े महत्त्व का स्थान प्राप्त है— उनके इन संक्षिप्त शब्दों से स्पष्ट हो जाता है: "चिंता के विषय मे चिकित्सा द्वारा जो कुछ अनुभव हुआ है उससे यही पता लगा है कि चिंता और काम-वासना मे निकट संबंध है। इसका मुख्य कारण अस्रवित कामशाक्ति (undischarged libido) है। कामशक्ति उत्तेजित होती है, पर उसकी सन्तुष्टि या उपयोग नहीं किया जाता। परिणाम यह होता है कि वह (कामशक्ति) स्वयं चिंता मे परिवर्तित हो जाती है।"*

* "With regard to anxious expectation, clinical experience has taught us that there is regular relationship between it and the disposition of the libido in the sexual life. The most frequent cause of anxiety neurosis is undischarged excitation which is aroused, but is not satisfied or used; in the place of this libido, which has been directed from its use, anxiety makes its appearance. I even thought, it was justifiable to say that this unsatisfied libido is directly transformed into anxiety." :

New Introductory Lectures—Freud.

अहं (ego) और इदम् (id) के संघर्ष मे अहं अपने नैतिक आदर्शों के कारण कामशक्ति से प्रेरित क्रिय.ओं से भागना चाहता है और इस प्रकार वह चिंता का घर हो जाता है। फ्रायड ने अपनी पिछली कृतियों मे इस सिद्धान्त मे संशोधन किया और यह पाया कि चिंता का कारण अहं का प्रभुत्व नहीं है, उसके लिये 'नैतिक मन' (super-ego) उत्तरदायी है। 'नैतिक मन' क्या है तथा इससे मानव क्रियाएँ किस प्रकार संचालित होती हैं यह बताया जा चुका है।

फ्रायड ने चिन्ता रोग का जो कारण और विवरण दिया है वह सर्वथा उपयुक्त और तर्क-संगत नहीं है। वास्तव मे, जैसा गॉरडेन ने भी कहा है, चिंता का मूल कारण काम-वासना तथा उस पर प्रतिबंध ही नहीं; यह रोग किन्हीं दो संवेगों के संघर्ष का परिणाम भी हो सकता है। यही विचार मैकडूगल का भी है। यह सिद्धान्त मानसिक रोगों की सामान्य और विशेष दोनों अवस्थाओं पर लागू किया जा सकता है। ऐडलर ने आत्म-स्थापन की प्रवृत्ति पर जोर दिया। बहुधा बचपन तथा यौवन मे माता-पिता तथा शिक्षकों की उदासीनता के कारण बच्चों मे अहं-भावना जाग्रत नहीं हो पाती जिससे उनमे हीनत्व की ग्रंथि (inferiority-complex) पड़ जाती है और भविष्य मे वे बच्चे अकारण ही चिन्ता रोग से आक्रान्त होते हैं। संक्षेप मे चिन्ता रोग का मूल कारण 'दमन' है–फिर दमन की हुई मूल प्रवृत्ति किसी भी प्रकार-स्वभाव की हो। रौस का कथन है "जीवन के संघर्ष से दोष-युक्त संतुलन रखने के ही कारण रोग के अनेक लक्षण उत्पन्न होते हैं। यह मुख्य रूप से कठिनाइयों का सामना करने का प्रबल प्रयास है"* ।

उपचार:—साधारणतः इस रोग के उपचार की कोई आवश्यकता नहीं होती। यदि उपचार करना ही हो तो 'निर्देशन' काफी है। किन्तु 'निर्देशन' का प्रभाव अस्थायी होता है : कुछ समय बाद रोग के पुनः आक्रमण की संभावना रहती है। इस कारण 'अबाध मनः आयोजन' (free-association)

* Series of symptoms, which arise from faulty adaptations to the stresses and strains of life, is caused by over action in attempt to meet their difficulties."

अधिक उपयुक्त है; इससे रोग का मूल कारण पकड़ जाता है और मन की अवस्था समझ मे आ जाने पर रोग का उन्मूलन निश्चित रहता है। 'पुनर्शिक्षण' (re-education) द्वारा भी रोगी के संवेगों को उन्नत-परिमार्जित किया जा सकता है, जिसका प्रभाव उसके लिये उपयोगी ही सिद्ध होगा।

उन्माद (*Hysteria*)

'हिस्टीरिया' का अर्थ ग्रीक भाषा मे 'यूटरस' है। यह रोग स्त्रियों से सम्बन्धित है। प्रायः नवयुवतियों को होता है। इसका कारण मानसिक असन्तोष है जो मनोविच्छेद (mental dissociation) का प्रधान कारण है। पहले यह कोई नहीं जानता था कि यह रोग मानसिक विकार से होता है। अभी भी देहातों मे इसका कारण भूत-प्रेत ही माना जाता है और उपचार के लिये झाड़-फूंक, गण्डा-तावीज चलते हैं। पर वास्तव मे उन्माद (hysteria) का भूत-प्रेत और शारीरिक विकारों से कोई लेना-देना नहीं है। इसके लिये एकमात्र हमारी मानसिक अवस्था उत्तरदायी है। इस विषय पर शारको, फ्रायड, जैनेट और मॉर्टन प्रिन्स ने विशेष प्रकाश डाला है। फ्रायड और फेरेन्कजी ने तो यहाँ तक कहा है कि ये परिवर्तित शारीरिक क्रियाएँ हमारे मानसिक विकार के प्रतीक हैं। रिबट का कथन है कि उन्माद मे संवेग शारीरिक क्रिया मे प्रकट होता है।[१] कुछ मनोविज्ञान-वेत्ताओं के अनुसार हिस्टीरिया की एकमात्र विशेषता हँसना और रोना है। परन्तु यह परिभाषा सीमित-संकुचित है और इसकी अन्य विशेपताएँ भी हैं। जैनेट के अनुसार हिस्टीरिया मन का स्वतः दो भाग मे विच्छेद है। यह मन की अत्यधिक शून्य अवस्था (absent-mindness) है।[२]

1 Ribot describes the unstable situations in the affective dimension, common in hysteria, as instances of 'emotional infantilism'.

2 Janet defines hysteria as a malady of the personal synthesis. It is a form of mental depression characterized by the retraction of the field of personal consciousness and a tendency to the dissociation and emancipation of the systems of ideas and functions that constitute personality.

उन्माद के लक्षण—जैनेट ने उन्माद के लक्षणों को 'स्थायी' और 'आकस्मिक' दो भागों मे रखा है। इस रोग मे मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के लक्षण मिलते हैं। शरीर के किसी भाग मे लकवा मारना, बेहोशी, मांसपेशी तथा स्नायुओं (nerves) की अकड़न, हँसना, रोना, अंगों का शून्य हो जाना, आकुंचन (contractures), तालबद्ध गति (rhythmical spasms), काम-विकृति (perversions), काम-शून्यता (frigidity in erotic activities) इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं। उन्माद (hysteria) का लकवा (paralysis) शरीर-विकार से उत्पन्न लकवे से भिन्न हैं। शारीरिक लकवे (physical paralysis) मे शरीर का अंगविशेष शून्य हो जाता है; किन्तु उन्माद के लकवे मे भिन्न-भिन्न अवसर पर भिन्न-भिन्न भाग शून्य हो सकता है। कभी-कभी पूरा शरीर भी प्रभावित हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन्माद का लकवा अधिक भयंकर होता है। यह मानसिक विकार से होता है।

निद्रा-विचरण (somnambulism) भी उन्माद का प्रमुख लक्षण है। इस अवस्था मे मनुष्य जो कुछ करता है उसकी चेतना उसे नहीं रहती; फिर भी दर्शक को ऐसा लगता है कि निद्रा-विचरण करनेवाला (somnambulist) जाग्रत अवस्था मे है। वास्तव मे यह अवस्था अज्ञात मन की अभिव्यक्ति है और अज्ञात मन ही निद्रा-विचरण के असाधारण क्रिया-व्यवहारों के लिये उत्तरदायी है। यही कारण है कि जब निद्रा-विचरण करनेवाला जाग्रत अवस्था मे आता है या उसका ज्ञात मन क्रियाशील होता है तो उसे निद्रा-विचरण का कुछ भी स्मरण नहीं होता। विस्मृति (amnesia) भी हो जाती है। रोगी अपनी व्यक्तिगत और अतीत की घटनाएँ भूल जाता है। अपने सगे-संबंधी मित्रों को भी नहीं पहचान पाता।

इसी प्रकार 'आत्म-विस्मरण' (fugue) भी उन्माद रोग (hysteria) का एक लक्षण है। इसमे रोगी सांसारिक जीवन से भाग खड़ा होता है; सांसारिक जीवन से वह न तो मानसिक संबंध रखता है और न शारीरिक। निद्रा-विचरण मे रोगी अपने पिछले अनुभव का पुनः अनुभव करता है; 'आत्म-

विस्मरण' मे रोगी उस इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करता है जिसकी अभिव्यक्ति जीवन मे नहीं हुई पर जिसका अनुभव उसे मन ही मन हुआ है। निद्रा-विचरण मे पूर्ण रूप से मनोविच्छेद (mental dissociation) हो जाता है; 'आत्म-विस्मरण' मे मानसिक संतुलन रहता है। निद्रा-विचरण मे रोगी को किसी घटना की भ्रांति होती है; आत्म-विस्मरण मे वह एक नये प्रकार का जीवन बिताता है। यहाँ सब कार्य बड़े पैमाने पर और विस्तृत रूप मे होता है; निद्रा-विचरण मे यह नहीं होता।

कभी-कभी उन्माद (hysteria) मे ऐसी भी अवस्था आती है जब रोगी को भोजन मे कोई स्वाद नहीं आता। इसकी तीन अवस्थाएँ (phases) होती हैं और कम से कम १८ मास तक चलती हैं। पहली अवस्था जठर सम्बन्धी (gastric period) कही जाती है। इसमे पेट पर असर होता है। रोगी सदा अपच की शिकायत करता है, पर देखने मे वह पूर्ण रूप से स्वस्थ लगता है। इस अवस्था मे रोगी डॉक्टरों अथवा अन्य परिचितों, सगे-सम्बन्धियों, के सुझाव सहज मान लेता है। दूसरी अवस्था नैतिक काल (moral period) के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवस्था मे रोगी डॉक्टर की बात नहीं मानता, बल्कि सदा यही कहता है कि उसे भूख नहीं है, जब इच्छा होगी वह आप खा लेगा; बिना भोजन किये वह अच्छी तरह रह सकता है। भोजन न करते हुए भी वह स्वस्थ दिखाई पड़ता है। कभी-कभी वह अचेतन अवस्था मे भोजन करता भी है, पर इस प्रकार अल्प आहार से उसका भार घट जाता है। तीसरी अवस्था मे, जिसे 'अनाहार श्रान्ति' (period of inanition) कहते हैं, शारीरिक कष्ट शुरू हो जाता है। वह कब्ज़ से पीड़ित रहता है और अन्य उदर रोग भी उसका पीछा लेते हैं, या हठ से भोजन करता ही नहीं जो आगे जाकर मृत्यु का भी कारण हो सकता है।

'स्पंदविक्रति' (tics) और 'कोरियाज' (choreas) उन्माद (hysteria) के अन्य लक्षण हैं। 'स्पंदविकृति' मांसपेशियों की अनिच्छित (involuntary) और तालबद्ध गति (rhythmical movement) हैं। ये शरीर की किसी भी मांसपेशी से, यहाँ तक कि आंतरिंद्रिय (visceral

organs) से भी संबंधित होती हैं। इस प्रकार स्पंदविकृति (tics) वस्तुतः केवल मुंह, हाथ, पैर की मांसपेशियों से ही संबंधित नहीं हैं बल्कि इनका संबंध साँस लेनेवाली तथा भोजन पचानेवाली मांसपेशियों से भी है। इसका प्रमाण हिचकी, ललाट की सिकुड़न, भोज्य पदार्थ निगलने, सिर को विशेष ओर घुमाने तथा हिलाने मे भी मिल सकता है। जब रोगी का ध्यान इस तरफ आकर्षित हो जाता है वह उन पर अधिकार कर लेता है। अगर उसका ध्यान उस ओर नहीं जाता तो लुप्त होने के बदले इन्हें और भी प्रोत्साहन मिलता है। रोगी को यह ध्यान नहीं रखना पड़ता, न रहता ही है कि वह इस प्रकार का भाव बना रहा है; यह यंत्रवत् (automatic) होता रहता है। स्पंदविकृति (tics) का संबंध शरीर के उस भाग से भी रहता है जो निश्चेष्ट हो जाता है। संक्षेप मे स्पंदविकृति (tics) अन्य लक्षणों की तरह 'मानसिक-विच्छेद' का चिह्न है।

शरीर के कुछ भाग का संवेदनहीन (anesthetic) होना भी 'हिस्टीरिया' का लक्षण है। शरीर का जो भाग संवेदनहीन हो जाता है, उसे यदि नोचा या काटा जाय तो भी अनुभव नहीं होगा। ऐसी अवस्था तव होती है जब शरीर का भाग पूर्णतः संवेदनहीन हो जाता है। कभी-कभी स्पर्श का अनुभव नहीं होता, किन्तु किसी प्रकार का वार किया जाय तो संवेदना होने लगती है। उन्माद मे रोगी अंधा, बहिरा भी बन जाता है। आँख-कान ठीक है, पर सुनाई नहीं पड़ता। उन्माद के रोगी संवेग की दृष्टि से बड़े अस्थिर (emotionally unstable) होते हैं; अपने मे केन्द्रित होते हैं और परनिर्देशन पर चलते हैं। उनका मानसिक विकास भी भलीभाँति नहीं हुआ रहता। किसी के प्रति अगाध स्नेह है और किसी के प्रति घृणा का भाव। अनुकरण का भाव बहुत प्रबल होता है।

उन्माद के कारण:—अब प्रश्न यह है कि उन्माद (hysteria) का कारण क्या है। अन्य मानसिक रोगों की तरह मूल प्रवृत्तियों का दमन ही इस रोग का कारण है। किन्तु यहाँ दो बातें स्मरण रखने की हैं:—

१. उन्माद मे बचपन के अनुभवों का विशेष महत्त्व है। तथा

२. इसमे काम-प्रवृत्ति का प्राधान्य है।

इसलिये उन्माद रोग का कारण समझने के लिये फ्रायड के सिद्धान्त को जानना आवश्यक है। फ्रायड के दृष्टिकोण से इसके लक्षण मानसिक विकार के रूपान्तर मात्र हैं, जहाँ केवल बचपन के काम प्रवृत्ति संबंधी दुःखान्त अनुभवों का पुनर्जागरण किया गया है। उनके शब्दों मे यह 'रिएक्टिवेशन ऑफ ट्रॉमेटिक एक्सपीरियेन्सेस' (*re-activation of traumatic experiences*) कहा जाता है और इसका अर्थ है अज्ञात मन मे बचपन के छूटे हुए दुःखपूर्ण अनुभवों को पुनः जाग्रत करना। बहुधा 'ट्रॉमाज़' की एक लड़ी सी बन जाती है और वे उन्माद के रूप मे व्यक्त होते हैं। इनका कारण काम-प्रवृत्ति का दमन है।

यह काम-प्रवृत्ति मनुष्यों मे वचपन से ही रहती है, किन्तु सामाजिक प्रतिबंधों के कारण माता-पिता तथा शिक्षक प्रारम्भ से ही बच्चों को इस प्रवृत्ति के दमन के लिये प्रेरित करते हैं। परिणाम स्वरूप वह प्रकृत काम-प्रवृत्ति उन्नत (sublimate) किये जाने के स्थान पर दमन कर दी जाती है। यह दमन की हुई प्रवृत्ति अज्ञात मन मे भावना-ग्रंथि (complexes) डालती है जो हमारे व्यक्तित्व मे विच्छेद लाती है।

फ्रायड के 'ट्रॉमा' (trauma) और 'बच्चों मे काम-प्रवृत्ति' (infantile-sexuality) के सिद्धान्तों पर तीव्र आक्षेप हुए। परिणाम स्वरूप फ्रायड ने आगे चलकर उन्माद के रोग की व्याख्या बदल दी। उन्होंने घोषित किया कि उन्माद के लक्षण अव्यक्त कल्पनाओं (unconscious phantasies) के रूपान्तर (conversion) हैं। ये कल्पनाएँ (phantasies) अज्ञात मन की उपज हैं और केवल काम-वासना से संबंधित हैं।

प्रायः वे ही स्त्रियाँ उन्माद (hysteria) के रोग की शिकार होती हैं जिनकी कामशक्ति का उचित विकास नहीं हो पाता। कामशक्ति विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में से किसी अवस्था पर स्थिर (arrest) हो जाती है, या साधारण रूप से विकास पाते-पाते सहसा उसका विकास प्रारम्भिक अवस्था की ओर को प्रत्यावर्तित (regression) हो जाता है।

गम्भीर अध्ययन-मनन पर फ्रायड को उन्माद के रोगियों की क्रियाओं और विपरीतीकरण (perverts) की क्रियाओं मे काफी समानता मिली है। संक्षेप मे यह कहना अनुपयुक्त नहीं है कि उन्माद का प्रधान कारण विकृत काम-प्रवृत्ति है। यही कारण है कि जब उन्माद के रोगी से कुछ पूछा जाता है तो वह यही कहता है "मैं नहीं जानता, मुझे याद नहीं।" इसका केवल यही अर्थ है कि वह कुछ कहना नहीं चाहता; यह उसके अज्ञात मन मे पड़ी हुई भावना-ग्रन्थि को ठेस पहुँचाता है:—

"एक अठारह वर्षीय युवती थी। उसका विवाह हो चुका था। विवाह के पहले उसे उन्माद (hysteria) का दौरा आता था। विवाह के बाद दो वर्ष तक उसे कोई शिकायत न रही। कभी-कभी वह चिंतित अवश्य रहती और अकेले मे बैठकर रोया करती। वह सुन्दर और धनवान घर की थी। कुछ ही दिनों बाद उसमे एक विचित्र परिवर्तन आया। एकाएक उसकी पहचानने की शक्ति विकृत हो गई। किन्तु आश्चर्य यह है कि यह दोष उसके सम्बन्धियों के ही विषय मे था। पति को वह देखती, उसकी सभी बातें मानती, पर यह नहीं पहचान पाती कि वह उसका 'पति' है। यही बात माँ के सम्बन्ध मे भी हुई। यदि कोई उससे कहता : देखो, ये तुम्हारे माँ और पति हैं, बस झुँझलाकर रोने लगती। अन्य क्रियाएँ उसकी सब साधारण व्यक्तियों की तरह थी। उसकी स्मरण-शक्ति भी लगभग ठीक ही थी, क्योंक एक बार जब वह सिनेमा ले जायी गयी तो घर लौटकर पूछे जाने पर एक-एक पात्र तथा घटना का उसने विस्तार से वर्णन किया। इस प्रकार का असाधारण व्यवहार असन्तुष्ट काम-प्रवृत्ति का द्योतक है और यही बात विश्लेषण करने पर मिली।"

उपचार:—इस रोग के उपचार की 'अबाध मनःआयोजन' (free-association) सबसे उपयुक्त विधि है। 'पुनर्शिक्षण' (re-education) भी सहायक होती है। 'अबाध मनः आयोजन' के द्वारा रोगी की मानसिक अवस्था का विश्लेषण करने के पश्चात् 'पुनर्शिक्षण' द्वारा उसकी प्रवृत्तियों को उन्नत-परिमार्जित करने का प्रयत्न किया जा सकता है : इस प्रकार इन दोनों विधियों का मिश्रित प्रभाव बड़ा लाभकारी सिद्ध होता है। प्रारम्भ मे उन्माद

(hysteria) का उपचार 'सम्मोहन' द्वारा होता था, परन्तु अब मनो-विश्लेषण द्वारा निर्धारित 'अबाध मन:आयोजन' (free-associatıon) की विधि का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। यद्यपि इस विधि का प्रभाव तुरत ही नहीं होता, लाभ धीरे-धीरे अवश्य होता है। इसकी सहायता से हम केवल इस रोग से ही छुटकारा नहीं पाते, वरन् जीवन के प्रति एक प्रकार से हमारा रुख ही बदल जाता है।

७

मनोविश्लेषण और मानसिक रोग

मनोविक्षेप (*Psychoses*)

मनोविक्षेप मे, जैसा उल्लेख किया जा चुका है, स्थिरभ्रम (paranoia), असामयिक मनोह्रास (dementia praecox) और उत्साह-विषाद-चक्र मनोदशा (manic-depressive insanity) के रोग हैं। इस वर्ग के रोगी बाह्यजगत् से अपने को खींच लेते हैं। कभी तो इदम् (id) मे संचित दबायी अज्ञात इच्छाएँ ऐसी प्रबल हो उठती हैं कि सम्पूर्ण अहं (ego) या ज्ञात मन (conscious mind), यद्यपि यह बाह्य जगत् के नियमों से बँधा है, उनसे अभिभूत हो जाता है और इसे कुछ कहने या करने का अवसर ही नहीं मिलता; और कभी यह स्वयं ही बाह्य जगत् से उदासीन विरोध के भय से अपने को इदम् अर्थात् अज्ञात इच्छाओं के हाथों सौंप देता है।*

स्थिरभ्रम (*Paranoia*)

मनोविक्षेप के रोगों मे 'स्थिर भ्रम' (paranoia) अध्ययन के लिये विशेष रोचक है, यद्यपि यह अधिक प्रचलित नहीं है। सांख्यिक विवरण

* "In psychoses, however, the turning away from reality is brought about in two ways : either because the repressed unconscious is too strong, so that it overwhelms the conscious which tries to cling on to reality or because the reality has become so unbearably painful that the threatened ego, in a despairing gesture of opposition throws itself into the arms of the unconscious impulses:—New Introductory Lectures: Freud.

(statistical report) से पता लगा है कि इसके रोगी केवल २ प्रतिशत् होंगे ।

स्थिरभ्रम के लक्षण—इस रोग का प्रधान लक्षण भ्रम (delusion) है और यह भ्रम व्यवस्थित होता है । भ्रम झूठा विश्वास है । इसमे रोगी के आंतरिक और बहिर जगत् मे इस प्रकार का संबंध स्थापित हो जाता है कि बहिर संबंधी विचार-धारणा केवल उसके आंतरिक इच्छा-भावना का आरोपण मात्र होता है। यह आरोपण भ्रम का रूप ले लेता है। रोगी के मन मे अनेक भ्रमात्मक भाव (delusional phantasies) उठते हैं जिन्हें वह 'भ्रम' (delusion) नहीं समझता। प्रायः साधारण व्यक्तियों को भी भ्रम होता है। किन्तु साधारण व्यक्तियों के भ्रम और 'स्थिरभ्रम' के रोगियों के 'भ्रम' मे भेद है। साधारण व्यक्ति का भ्रम किसी आधार पर होता है; स्थिरभ्रम रोगी का भ्रम आधारहीन है । जो व्यक्ति धैर्य, साहस, संयम तथा तत्परता से अपने देश और समाज की सेवा करना चाहता है और कुछ करता भी है, परन्तु स्थिति विशेष के कारण पूरी तरह नहीं कर पाता, यदि अपने को वह सुधारक रूप मे देखे तो सुधारक होने की उसकी कल्पना-भावना साधारण भ्रम (normal delusion) होगा; किन्तु जो व्यक्ति निष्चेष्ट पड़ा है, क्रियाशील नहीं है वह भी यदि अपने को सुधारक समझे तो उसका यह विचार 'असाधारण भ्रम' (abnormal delusion) होगा। पहले उदाहरण मे उसके भ्रम का आधार क्रियाशील होना है : उसमे संयम, साहस और तत्परता है, परोपकार की भावना है; दूसरे मे यह कोरी कल्पना है ।

भ्रम तीन प्रकार के होते हैं:—

१. बहिर्विषय-मानसिक (*allo-psychic*):—भ्रम के इस प्रकार का संबंध मानसिक अवस्था से होता है । जैसे, किसी प्रेमिका का अपने प्रेमी की भावनाओं पर (भ्रमपूर्वक) सन्देह करना । इस प्रकार के सन्देह की भावना नवयुवक या नवयुवतियों मे विशेष होती है। अपनी ही इच्छा-भावना का आरोपण बाह्य वस्तुओं पर होता है।

२. तनु-मानसिक (*somato-psychic*):—इस भ्रम मे रोगी का संदेह

शरीर से संबंधित रहता है। जैसे कोई समझ बैठे कि उसके शरीर मे रक्त नहीं है, या किसी ने उसका फेफड़ा निकाल लिया है।

३. आत्म-मनोगत (*auto-psychic*):–यह भ्रम रोगी के अपने ही मन तथा व्यक्तित्व से संबंधित रहता है। जैसे रोगी का यह (भ्रमात्मक) विश्वास कि वह बड़ा भारी आविष्कारक है।

समय के माप से भ्रम अस्थायी (transitory delusions) और स्थायी (permanent delusions) माने गये हैं। 'अस्थायी भ्रम, क्षणिक होते हैं: मन मे आये और विला गये या नष्ट कर दिये गये; स्थायी प्रकार के भ्रम व्यक्तित्व का एक विशिष्ट अंग ही बन जाते हैं।

संगति (coherency) के विचार से सामान्य भ्रम (general delusion) का वर्गीकरण 'व्यवस्थित भ्रम' (systematized delusions) और 'अव्यवस्थित भ्रम' (unsystematized delusions) मे किया जा सकता है। 'व्यवस्थित भ्रम' मे एक विचार प्रमुख होता है, अन्य भ्रमात्मक विचार उससे संबंधित रहते हैं—प्रमुख विचार के इर्द-गिर्द चक्कर काटा करते हैं। उदाहरण, किसी व्यक्ति को यह भ्रम हो गया कि मित्र-संबंधी उसका अनहित चाहते हैं। वह तब सोचेगा कि उसकी उन्नति से वे द्वेष रखते हैं, व्यवसाय मे उसे हानि पहुँचाने के लिये षड्यन्त्र रच रहे हैं, इत्यादि। ये सब भ्रमात्मक विचार उसके मूल प्रमुख भ्रमात्मक विचार के ही फैल-फैलाव हैं। 'अव्यवस्थित भ्रम' मे रोगी के विभिन्न भ्रमात्मक विचार-कल्पनाओं मे कोई संयम और सामंजस्य नहीं रहता। कभी यह सोचता है कि वह बड़ा सुधारक है और कभी यह कि वह निरा निरीह निस्सहाय है। वह अपने विश्वासों का तर्कयुक्त समर्थन नहीं करता; केवल यही रटा करेगा कि वह ईश्वर है, ईश्वर का रूप है, ईश्वर ने उसे लोक-कल्याण के निमित्त धरती पर भेजा है; या यह कि उसका समाज-साथियों मे कोई अस्तित्व-महत्त्व ही नहीं।

'प्रयोजन वाद' (Hormic psychology) के प्रसिद्ध प्रवर्त्तक मैकडूगल के दृष्टिकोण से इस रोग (paranoia) के भ्रम का वर्गीकरण प्रकृत मूल प्रवृत्ति के स्वभाव के आधार पर 'इच्छा भ्रम' (delusion of desire)

और 'घृणा-भ्रम' (delusion of aversion) मे किया जा सकता है। परंतु सबसे उपयुक्त वर्गीकरण 'पीड़ा-भ्रम' (delusion of persecution) और 'ऐश्वर्य-भ्रम' (delusion of grandeur) मे है। कुछ विषय वस्तुओं के संबंध मे रोगी पीड़ा-भ्रम से त्रस्त होता है और कुछ के संबंध मे ऐश्वर्य-भ्रम से। इनमे मैकडूगल द्वारा निर्धारित प्रकार के भ्रम तथा अन्य सब प्रकार की भ्रमात्मक भावनाएँ, जो 'स्थिरभ्रम' (paranoia) से संबंधित हैं, आ जाती हैं। इस वर्गीकरण का यह अर्थ नहीं है कि 'पीड़ा-भ्रम' और 'ऐश्वर्य-भ्रम' एक साथ होते ही नहीं। कभी-कभी रोगी मे दोनों प्रकार का भ्रम होता है। ब्लुलर (Bleuler) के अनुसार तो इस रोग के हरेक रोगी मे दोनों प्रकार का भ्रम होना आवश्यक है।

'स्थिरभ्रम' के रोगी का भ्रम अन्य प्रकार के रोग-भ्रमों से भिन्न है। अन्य रोगों मे भ्रम शारीरिक तथा मानसिक लक्षणों के साथ होता है और रोग के निदान (diagnosis) के लिये इन्हीं लक्षणों का विश्लेषण किया जाता है। परन्तु 'स्थिरभ्रम' मे रोगी की भ्रमात्मक भावनाएँ ही निदान के लिए पर्याप्त हैं। यद्यपि यह बात 'असामयिक मनोह्लास' (dementia praecox) मे भी मिलती है, तथापि उसमे और मानसिक लक्षण भी होते हैं। 'स्थिरभ्रम रोग' और 'असामयिक मनोह्लास' के भ्रम मे भेद यह है कि 'स्थिरभ्रम' के रोगी का भ्रम व्यवस्थित तथा संबद्ध होता है और 'असामयिक मनोह्लास' के रोगी का भ्रम अव्यवस्थित तथा असंबद्ध। इस प्रकार भ्रम के स्वभाव के आधार पर रोग की पहचान की जा सकती है।

स्थिरभ्रम के रोगी (paranoics) प्रायः महत्त्वाकांक्षी संशयालु और अस्थिर चित्त (emotionally unstable) होते हैं। आकांक्षा का कारण 'गर्व-ग्रंथि' (grandiose complex) होती है। यह 'गर्व-ग्रंथि' काम-वृत्ति के दमन की प्रतिक्रिया है। अहं का मूल प्रकृत जातीय इच्छा (racial motive) पर इतना कठोर नियंत्रण रहता है कि व्यक्तित्व मे संतुलन सम्भव ही नहीं। हमारी कामशक्ति (libido) विकास की किसी भी अवस्था पर स्थिर हो जाती है और फिर आगे प्रगति नहीं होती।

इस स्थिरता का प्रभाव मानसिक अवस्था पर बहुत बुरा पड़ता है। साथ ही, रोग का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह भी मालूम हुआ है कि इसमे रोगी की काम-शक्ति (libido) बाह्य वस्तुओं से खिचकर अहं (ego) मे ही सीमित-केन्द्रित हो जाती है। 'काम-शक्ति' के अन्तर्मुख हो जाने से मनुष्य बाह्य वस्तुओं के प्रति आकर्षित होने के स्थान अपने ही कल्पित जगत् मे लीन, मग्न और सन्तुष्ट रहने लगता है। वह अपने मे ही रमा-भूला रहता है। उसका अहं उसके ध्यान सोच-विचार का केन्द्र होता है। दूसरे शब्दों मे, आत्म-सम्मोही (narcissistics) को काम-तृप्ति (sex-satisfaction) के लिये अपने से भिन्न कोई नहीं चाहिये।

'स्थिरभ्रम' (paranoia) मे रोगी अपने तपसी आदर्शों (ascetic ideals) के कारण दूसरों की चेष्टाओं और संबंधों के अनुचित अर्थ निकालता है। वास्तविकता से उसका संबंध जाता रहता है, उसकी इच्छाएँ और वृत्तियाँ विकृत हो जाती हैं। उसके मन में दो विरोधी भावों का संघर्ष चलता रहता है। व्यवहार असम्बद्ध हो जाता है और रोगी विवेकहीन हो जाता है। कभी तो वह निश्चेष्ट (passive) हो जाता है; कभी आवेश में दूसरों को ललकारता है।

'स्थिरभ्रम' कई प्रकार के होते हैं:—

पीड़ात्मक स्थिरभ्रम (*persecutory paranoia*):—इसमे रोगी के मन मे यह विश्वास जम जाता है कि मित्र तथा लोक-समाज उसके विरुद्ध हैं और उसका अनहित चाहते हैं। ऐसे विश्वासों के कारण कुछ रोगी समाज के विद्रोही हो जाते हैं, और कुछ शिथिल। विद्रोही स्वभाव का रोगी उस व्यक्ति की हत्या तक कर सकता है जिसके प्रति उसके मन मे भ्रम बैठ गया हो। विक्षिप्तावस्था मे अपने स्त्री बच्चों की हत्या तक कर डालना असंभव नहीं। किन्तु शिथिल निश्चेष्ट स्वभाववाले रोगी सहनशील होते हैं, और ऐसा कुछ अनुचित नहीं करते।

"एक युवती का किसी युवक की ओर आकर्षण हुआ। वह सुख और शांति से जीवन व्यतीत कर रही थी कि एक दिन जब वे दोनों परस्पर-मग्न थे युवती

को ऐसा लगा कि उसने कैमरे की 'टिक' ध्वनि सुनी। साथ ही उसे यह भी भ्रम हुआ कि उसने दो तीन जनों को खिड़की के सामने से जाते देखा। युवक ने उसे बहुत समझाया, किन्तु उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। दिन पर दिन उसका वह (भ्रम) 'विश्वास' दृढ़ होता गया, यहाँ तक कि उसके मन मे यह भली-भाँति बैठ गया कि उसका प्रेमी वास्तव मे उसे अपमानित करना चाहता है, कि अपमानित करने के लिये ही उसने फोटोग्राफर नियुक्त किया था जिससे उस प्रेम-नाट्य का प्रमाण सब कहीं दिखला सके।" युवती का यह विश्वास इतना दृढ़ होता गया कि युवक के चेष्टा करने पर भी वह न सँभली। यद्यपि उसने उसका और कोई अनहित नहीं किया, वह उस युवक से विमन हो गयी। विश्लेषण करने पर पता लगा कि उस युवती का वह भ्रम उसकी ही अव्यक्त भावना (unconscious desires) का आरोपण था। अज्ञात मन मे वह उस युवक से घृणा करती थी। उसी घृणा-भाव को उसने उस पर आरोपित किया। उदाहरण से यह स्पष्ट है कि किस प्रकार शिथिल निश्चेष्ट स्वभाव के रोगी मे पीड़ा-भ्रम हो जाने पर भी अनहित करने की भावना नहीं होती।

विवादात्मक भ्रम—(*litiguous paranoia*) :—यह गलतफहमी से होता है। प्राय: यह गलतफहमी दूसरों के प्रति जो शिकायत रहती है उससे सन्तोषप्रद सन्तुलन न होने से आती है। यहाँ रोगी प्रतिशोध के लिये न्याय-दण्ड (Court) का सहारा लेता है; यहाँ तक कि अपने कल्पित शत्रु की हत्या का भी षड्यन्त्र रचने से नहीं चूकता। बात यह है कि रोगी के मन मे यह बात बैठी रहती है कि उसकी भूल नहीं है और दूसरे लोग ही दोषी-अपराधी हैं।

सुधारात्मक स्थिरभ्रम (*reformatory paranoia*) :—इसमे रोगी अधिकतर यही सोचते हैं कि लोक-संसार का आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से नाश होने जा रहा है और ऐसी अवस्था मे वही स्वयं एक सच्चा और वास्तविक सुधारक है।

साम्प्रदायिक स्थिरभ्रम (*religious paranoia*) :—इसमे भी 'सुधारात्मक स्थिरभ्रम रोग' की तरह 'ऐश्वर्य-भ्रम' (delusion of

grandeur) होता है। रोगी यही सोचता है कि ईश्वर ने उसे जगती पर अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा है कि जन-समाज का धर्मानुकूल सुधार हो जाय। फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'कलेक्टेड पेपर्स' (*Collected Papers*) मे इसका एक अच्छा उदाहरण दिया है। उसने एक रोगी की चर्चा की है जो दो प्रकार के भ्रमों मे फँसा था। पहला यह कि उसे ईश्वर ने जगत् के उद्धार के लिये भेजा है; दूसरा यह कि वह स्त्री-रूप मे परिवर्तित हो जायगा। ये कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क मे क्योंकर आईं? स्वभावसे वह धार्मिक नहीं था। वह बुद्धिमान था और उसका आध्यात्मिक विकास अच्छा-भला हुआ था। विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकला कि उसकी इन कल्पनाओं का कारण तीव्र दमन-क्रिया थी जिसकी प्रतिक्रिया मे वह 'ऐश्वर्य-भ्रम' (delusion of grandeur) का आखेट हुआ।

कामात्मक स्थिरभ्रम (*erotic paranoia*):—इसमे रोगी को यह भ्रम होता है कि परवर्ग (opposite sex) उसके प्रति आकर्षित है। प्रायः वह व्यक्ति जिसके प्रति उसकी यह भावना होती है, आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से उससे ऊँचा होता है।

"एक पुरुष रोगी ने एक युवती को, जिसे उसने कभी देखा भी न था, कई बार पत्र लिखा। उत्तर न मिलने पर उसने सोचा कि वह युवती उससे विवाह करना चाहती है और उसमे केवल उसके परिवारवाले विरोधी हैं। अतः यह कहते हुए कि लड़की सहमत है और केवल घरवालों की स्वीकृति चाहिये उसने विवाह का प्रस्ताव किया। लड़की किसी ऊँचे खानदान की थी। उसे तथा उसके घरवालों को बहुत बुरा लगा। प्रस्ताव पाने पर उसे बहुत कुछ बुरा-भला भी कहा और अन्त मे उसे पुलिस के हाथों सौंप दिया।

कायिक स्थिरभ्रम (*hypochondrical paranoia*):—इसमे रोगी का यह विश्वास (भ्रम) हो जाता है कि स्वास्थ्य-दृष्टि से उसकी अवस्था शोचनीय है। ऐसा कुछ भी विश्वास कि या तो उसे कैन्सर हो गया है, या उसकी हड्डियाँ सड़ रही हैं, या उसे टी०बी० हो गई है दृढ़ हो जाता है। डॉक्टरों के प्रति उसकी सदैव शिकायत रहती है, और अपने स्वास्थ्य के लिये उन्हें दोषी

ठहराता है। जो रोगी निष्क्रिय स्वभाव (passive attitude) के होते हैं, उनकी अवस्था और भी शोचनीय हो जाती है; वे जीवन से पूर्ण रूप से निराश हो जाते हैं और सोचते हैं कि उनका अन्त बहुत निकट है और ऐसी परिस्थिति मे दुनिया की कोई शक्ति उन्हें बचा नहीं सकती।

इन प्रकारों मे 'पीड़ात्मक स्थिरभ्रम' (*persecutory paranoia*) सबसे अधिक होता है। जिस व्यक्ति के अज्ञात मन मे 'अपराध-भाव' (sense of guilt) होता है उसकी यह प्रतिक्रिया (reaction) कि लोग उसे अपमानित कर रहे हैं स्वाभाविक है। फ्रायड के दृष्टिकोण से जैसा ऊपर लिखे उदाहरण से स्पष्ट है, यह भ्रम केवल अपने प्रिय के प्रति होता है; किन्तु मैकडूगल की दृष्टि से यह (भ्रम) केवल अपने 'प्रिय' तक ही सीमित नहीं, जन-साधारण और समाज के प्रति भी हो जाता है। मनुष्य यह सोचने लगता है कि समाज उसे अपमानित करना चाहता है, उसे नीचा दिखलाने के लिये यह झूठे षड्यन्त्र रचता है, मित्र तथा प्रियगण सभी उसके वैरी हैं और उसका अनहित चाहते हैं। वास्तव मे इस प्रकार का भ्रमात्मक विचार जिसका कोई आधार नहीं, अज्ञात मन मे आत्म-भर्त्सना (self reproach) या अपराध-भाव अनुभव करने से होता है। जब हम अपनी कामेच्छा को अहं (ego) के उच्च आदर्श के कारण दबा देते हैं तब हम अपनी प्रकृत इच्छा का आरोपण दूसरों पर करने लगते हैं और फिर अकारण ही उन्हें दोषी ठहराते हैं। रोगी की ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह ज्ञात मन मे इस विचार की कि वह दूसरे से अपमानित हो रहा है, प्रमुख स्थान देने लगता है। वह यह नहीं समझता कि उसका 'पीड़ा-भ्रम' उसकी ही भावनाओं का दूसरों पर आरोपण (projected self-repudiating reaction) है। कभी-कभी प्रकृत इच्छा के दमन करने से अज्ञात मन मे अपराध-भाव (sense of guilt) की प्रतिक्रिया यह भी होती है कि रोगी ऐश्वर्य-भ्रम से त्रस्त हो जाता है।

सुधार, सम्प्रदाय तथा कामात्मक स्थिरभ्रम रोग मे ऐश्वर्य-भ्रम का प्राधान्य रहता है। यह भ्रम 'गर्व-ग्रंथि' (grandiose complex) के कारण होता है। इस ग्रन्थि के उदाहरण 'साइकॉलजी ऑफ डिमेन्शिया

प्रीकॉक्स' पुस्तक मे मिलते हैं। एक स्त्री को जिसके अज्ञात मन मे 'गर्व-ग्रन्थि' थी, कुछ शब्द उत्तेजित करने के भाव मे कहे गये। प्रतिक्रिया मे उसने जो शब्द व्यवहार किए उनका विश्लेषण किया गया। यह प्रत्यक्ष हुआ कि उसके व्यक्तित्व मे इस प्रकार की 'गर्व-ग्रन्थि' वस्तुतः पड़ गयी थी। उसके शब्द थे: "मैं सॉक्रटीज हूँ।" उसका अभिप्राय यह दिखाना था कि वह सॉक्रटीज के समान विद्वान् है, उच्च आदर्शों का पालन करने वाली है और साथ ही कि वह निरर्थक यातना भी सह रही है जैसा कि सॉक्रटीज को सहनी पड़ी थी। 'गर्व-ग्रन्थि' के मूल मे संघर्ष और दमन है जिसका उल्लेख विस्तार से किया जा चुका है।

उपचार:—स्थिरभ्रम रोग का उपचार सरल नहीं है, क्योंकि इसमे रोगी के व्यक्तित्व का संतुलन नष्ट हो जाता है, मन विशृंखल हो जाता है, और अज्ञात मन की विभिन्न ग्रन्थियाँ अपना-अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर लेती हैं। परिणाम-स्वरूप व्यक्तित्व मे एकत्व का प्रश्न ही नहीं रह जाता। यह साधारण मानसिक विकार नहीं है जिसमे 'निर्देशन' और 'पुनर्शिक्षण' से काम चल जाय। इसके लिये विशेष साधनों की आवश्यकता होती है: किसी ऐसे उपाय को ढूंढ़ निकालना आवश्यक है जो मन के सब छिपे भावों को उभाड़ दे। इस कारण 'मनोविश्लेषण' ही इसके उपचार की श्रेष्ठ विधि है, इससे रोगी को अपनी मानसिक अवस्था का ज्ञान हो जायगा और ज्ञान होने पर स्वस्थ होना सहज-सरल है। वस्तुतः हमारे मानसिक रोगों का कारण केवल मानसिक स्थिति के विषय मे अनभिज्ञ रहना है। जैसे ही अज्ञात मन की भावना-ग्रंथि ज्ञात मन के ध्यान-केन्द्र पर आ जाती है और वह व्यक्ति अपने संवेग के उन्नयन-परिमार्जन (sublimation) का उचित साधन ढूंढ़ निकालता है, वह नीरोग हो जाता है। मन की दबी-छिपी बातों को जानना-समझना परमावश्यक है।

असामयिक मनोह्रास (*Dementia Praecox*)

यह रोग अधिकतर 'स्कीज़ोफ्रेनिया' (schizophrenia) के नाम से प्रचलित है। 'स्कीज़ोफ्रेनिया' शब्द ब्लुलर द्वारा व्यवहृत हुआ था जिसका

अर्थ है 'मनोविच्छेद' (mental dissociation)। मनोविक्षेप वर्ग के मानसिक रोगों मे यह सबसे अधिक प्रचलित है और चिकित्सालयों मे इसके ही रोगी अधिकतर पाये जाते हैं। सांख्यिक (statistical) अध्ययन करने पर पोलक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह रोग पन्द्रह और तीस वर्ष की अवस्थाओं के बीच अथवा प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भ मे अधिकतर होता है। पुरुषों मे अधिक पाया जाता है, और गाँवों की अपेक्षा नगरों की जनता इसका आखेट अधिक होती हैं। आयरलैंड, पोलैंड, आस्ट्रिया, हंगरी, सोवियट, फिन्लैंड, ग्रीस और इटली मे यह बहुत प्रचलित है। इसे समझना कठिन होता है। जब हम कभी किसी 'उत्साह-विषाद्-चक्र मनोदशा' (manic-depressive insanity) के रोगी को अत्यधिक प्रसन्न या दुःखी देखते हैं तो हमे कोई विशेष आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य सामान्य रूप से ऐसे क्षणों का कभी न कभी अनुभव करता ही है। इसी प्रकार 'स्थिरभ्रम' (paranoia) के रोगी का भ्रम हमे अद्भुत और अनोखा नहीं लगता क्योंकि स्वयं हमारे ही मन मे सहज-रूप से भ्रम-भाव आता है। किन्तु 'असामयिक मनोह्रास' (dementia praecox) के रोगी मे और साधारण व्यक्ति मे किसी प्रकार की समानता (kinship) नहीं मिलती।

असामयिक मनोह्रास के लक्षण:—

१. इस रोग मे अधिकतर रोगी बाह्य वस्तुओं के प्रति उदासीन रहता है और उसमे आकांक्षाओं का अभाव होता है। बाहरी वस्तुओं के प्रति उदासीन होने का कारण प्रमुखत: यह है कि उसकी सारी शक्ति बाह्य वस्तुओं से खिंचकर अहं (ego) मे केन्द्रित हो जाती है। जब शक्ति-धारा का बाह्य दिशा मे प्रवाह नहीं होता तो बाह्य विषय-वस्तुओं मे रुचि संभव नहीं है। घंटों एकांत मे बैठा विचार-मग्न रहता है। गंभीर अवस्था मे रोगी केवल बिस्तर पर पड़े शून्य नेत्रों से दीवारों और आकाश की ओर देखा करता है। यदि कुछ कोई कहता भी है तो उसका ऐसा भाव रहता है कि मानो उसे कुछ सुनाई ही नहीं पड़ रहा है।

२. रोगी की क्रियात्मक, बोधात्मक तथा संवेगात्मक क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ इसमे पूर्ण रूप से असम्बद्ध हो जाती हैं जो व्यक्तित्व-संतुलन के लिये हानिकारक है। साधारण जीवन की हरेक क्रिया दूसरी के अनुकूल होती है, पर इस अवस्था मे सब क्रियाएँ परस्पर स्वतन्त्र और पृथक्-पृथक् रहती हैं। रोगी असम्बद्ध बातें बोलता है। संवेग का अनुभव किये बिना ही कह उठता है "कल मैं मर जाऊँगा"। कभी-कभी रोगी सहसा हँस पड़ता है जब कि कुछ ही देर पहले वह अपने पुत्र की मृत्यु पर शोक कर रहा था।

३. इस रोग मे मानसिक ह्रास (mental deterioration) भी होता है जैसा रोग के नाम से ही स्पष्ट है। किन्तु यह 'ह्रास' धीरे-धीरे होता है और प्रत्येक रोगी मे कम और अधिक मात्रा में मिलता है। संभव है कि रोगी कुछ प्रकार की क्रियाओं मे अत्यधिक सजग हो और उसे देखकर यह विचार न उठे कि उसका मानसिक ह्रास हो रहा है, पर वास्तव मे कुछ न कुछ ह्रास अवश्य होता रहता है।

४. 'भ्रान्ति' (hallucination) इस रोग का अन्य प्रमुख लक्षण है। भ्रान्ति कई प्रकार की होती हैं—दृश्य संबंधी, श्रुति संबंधी, स्पर्श संबंधी, घ्राण संबंधी और स्वाद संबंधी। रोग के प्रारम्भिक अवस्था मे दृश्य और श्रुति संबंधी भ्रान्तियाँ अधिक होती हैं। आँखों के सामने कभी कोई प्रतिमा आती है, कभी कोई ध्वनि सुनाई पड़ती है जिसका कोई कारण-उत्तेजक नहीं होता। 'अध्यास' (illusion) मे तो हम किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु से समानता के कारण दूसरी समझ बैठते है, जैसे रस्सी को साँप; भ्रान्ति(hallucination) मे ऐसा नहीं होता। साधारण जनों की भ्रान्ति' का बाह्य जगत् मे आधार मिल सकता है; 'असामयिक मनोह्रास' (dementia praecox) के रोगी की 'भ्रान्ति' का बाह्य जगत् मे कोई आधार भी नहीं होता।

५. 'असामयिक मनोह्रास' मे 'स्थिरभ्रम' की तरह रोगी को भ्रम (delusion) होता है; लेकिन यह 'भ्रम' व्यवस्थित नहीं होता। पूर्णत:असम्बन्धित और अद्भुत प्रकार का होता है। विचार-तर्क का तो इसमे स्थान ही नहीं। उदाहरणार्थ, एक रोगी को यह विश्वास था कि उसके पेट मे पियानो बज रहा है, दूसरे को यह कि उसके मस्तिष्क मे बिजली के तार लगे हैं, तीसरे को यह कि उसके शरीर मे फेफड़ा ही नहीं।
६. रोगी का व्यवहार परिवर्तन-शून्य (steriotyped) तथा आवेगशील (impulsive) होता है।

'असामयिक मनोह्रास' के कारण:—कुछ मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से इस रोग का कारण संस्कार वंश-परम्परा (heredity) है। स्टॉफर्ड का कथन है कि यह रोग बच्चे अपनी माँ से लाते हैं। ह्वाइट नामक एक अमेरिका के चित्त विश्लेषणज्ञ (psychiatrist) परीक्षा करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ५० प्रतिशत् यह रोग वंशगत विशेषता के कारण होता है। जिस व्यक्ति मे पागलपन अथवा इस रोग का विशेष बीज होगा वही इसका आखेट हो सकता है। दूसरे वर्ग के मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 'वातावरण' का प्रभाव वंशगत विशेषता से अधिक होता है। यदि बचपन मे या जन्मते ही किसी प्रकार का मस्तिष्क आघात (cerebral traumas) पड़ जाता है तो बड़े होने पर यही रोग का कारण बनता है। पोलक और माल्ज़बर्ग ने १७५ केसों के पारिवारिक वातावरण का अध्ययन किया और तत्पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यद्यपि वंशगत विशेपता इस रोग के फैलने का कारण है तो भी वातावरण का प्रभाव होकर ही रहेगा। संभव है कि मानसिक शक्ति का विकास एक दफा साधारण तौर से हो जाने पर भी अनुपयुक्त वातावरण के कारण उसका धारा-प्रवाह पीछे की ओर हो चले, अर्थात् प्रगतिशील (progressive) होने के स्थान पर प्रत्यावर्तित (regressive) हो जाय।

कौटन के अनुसार इस रोग का कारण दाँत और टॉन्सिल की छूत है। एंडौल्फ मेअर के अनुसार यह रोग मूल प्रकृत इच्छा और वातावरण मे सामंजस्य

(adjustment) के अभाव की प्रतिक्रिया या परिणाम है। इस कारण रोगी की मनोदशा का विश्लेषण करने के पूर्व उसके जीवन के इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। इससे रोग का कारण सहज ही हमारी समझ मे आ जायगा।

डा० युंग के मतानुसार 'असामयिक मनोह्लास' के रोग का कारण भावना-ग्रंथियों का स्वतन्त्र विकास और मानसिक शक्ति का प्रत्यावर्त्तन (regression) है। जब कभी हमारे अहं और मूल प्रकृत इच्छाओं मे संघर्ष होता है और अहं हमारी प्रकृत इच्छाओं का दमन कर डालता है तो ये दमन की हुई प्रकृत इच्छाएँ स्वतन्त्र रूप से काम करने लगती हैं और बाह्य और आन्तरिक जगत् मे सामंजस्य असंभव हो जाता है। भावना-ग्रंथियों के स्वतन्त्र रूप से कार्य करने से रोगी को नाना प्रकार की भ्रान्ति (hallucinations) होने लगती हैं।

फ्रायड के आधार पर चार्ल्सबर्ग ने 'असामयिक मनोह्लास' मे मन की जो स्थिति होती है उसका संक्षेप मे अच्छा विवरण दिया है। यह विवरण एक रूपक* मे है। इस रूपक मे अहं की उपमा अश्वारोही और इदम् की अश्व से दी है। इदम् रूपी अश्व को निश्चेष्ट करके जब अहं रूपी चालक गाड़ी चलाना चाहता है तो वह असफल हो जाता है। गाड़ी, चालक, और अश्व दोनों के सहयोग से ही चल सकती है। एक के बिना दूसरा निरर्थक है, क्योंकि दोनों की सफलता-क्रियाएँ परस्पर संबंधित हैं। हमारे व्यक्तित्व मे संतुलन तब संभव है जब हमारा अहं और प्रकृत इच्छाएँ सहयोग करें। यदि अहं और इदम् मे सहयोग न हुआ, व्यक्तित्व मे एक दूसरे का महत्त्व न पहिचाना गया, तो असामयिक मनोह्लास जैसा रोग अवश्यम्भावी है। अहं के अर्जित आदर्श, इदम् की प्रकृत इच्छाओं का स्थान नहीं ले सकते। कारण, इदम् ही हमारी क्रियाओं को गति बल देता है। उसका प्रभाव अव्यक्त है, हम समझ बूझ नहीं पाते; पर उसके बिना कोई कार्य सम्भव नहीं।

* "Having immobilised the horse, the source of his dynamic energy he is trying to pull the cart himself (Ego) and moreover to pull it better and more effectively than all his competitors who have their terms in full service."

मैकडूगल के अनुसार असामयिक मनोह्रास का रोग हमारे विभिन्न आवेगों-संवेगों के परस्पर अनुपयुक्त संबंध के कारण होता है। आरोग्य अवस्था मे साधारणतः हममे आत्म-स्थापन (self-assertion) और आत्म-लघुता (self-abasement) की मूल प्रवृत्ति मे सामंजस्य रहता है, किन्तु जब इनमे संघर्ष होता है तो 'असामयिक मनोह्रास' के रोग की उत्पत्ति होती है। इन दोनों भाव मे सामंजस्य का अभाव ही रोग का कारण है।

यह दोष अन्तर्मुखी प्रकृतिवालों को विशेषकर होता है। इसमे रोगी एकांतप्रिय रहता है और कल्पनालोक मे विचरण करना चाहता है। उसकी कल्पनाओं का सम्बन्ध सांसारिक व्यक्तियों और विषयों से नहीं होता। यद्यपि उसकी दृष्टि लोक-बाह्य वस्तुओं पर स्थिर रहती है किन्तु विचार कहीं और ही घूमा करते हैं। मूल प्रवृत्ति का समाधान करने के लिये उसे बाहरी वस्तुओं की आवश्यकता नहीं पड़ती। आत्म-स्थापन की प्रवृत्ति तीव्र होने पर इसके समाधान के लिये यथार्थ मे वह कहीं का राजा बनना नहीं चाहेगा। बस, कल्पना मे वह अपने को राजा समझ लेगा और उसकी इच्छा पूर्ण हो जायगी। बाहरी वस्तुओं से साक्षात् होने पर भी उनका अर्थ वह कल्पित जगत् के सहारे ही लगाता है। कल्पना को वह सत्य के रूप मे देखता है। इसी प्रकार काल्पनिक लोक मे विचरण करने का स्वभाव स्थिरभ्रम के रोगी मे भी होता है जिसके कारण रोगी अपनी काम-प्रवृत्ति तथा अपराध-भाव का आरोपण अन्य व्यक्तियों पर करता है। परन्तु असामयिक मनोह्रास के रोगी मे यह स्वभाव अधिक होता है। अन्तर्मुखी होने के कारण उसके मन मे प्रतिक्षण यही भावना उठती है कि संसार वैसा नहीं है जैसा वह चाहता है।

ये रोगी अपने ही विषय मे सोचा करते हं, कारण कि उनमे आत्म-सम्मोह (narcissistic tendency) की प्रधानता रहती है। इनमे परोपकारी भावनाएँ (altruistic sentiments)—करुणा, दया, सहानुभूति नहीं होती। वे दूसरों को लाभ नहीं पहुँचा सकते, स्वयं अपने को भी नहीं।

इनकी मानसिक शक्ति का प्रवाह उपयुक्त दिशा मे नहीं होता है। प्रायः बचपन की ही किसी अवस्था मे उसका प्रत्यावर्त्तन हो जाता है और इस प्रकार

विकास की किसी विशेष अवस्था मे ही अटकी-स्थिर रह जाती है। यह अनुचित प्रवाह बाह्य विषय-वस्तु मे नहीं होता। वस्तुतः यह शक्ति बाहरी वस्तुओं से खिंचकर अपने ही अहं (ego) मे प्रवाहित होने लगती है।

इसमे अहं का प्रभुत्व इदं पर इतना अधिक होता है कि उसका विकृत तक होना स्वाभाविक है। जब रोगी अपने अहं का तादात्म्य बाहरी कई वस्तुओं से कर लेता है तब उसमे बहु-व्यक्तित्व (multiple personality) हो जाता है। यह रोग धीरे-धीरे बढ़ता है और ह्रास (deterioration) होते-होते रोगी की मानसिक अवस्था एक बच्चे सी हो जाती है।

असामयिक मनोह्रास रोग कई प्रकार के हैं :—

साधारण असामयिक मनोह्रास (*simple type*):—इसका आक्रमण अधिकतर धीरे-धीरे होता है; कभी ही अकस्मात् होता है। इस अवस्था मे होने पर रोगी मे किसी बात की अभिलाषा नहीं रह जाती, न उसे विशेष रुचि ही रहती है। इस प्रकार अभिलाषा तथा रुचि का अभाव, अनमनापन, अकेला-प्रिय, मौन रहना, इस वर्ग के रोगका प्रमुख लक्षण है। इसमे सभी क्रिया-व्यापार का प्रत्यावर्त्तन बाल्यावस्था की ओर हो जाता है। रोगी का मन खेल-कूद, संगी-साथी, नौकरी, अध्ययन—किसी ओर नहीं झुकता। अपना अधिकतर समय दिवा-स्वप्न मे बिताता है। जब कभी रोगका आक्रमण अकस्मात् होता है, रोगी को तापक्रम हो आता है। वह उत्तेजित हो उठता है। उसे भ्रम-भ्रान्तियाँ होने लगती हैं। अवस्था सुधरने पर दैनिक क्रिया का क्रम तो पुनः चलने लगता है, किंतु रुचि, अभिलाषा-आकांक्षा नहीं बढ़ने पाती; न तो बौद्धिक ह्रास ही रुकता है। यहाँ तक कि चिकित्सक को यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि अमुक रोगी मंद बुद्धि है या असामयिक मनोह्रास का। साधारण वर्ग का एक रोचक उदाहरण रहा :

"एक व्यक्ति पास ही दूसरे बैंक से रुपया लाने गया। रेल पर अकस्मात् उसका मन उचटा और वह अनमना हो बीच ही किसी स्टेशन पर उतर गया। घंटों बाद दूसरी रेल के डब्बे मे बैठा और घर की ओर चला। बैंक की ओर

कदम बढ़ाया; रास्ते ही से लौट पड़ा। वह क्यों लौट रहा है, यह वह समझ न सका। धीरे-धीरे उसकी हालत चिंताजनक हो गयी। तरह-तरह की भ्रांतियाँ आने लगी। उसे बस मृत्यु ही निकट समझ पड़ी। चिकित्सा होने पर वह स्वस्थ हो गया; काम मे लग गया, पर पहले की तरह तीव्र आवेग-संवेग न रहा। सगे-संबंधी के लिये भी राग-भाव न रहा। आध्यात्मिक ह्रास भी स्पष्ट था।"

इस रोग का आक्रमण होने पर जब तक रोगी सगे-संबंधी से बाध्य न किया जावे या उसकी कोई शारीरिक माँग प्रबल न हो, वह निष्क्रिय पड़ा रहता है। स्वच्छता पाठ-पूजा-संध्या और स्वास्थ्य की ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता। किंतु अधिक भ्रम-भ्रांतियाँ नहीं होती, न तो बहुत विकृत व्यवहार होता है। प्रायः इस वर्ग के रोगी का व्यवहार पहले बहुत व्यवस्थित और उच्चकोटि का रहता है। बाल्यावस्था बीतने पर धीरे-धीरे सभी क्रिया-व्यापार मे रुचि कम हो आती है और व्यवहार असाधारण बनता है। बहुत बाध्य किये जाने पर और भी चिड़चिड़े और मूडी हो जाते हैं।

हेबेफ्रेनिक असामयिक मनोह्रास (*hebephrenic type*):—इस वर्ग के रोगी को बहुत ही अद्भुत प्रकार के दृश्य तथा कर्ण संबंधी भ्रांतियाँ हुआ करती हैं। बातचीत बहुत अव्यवस्थित रहती है और उसमे बचपना भरा रहता है। भाव की गंभीरता नहीं मिलती : छिछलापन रहता है। मस्तिष्क मे क्रम-व्यवस्था नहीं मिलती; कभी तो क्रोध मे बावला हो उठता है और कभी अकारण रोने लगता है। घंटों अपने से या कल्पित प्रतिमा से बातें चलती है, कभी मुस्कुराहट, कभी गंभीर हो उठे। भ्रम विचित्र प्रकार का होता है : एक रोगी को यह भ्रम हुआ कि कीड़े ने उसके रस को चूस लिया है और अब वह केवल हड्डी का ढांचा रह गया है। एवं अपनी साँस रोके रहा कि कहीं इससे सारी वायु दूषित न हो जाय। एक रोगी को यह दृढ़ विश्वास था कि उसके पेट मे शहद की मक्खी है जो हर समय भनभनाया करती है। यह दृढ़ भावना उसके मन से तभी हटी जब एक हौदे मे उसने मक्खी पड़े देखा और उसके मन मे यह विश्वास जमा कि उसके ही उदर से निकली है।

जैसे जैसे रोगी की अवस्था शोचनीय होती है, उसकी बातचीत, व्यवहार, आदान-प्रदान, निर्णय-शक्ति का ह्रास होता जाता है और वह बड़ा सुस्त-निष्क्रिय बन जाता है।

कैटेटौनिक असामयिक मनोह्रास—(*catatonic type*):–इस वर्ग के रोगी का मुख्य लक्षण शरीर के माँस पेशियों का कड़ा होना है। घंटों एक ही मुद्रा मे बिना हिले-डोले पड़े रहते हैं। कभी तो आँख मूंद कर पड़ जाते हैं; कभी बड़ी-बड़ी आँख किये किसी एक वस्तु पर जमाये रहते हैं। मुंह पर कोई भाव नहीं रह जाता। प्रश्न पूछने पर अधिकतर प्रतिक्रिया नहीं मिलती। भोजन और कपड़े पहनने के लिये भी उसको दूसरे की सहायता चाहती है। अत्यधिक निस्सहाय अवस्था हो जाती है। प्रायः नली से भोजन दिया जाता है।

इस वर्ग के रोगी की इच्छा-शक्ति मे भी कोई क्रम-व्यवस्था नहीं रहती। कभी तो दूसरों का निर्देशन सहज ही मान जायगा; और कभी जो कुछ उससे करने के लिये कहा जायगा उसके विपरीत कार्य करेगा।

रोग के आक्रमण होने के कई हफ्ते बाद रोगी की अवस्था बदल जाती है। वह अत्यन्त उत्तेजित हो जाता है। लगातार एक गति और प्रकार से क्रियाएँ करता है; उत्तेजित होते हुए भी आकृति पर कोई भाव नहीं मालूम पड़ता। एक ही बात दुहराता (rep**e**tition) रहता है; जो कुछ कहता है उसमे संबंध-नियम नहीं रहता। भय, भ्रांति, भ्रम के प्रतिक्रिया मे कभी दूसरों पर आक्रमण भी कर बैठता है; जिसे पाता है उसे हानि पहुँचाता है।

उचित उपचार होने पर रोगी अल्प समय के लिये ही स्वस्थ होता है। फिर आक्रमण हो जाता है। सोडियम अमीटल (sodium amytal) के इंजेक्शन का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

पैरेनाइड असामयिक मनोह्रास—(*paranoid type*) इस वर्ग के रोगी अधिकतर शक्की, आवेगशील, अपने मे ही सीमित-संकेन्द्रित रहते हैं। अपमान-भ्रम (delusion of persecution) बहुतकर होता है। यह

भाव बना रहता है कि सब उसके विरुद्ध हैं, ' दुर्व्यवहार करते हैं और षड्यन्त्र रच रहे हैं । प्रारंभ मे इनका भ्रम सीमित रहता है और बहुत कुछ व्यवस्थित भी ; बाद मे तर्कहीन, अव्यवस्थित हो जाता है और अनेक होता है। पहले का विद्रोहात्मक भाव लुप्त-सा हो जाता है। भ्रान्तियाँ भी अपमान प्रकार (psrcecutory) की होती है। हर समय आभास होता है कि दुश्मन डरा रहे हैं, किसी ने भोजन मे जहर मिला दिया है। बस आत्महत्या का भाव-इच्छा उठती है। अधिकतर स्त्रियों को कल्पित प्रतिद्वंद्वी स्त्रियाँ होती हैं और पुरुष के पुरुष। जिनमे ऐश्वर्य-भ्रम होता है वे अपने को अपमानित होने का कारण सुंदर ढंग से बताते हैं।

उपचार—'असामयिक मनोह्रास' के उपचार के लिये 'अबाध मनः-आयोजन' की विधि उपयुक्त है; पर अब आघात उपचार (shock therapy) का अधिक प्रयोग होता है। मनःसमीक्षक के लिये आवश्यक है:–

१. रोगी की प्रकृत इच्छाओं का समर्थन करना; और

२. रोगी के इदम् अर्थात् उसकी प्रकृत इच्छाओं का अन्वेषण करना। उसे सदा यह समझाने का प्रयत्न करना चाहिये कि मनुष्य की दुर्बलताएँ उसके व्यक्तित्व का आवश्यक अंग हैं। जीवन मे उनको स्वीकार करना बुरा नहीं है। युंग ने इसका विशेष रूप से समर्थन किया है और इस पर बल दिया है कि दुर्बलताओं को जीवन मे स्थान देना आवश्यक है। इन्हें जितना ही दमन करने का प्रयत्न किया जायगा, ये प्रबल होती जायेंगी। वास्तव मे मानसिक रोग का बहुतकर कारण इन दुर्बलताओं को चेतन मन मे स्वीकार न करना है।

३. मनःसमीक्षक को उपचार मे यह जानने की आवश्यकता है कि रोगी के आदर्श तथा प्रकृत इच्छाओं मे कहाँ तक विरोध अथवा भेद है।

'असामयिक मनोह्रास' और 'स्थिरभ्रम' के रोग को जानने के बाद यह प्रश्न हो सकता है कि ये एक दूसरे से कहाँ तक भिन्न हैं :

१. 'असामयिक मनोह्रास' मे कोई यथार्थ विषय-वस्तु (object) नहीं होती। रोगी को केवल भ्रान्ति (hallucination)

होती है। 'स्थिरभ्रम' मे रोगी किसी व्यक्ति या वस्तु से अपने संबंध का गलत अर्थ लगाता है।

२. 'असामयिक मनोह्रास' मे अज्ञात मन मे दमन की क्रिया प्रमुख है; 'स्थिरभ्रम' मे अज्ञात मन मे पुनर्सृजन (reconstruction) की क्रिया।

३. 'असामयिक मनोह्रास' मे सजातीय काम-प्रवृत्ति (homo-sexuality) की समस्या नहीं उठती; 'स्थिर-भ्रम' रोग मे इसका विशेष प्रभुत्व रहता है।

भिन्न होते हुये भी यह संभव है कि प्रारम्भ मे किसी रोगी मे 'स्थिरभ्रम' के लक्षण हों और बाद मे वे ही 'असामयिक मनोह्रास' का रूप ले लें, जैसा शारीरिक रोगों मे होता है : टाइफाइड से न्यूमोनिया और सर्दी से प्ल्युरेसी।

उत्साह-विषाद-चक्र मनोदशा

(*Manic-Depressive Psychosis*)

प्रारम्भ मे मनोवैज्ञानिकों का विश्वास था कि अत्यधिक प्रसन्न रहना (mania) और अत्यधिक उदास रहना (depression) दो भिन्न रोग हैं। क्रेपलिन (Kraeplin) ने पहले-पहल यह अनुभव किया कि ये एक ही मानसिक रोग के दो विरोधी लक्षण हैं। अर्थात् एक ही व्यक्ति मे ये दोनों अवस्थाएँ पाई जा सकती हैं। रोगी कभी तो अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है, और कभी अत्यधिक उदास। इसी कारण इस रोग की विशेपता का उल्लेख करते हुए प्रेसी ने ऐसे रोगियों को उस श्रेणी मे रक्खा जो सदैव सीमाओं का अतिक्रमण कर जाते हैं।* प्रसन्न होंगे तो सीमातीत और दुःखी होंगे तो जैसे धरती पर सभी से गये-बीते अभागे हों। अत्यधिक प्रसन्न होने की अवस्था उत्साहावस्था (manic phase) है। उदासी की अवस्था विषादावस्था (depressive phase) है। ये दोनों अवस्थाएँ सदैव क्रम से नहीं आतीं: यह नहीं कि यदि आज इस घड़ी वह बहुत प्रसन्न है तो कल दूसरी घड़ी उदास

* "Psychosis of emotional extreme."

रहेगा। कभी-कभी कुछ रोगियों मे एक ही अवस्था मिलती है। परन्तु दोनों ही अवस्थाओं मे मन की बोधात्मक, संवेगात्मक और चेष्टात्मक तीनों पहलू (aspects) काम करते हैं। सांख्यिक विवरण (statistical report) से पता चलता है कि ९२ प्रतिशत् जन इस रोग के शिकार होते हैं। स्त्रियों मे विशेष रूप से होता है और गाँवों की अपेक्षा नगरों मे अधिक होता है।

उत्साह (mania) की तीन अवस्थाएँ होती हैं:—

१. ईषद् उत्साह (*hypo-mania*)

२. तीव्र उत्साह (*acute mania*)

३. तीव्रतम उत्साह (*hyper-acute mania*)

१. इस अवस्था मे रोगी को संसार की प्रत्येक वस्तु सुन्दर, रोचक और भली लगती है और सभी वस्तुएँ उसे अत्यधिक प्रसन्नता देती हैं। उसे उनमे किसी प्रकार की त्रुटि नहीं मालूम पड़ती। जीवन के प्रति उदासीनता का भाव रखना वह एक प्रकार से भूल-सा जाता है। और उसके व्यवहार मे आत्म-स्थापन की भावना स्पष्ट रहती है।

२. यह ईषद् उत्साह (hypo-mania) का ही एक बढ़ा हुआ रूप है। इस अवस्था मे किसी प्रकार का क्रम और व्यवस्था नहीं रह जाती। रोगी के क्रिया-व्यवहार तथा प्रतिक्रियाएँ और भी प्रबल हो जाती हैं। निर्णय कल्पित होता है, वस्तु-विचार आधार पर नहीं। वह जो कुछ करता है या कहता है वह पूर्णतः विचार रहित होता है। स्वभाव ऐसा उग्र हो जाता है कि यदि किसी ने कुछ कहा तो क्रोध से तमतमा उठेगा। मुंह क्रोध से लाल हो जायगा। और कभी साधारण सी बात पर ही अत्यधिक प्रसन्न दिखाई पड़ेगा। इस प्रकार उसका हरेक संवेग बहुत तीव्र होता है। उसका आकर्पण एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर बदला करता है। बड़ा स्वार्थी होता है और किसी से सहानुभूति नहीं रखता।

३. इसमे रोगी की स्थिति प्रलाप जैसी हो जाती है। बातचीत बहुत अधिक असम्बद्ध और व्यवहार तीखा होता है। अपने उन्माद मे मद्यपों सा हँसता, नाचता और भाव-मद्राएँ बनाता रहता है। वोलचाल मे हम जिसे

'पागल' कहते हैं वही अवस्था उसकी हो जाती है। कभी किसी दूसरे पर आघात कर बैठता है; कभी अपने को ही नोचने-काटने लगता है। घर की साज-सामग्री सभी तोड़ने-फोड़ने लगता है।

विषादावस्था (depressive phase) मे रोगी की दशा उत्साह (mania) के बिलकुल विपरीत होती है। मुख पर मुस्कराहट का लेश भी नहीं रहता। इसकी भी तीन अवस्थाएँ होती हैं:—

१. साधारण विमन्दन (*simple retardation*):—इस अवस्था मे रोगी की मानसिक क्रियाओं का ह्रास होने लगता है। विचार-शक्ति और शारीरिक क्रियाएँ (motor reactions) शिथिल हो जाती हैं। रोगी की सब प्रकार की गति मन्द हो जाती है। उसमे निश्चय करने और निष्कर्ष निकालने की शक्ति नहीं रह जाती। हरेक बात के लिये उसका मन अनिश्चित रहता है। प्रश्नों के उत्तर बिना मनोयोग के देता है।

२. तीव्र विषाद (*acute melancholia*):—इस अवस्था मे पहुँचने पर रोगी अपने को बहुत हीन और तुच्छ समझने लगता है, केवल आत्महत्या की कामना ही उसकी चेतना पर शेष रह जाती है।

३. तीव्रतम विषाद (*stuporous melancholia*):—इस अवस्था मे रोगी जीवन से सर्वथा उदासीन हो जाता है। उससे कुछ भी जानने-पूछने का प्रयत्न निष्फल होता है क्योंकि वह उत्तर ही नहीं देता। घंटों एक भाव से बैठा आँसू बहाता रहता है। उसकी आत्मग्लानि ऐसी तीव्र हो जाती है कि वह आत्महत्या तक कर लेना चाहता है। हॉक (Hock) ने इस प्रकार के रोगी की अवस्था का विशेष अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि रोगी के मन मे इस अवस्था मे अपने पाप और अपराध का भाव इतना प्रबल हो जाता है कि उसका सुधार असम्भव है। उदाहरणार्थ, रोगी के मन मे यह धारणा कि उसने अपने जीवन मे इतना बड़ा पाप किया है कि उसके लिये मृत्यु-दंड भी कुछ नहीं।

लक्षण:—अत्यधिक अकारण प्रसन्न होना, आवेश मे आना, नाचना-गाना, बातचीत करना, उदास रहना, जीवन के प्रति निराशा-भाव रखना, आँसू

बहाना, अपने को दोषी समझना : "मैं ही अपने कुटुम्ब के नाश का कारण हूँ" आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। रोगी की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं:-

१. अपर्याप्त साक्षात् (inadequacy of perception):—इस रोग मे रोगी की देखने और पहचानने की शक्ति क्षीण हो जाती है। रोगी किसी भी प्रस्तुत वस्तु को देखता अवश्य है परन्तु फिर भी उसे उसका ज्ञान केवल धुंधला-धुंधला ही होता है। उदाहरणार्थ, यदि रोगी को समाचारपत्र पढ़ने के लिये दिया जाय और उससे पूछा जाय कि क्या समाचार है, या तो उसे कुछ याद ही न होगा या दो-चार बात असम्बद्ध रूप मे बोल देगा। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस रोग मे रोगी की एकाग्रता-शक्ति (concentration) शेष नहीं रह जाती। कुछ भी कार्य करते समय उसका मन सदा इधर-उधर मंडराया करता है। विशेषकर विषाद के क्षणों मे मन का स्थिर होना सर्वथा असम्भव होता है।

२. चेतना खोना (loss of consciousness):—अत्यधिक बावलेपन और उदासी की अवस्था मे रोगी अपनी चेतना खो बैठता है। उसे समय और स्थान का ज्ञान नहीं रह जाता। बात यह है कि जब कभी इस रोग का प्रबल आक्रमण होता है, ज्ञात मन अज्ञात मन की ग्रंथियों से ऐसा आक्रांत रहता है कि रोगी मे चेतना संभव ही नहीं। जिस प्रकार साधारण अवस्था मे जो वस्तुएँ ज्ञातमन के कूल (margin of consciousness) पर रहती हैं उनकी हमे चेतना नहीं रहती, वही बात इस अवस्था मे मन के केन्द्र (focus of consciousness) पर प्रस्तुत वस्तुओं के संबंध मे होती है।

३. मिथ्या निर्णय (false judgement):—रोगी का निर्णय मिथ्या होता है। वह झूठ को सत्य और सत्य को झूठ समझता है। उसका व्यवहार उसके मिथ्या विश्वास (false beliefs) के अनुकूल होता है। किसी बात मे बिना किसी बुनियाद के दृढ़ विश्वास करना ही मिथ्या निर्णय का कारण है। एक रोगी को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि उसने कोई भारी अपराध किया है जिसके लिये उसे न्यायालय से फांसी का दण्ड होना ही चाहिये। मार्ग मे वह अपने परिवार के डॉक्टर और पुराने नौकर को धीरे-धीरे बातें करते पाता है।

देखते ही उसे यह लग गया कि निश्चय ही वे उसे फांसी देने का प्रबन्ध कर रहे हैं। उसका यह समझना मिथ्या था, फिर भी उसका विश्वास इतना दृढ़ था कि वह इसे पूर्ण रूप से सत्य समझ बैठा।

४. अध्यास और भ्रान्ति (illusion and hallucination):—अध्यास (illusion) के ही कारण एक रोगी ने अपने मित्र को अपना पुत्र समझ लिया था। भ्रान्ति अधिकतर रोगी के तात्कालिक मनोभाव (mood) पर अवलम्बित रहती है। उत्साहावस्था (manic phase) मे क्रोध और कामोन्मेष होता है, क्योंकि इस अवस्था मे 'लड़ने की प्रवृत्ति' (instinct of combat) और 'काम-प्रवृत्ति' विशेष रूप से प्रबल हो उठती हैं। विषादावस्था (depressive phase) मे भय की भावना प्रधान रहती है। इस कारण यह भ्रान्ति पहली से भिन्न प्रकार की होती है, जैसे, रात्रि मे रोगी को यह लगता है कि उसे मारने के लिये कोई कमरे मे घुस रहा है।

उत्साह-विषाद-चक्र-मनोदशा कई प्रकार के हैं:—

१. **आवर्ती उत्साह** (*recurrent mania*):—इसमे रोगी अत्यधिक उत्तेजित हो जाता है। फिर साधारण अवस्था आती है और पुनः उत्तेजित हो उठता है।

२. **आवर्ती विषाद** (*recurrent melancholia*):—इसमे रोगी जीवन के प्रति अत्यधिक उदास और निरुत्साहित दिखाई पड़ता है। उदासीनता के बाद साधारण अवस्था आती है, किन्तु फिर उदास हो जाता है।

३. **एकान्तरिक उत्साह-विषाद** (*alternating insanity*):—इसमे रोगी प्रारम्भ मे बहुत प्रसन्न और उत्साहित रहता है, फिर साधारण अवस्था मे आ जाता है। इसके बाद वह उदास हो जाता है। रोग की इन दोनों अवस्थाओं (उत्साह और विषाद) के बीच मे साधारण-अवस्था का होना आवश्यक है। इस प्रकार पहले उत्साह, फिर साधारण, फिर विषाद्। यही क्रम रहता है।

४. **द्विरूपी उत्साह-विषाद** (*insanity of double form*):—

इसमे रोगी उदास भी रहता है और प्रसन्न भी। इस प्रकार वह दोनों प्रकार की भावना-ग्रंथियों से पीड़ित रहता है। उदास–प्रसन्न–साधारण–उदास-प्रसन्न—यही उसकी मनःस्थिति का क्रम रहता है।

५. **वर्तुलोत्साह-विषाद** (*circular insanity*):—इसमे रोगी क्रम से एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे प्रवेश करता रहता है : प्रसन्न-उदास -प्रसन्न-उदास।

उत्साह-विषाद-चक्र मनोदशा के कारण:—प्रेसी, स्ट्रेकर (Strecker) और इबो (Ebaugh) के अनुसार इस रोग का कारण पैतृक देन (heredity) है। कुछ दोष हम पूर्वजों से लेते हैं और वे हमारे रोगों का आदि कारण बनते हैं। यदि हममे दोष का बीज नहीं हो तो आगे जाकर बिना बीज-बुनियाद के अंकुर नहीं उग सकता। ब्रिज का भी कहना है कि ८० प्रतिशत रोग का कारण पैतृक विशेषता अथवा वंश-परम्परा है। किन्तु दूसरे वर्ग के मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह रोग अंतःस्रावी विकारों (endocrinal disturbances) के कारण होता है। इस संबंध मे मेनर्ट का दृष्टिकोण विशेष उल्लेखनीय है। तीसरा सिद्धान्त मैकडूगल का है। उनके मत से यह रोग हमारी दो मूल प्रवृत्तियों के असन्तुलन का प्रकट रूप है। ये दो मूल प्रवृत्तियाँ आत्म-स्थापन (self-assertion) और आत्म-लघुता (self-abasement) की हैं। उत्साहावस्था (manaic phase) मे आत्म-स्थापन की प्रधानता रहती है और विषादावस्था (depressive phase) मे आत्म-लघुता की। मैकडूगल का विचार बहुत कुछ ऐडलर के सिद्धान्त से मिलता-जुलता है। ऐडलर का भी कथन है कि उत्साह-विषाद-चक्र मनोदशा का प्रधान कारण एक ओर व्यक्ति की आत्म-स्थापन की वृत्ति है और दूसरी ओर हीनत्व-ग्रंथि। हमारा अनावश्यक हँसना और बोलना प्रायः हमारे आत्म-स्थापन की वृत्ति के दमन किये जाने पर जो 'हीनत्व-ग्रन्थि' बन जाती है उसी की प्रतिक्रिया है।

फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धान्त के आधार पर इस रोग की समीक्षा करने से एक नया सिद्धान्त मिलता है। फ्रायड के अनुसार इस रोग का सम्बन्ध

विशेषकर नैतिक मन (super-ego) से है। जीवन मे जब-जब इसका शासन बढ़ जाता है, मानव विक्षिप्त-सा हो जाता है। यह 'नैतिक मन' इदम् (Id) पर ही नहीं, अहं (ego) पर भी अपना शासन रखता है। परिणाम-स्वरूप रोगी अपने अज्ञात मन मे अपराध-भाव (unconscious sense of guilt) पैदा कर लेता है। इस भाव के कारण आत्म-भर्त्सना (self-reproach) आ जाती है और मानव खिन्न और दुःखी रहने लगता है। कभी-कभी इस अपराध के भाव का प्रभाव उलटा होता है। पश्चात्ताप करने के स्थान पर रोगी उत्तेजित हो जाता है। प्रारम्भ मे फ्रायड का विचार यह था कि यह रोग अहं के शासन के कारण होता है। किन्तु आगे जाकर उन्होंने अपने सिद्धान्त मे संशोधन किया है और यह बताया है कि इस रोग मे 'अहं' का नहीं 'नैतिक मन' का शासन रहता है। दूसरे शब्दों मे आभ्यन्तरिक क्षेत्र मे जो दमन-क्रिया चलती है उसके लिये 'अहं' नहीं, 'नैतिक मन' उत्तरदायी है। यह विचार न्यायसंगत होते हुए भी विवाद का विषय रहा और उन दार्शनिकों ने जिन्होंने फ्रायड की इन कल्पनाओं-धारणाओं (concepts) को केवल 'कल्पना' रूप मे देखा, इस पर तीखा आक्षेप किया।

मानसिक रोगों के सम्बन्ध मे यद्यपि फ्रायड के विचारों और उनकी विवेचना का विशेष रूप से खंडन किया गया है, तो भी उनकी कृतियोंका अपना मूल्य है। उन्होंने अनेक ऐसे सिद्धान्त को स्थापित किया जिनका मनोविज्ञान मे अस्तित्व न था। हर प्रकार के मानसिक रोग का जैसा सूक्ष्म, विशद और संश्लिष्ट विवरण फ्रायड की पुस्तकों मे मिलता है, अन्यत्र नहीं। हाँ, बाद के मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त भी कहीं-कहीं प्रयुक्त होते हैं; किन्तु ये सिद्धान्त फ्रायड के सिद्धान्तों के परिवर्तित रूप मात्र ही हैं। फ्रायड के 'अबाध मनः आयोजन' (free-association) की विधि द्वारा अधिकतर मानसिक रोगों का सफलतापूर्वक उपचार हो रहा है। विशेष बात तो यह है कि वर्तमान युग मे, अर्थात् आधुनिक वातावरण और 'सभ्यता' की स्पर्धाओं मे, मानसिक रोगियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। योरप और अमेरिका मे तो अधि-कारियों और समझदार नागरिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और

रोगियों के उपचार के लिये अनेक साधन भी खोजे और जुटाये गये हैं। परन्तु भारतवर्ष मे इस विषय मे अभी सब अभाव मे ही है। कारण हमारी अनभिज्ञता और उदासीनता है। मानसोपचार शास्त्र (psychotherapy) से यहाँ लोग परिचित ही नहीं। हम मानसिक रोग को केवल मूर्खता अथवा 'कल्पना' समझते हैं।

मानसिक रोगों से बचने का सबसे बड़ा उपाय है 'उचित वातावरण' जिसमे किसी प्रकार का नियन्त्रण न हो, अर्थात् जहाँ प्रत्येक मूल वृत्ति के समाधान की पूरी स्वतन्त्रता रहे।

मानसिक चिकित्सा

(*Psychotherapy*)

मानसिक रोग के निवारण की विधियों मे 'मनोविश्लेपण', 'सम्मोहन', 'निर्देशन' और 'पुनर्शिक्षण' विशेप उल्लेखनीय हैं। 'मनोविश्लेपण' मे कुछ बातें नितान्त आवश्यक हैं:—

१. रोगी का वातावरण ऐसा रखना कि वह अपने विचारों को मुक्त भाव से व्यक्त करे। यह वातावरण, सदैव मित्रता का हो।

२. रोगी के मन मे ऐसी भावनाएँ उपजाना कि वह अपनी दुर्बलताओं को जीवन का आवश्यक अंग समझने लगे।

३. रोगी के मन मे अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने का प्रयत्न करना।

मन के विश्लेपण (mental analysis) मे सफलता पाने के लियें मन: समीक्षक को प्रारम्भ से ही उपरोक्त बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। प्रारम्भ मे फ्रायड ने सम्मोहन (hypnotism) विधि का प्रयोग मानसिक रोग के निवारण के लिये किया। इसे अनुपयुक्त पाकर उन्होंने एक ऐसी विधि ढूंढ़ निकालना चाहा जिसमे रोगी अपने अतीत के अनुभवों को बात ही बात मे व्यक्त कर देवे। इसका मुख्य ध्येय रोगी को सहायता देना है जिससे कि वह भूली हुई घटना तथा अतीत के संवेगात्मक संबंध (emotional bonds) का पुनरावाहन कर देवे।

अबाध मन:आयोजन विधि (*Method of free-association*) :— रोगी के मनोविश्लेषण के लिये इसमे ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि रोगी आराम से एक कोच पर लेट जावे। मन: समीक्षक उससे कुछ दूर हटकर दूर ऐसे कोण से बैठे कि रोगी उसे न देख सके। तब वह रोगी से कहे : 'देखो,

तुम्हारे मन मे जो भी विचार-भावनाएँ आवें, और जो भी घटनाएँ तुम्हें याद हों, फिर चाहे सम्बद्ध हों या असम्बद्ध, अच्छी हों या बुरी, पहले की हों या अब की, तुम निस्संकोच कहते जाओ'। इस आदेश पर रोगी बिना सोचे-समझे विचार किये बोलने लगता है और तब कभी वह पिछली घटनाएँ सुनाता है, कभी अब की बातें बताता है; और कभी भविष्य मे होनेवाली सम्भावनाओं की ओर संकेत करता है। प्रारम्भ मे तो रोगी की बातें निरी तत्वहीन तथा असम्बद्ध लगती हैं, किंतु विश्लेषण पर उन सबके तले छिपा एक गूढ़ इतिहास मिलता है जिसकी सहायता से मन: समीक्षक रोगी की मनोदशा मे सुधार करने का प्रयत्न करता है। फ्रायड का यह मूल सिद्धान्त है कि जो बातें बिना सोचे-समझे होती हैं उनका कारण सदैव अज्ञात मन की इच्छा-भावना रहती है। हरेक मानसिक क्रिया-व्यापार का कारण होता है। कभी भी आकस्मिक नहीं होती। अज्ञात मन के प्रसंग मे सबका विवरण आसानी से वैज्ञानिक रूप मे दिया जा सकता है। विश्लेषण की उपरोक्त विधि को फ्रायड की भाषा मे 'फ्री ऐसोसियेशन'[1] (free-association) कहते हैं। इसके प्रयोग मे अनेक कठिनाइयाँ पड़ती हैं।

१. जब रोगी अपने अज्ञात मन की इच्छाओं तथा दुर्बलताओं को व्यक्त करना चाहता है, उसके आभ्यन्तरिक जगत मे रोध[2] (resistance) होता है जिसके कारण उसकी वास्तविक इच्छाओं के व्यक्त होने मे बाधा पड़ती है। यह कार्य अहं (ego) के उस भाग से प्रतिपादित की जाती है जो अज्ञात है। उसकी अव्यक्त इच्छाएँ प्रकट ही नहीं हो पातीं, यदि प्रकट हुई तो किसी अन्य रूप मे, ऐसे कि उनका वास्तविक स्वभाव पहचाना न जा सके।

---

1. E. Gloves defines Free association "as a means by which powerful drives and affective changes of the unconscious system are allowed to operate in an unhampered way during waking hours."

2. Resistance has been defined by Freud as "anything that interferes with the course of analysis."

रोध (ıesistance) का कम और अधिक तीव्र होना रोगी के स्वभाव और मानसिक स्थिति पर निर्भर है। इसी कारण पृथक्-पृथक् रोगी के विश्लेषण मे उसी के अनुपात मे कम और अधिक प्रयास करना पड़ता है। रोध का हटाना मन:समीक्षक की कुशलता का माप है। जिस रोगी का नैतिक मन (super-ego) सबल होता है, उसके विश्लेषण मे विशेष रूप से कठिनाई पड़ती है। इदम् (Id) के दब जाने से और नैतिक मन प्रबल होने से रोध गहरा होता है। वह अपनी दुर्बलता मानने को जल्दी तैयार नहीं होता। जहाँ नैतिक मन कम प्रबल होता है वहाँ रोगी अपनी दुर्बलताओं को अनजाने व्यक्त कर देता है और उसका विश्लेषण सुगम हो जाता है। ऐसी स्थिति मे यदि मन: समीक्षक कुशल हुआ तो थोड़े प्रयत्न से ही रोगी के मन की गुत्थी को समझ लेगा। प्रारम्भ मे उपचार का ध्येय मन की भावना (affect) को सुधारना (abreaction) था, किन्तु फ्रायड की आखिरी कृतियों मे उपचार का ध्येय दमन की हुई इच्छाओं को परदे पर लाना है।[1]

२. मनोविश्लेषण से रोगी तुरत स्वस्थ नहीं हो सकता। कभी-कभी चिकित्सा मे पूरा वर्ष लग जाता है। छ: महीने के पहले नीरोग होना तो असंभव सा ही है।

३. मनोविश्लेषण द्वारा चिकित्सा मे व्यय भी अधिक होता है। जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं, वे इस पद्धति से लाभ नहीं उठा सकते।

४. रोध (resistance) के अतिरिक्त मनोविश्लेषण मे संक्रमण (transference) की समस्या भी उठती है। यह प्रमुख समस्या है। किसी न किसी प्रकार का भावना-वेदना संबंध (emotional relationship)

---

1. Freud says "A different view had now to be taken of the task of therapy. Its aim was no longer to 'abreact' an affect which had got on to the wrong lines, but to uncover repressions and replace them by acts of judgements which might result either in the acceptance or in the rejection of what had formerly been repudiated."

रोगी के बीच, परिस्थिति जैसी भी हो, अवश्य उत्पन्न हो जाता है। यह संबंध (rapport) जिसे फ्रायड की शब्दावली मे 'ट्रान्सफरेन्स' कहते हैं, उपचार की दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। मनुष्य का स्वभाव से भावुक होना ही (readiness to emotion) संक्रमण का मूल कारण है। मनोविश्लेषण की दृष्टि से इसका उद्गम मातृ-पितृ-काम-ग्रंथि (Oedipus complex) है। यही कारण है कि रोगी और चिकित्सक का संबंध बालक और माता-पिता के संबंध का नाटक है (re-enactment of an infantile child-father relationship)।

'संक्रमण' दो प्रकार से होता है : अभावात्मक और भावात्मक। 'अभावात्मक संक्रमण' (negative transference) मे रोगी के मन मे चिकित्सक के प्रति श्रद्धा नहीं होती। 'भावात्मक संक्रमण' (positive transference) मे चिकित्सक के प्रति रोगी आकर्षित हो जाता है। उसे अपना शुभचिन्तक ही नहीं मानता वह उसके प्रेम-श्रद्धा-आकर्षण का पात्र बन जाता है। 'अभावात्मक संक्रमण' होने पर मनः समीक्षक के लिये रोगी के मन मे अपने प्रति विश्वास जमाना कठिन होता है, और यदि 'भावात्मक संक्रमण' हुआ तो रोगी मनः समीक्षक के प्रति ऐसा आकर्षित होता है कि पुरानी ग्रंथियों से छुटकारा पाने के बदले वह और नयी ग्रंथियाँ डाल लेता है जो पुरानी ग्रंथियों का केवल रूपान्तर होती हैं। मनः समीक्षक के सम्मुख कठिन प्रश्न यह उठता है कि वह रोगी से किस प्रकार का व्यवहार करे जिससे अभावात्मक या भावात्मक संक्रमण मानसिक विश्लेषण के कार्य मे बाधा न डाले। 'अभावात्मक संक्रमण' से उत्पन्न कठिनाई से बचने के लिये मनः समीक्षक को स्वयं प्रभावशाली व्यक्तित्व (influential personality) वाला होना चाहिये, जिससे कि वह अपने विशिष्ट ज्ञान, हँसमुख स्वभाव तथा सद्व्यवहार से रोगी को अपनी ओर खींच सके। 'भावात्मक संक्रमण' के दोष से बचने के लिये मनःसमीक्षक को बात-बात मे तथा व्यवहार मे रोगी को बराबर बतलाते रहना चाहिये कि उसके प्रति उसका आकर्षण बिलकुल झूठा है और इस आकर्षण के द्वारा वह केवल अपने अतीत की प्रेम-कहानी का पुनरावाहन कर रहा है।

इसका परिणाम यह होगा कि रोगी के मन मे मनःसमीक्षक के प्रति किसी प्रकार का आकर्षण न उपज पावेगा।

अपनी पिछली कृतियों मे फ्रायड ने संक्रमण के विषय मे एक नयी धारणा बतायी। वह यह रही कि कुछ स्थिति मे रोगी का चिकित्सक के प्रति संबंध भावात्मक और अभावात्मक संक्रमण का मिश्रण भी हो सकता है। संभव है रोगी का चिकित्सक के प्रति द्विभाव (ambivalent attitude) हो: कभी उसके हृदय मे चिकित्सक के प्रति आकर्षण का भाव उमड़ता है और कभी घृणा का। कभी-कभी प्रेम-भाव घृणा मे और घृणा-भाव प्रेम मे परिणत हो जाता है।

इन रोध (resistance) और संक्रमण की कठिनाइयों के होते हुए भी मन को नीरोग-स्वस्थ बनाने की मनोविश्लेषण ही एक ऐसी विधि है जिसका प्रभाव रोगी पर स्थायी होता है। यह पहली वैज्ञानिक विधि है। रोगी यदि अपनी दुर्बलताओं को एक बार समझ जाता है, तो उसके अज्ञात मन की गुत्थियाँ बहुत कुछ आप ही सुलझ जाती हैं। वास्तव मे रोग-निवारण की कुंजी अज्ञात मन की इच्छाओं, ग्रंथियों तथा संवेगो का ठीक-ठीक ज्ञान पाना है। किन्तु फ्रायड ने आगे जाकर यह अनुभव किया कि अव्यक्त इच्छाओं का बोध होते ही मानसिक रोग का निवारण नहीं होता : नीरोग होने के लिये काम-शक्ति (libido) को जो विक्षिप्तावस्था के कारण किसी वस्तु या व्यक्ति मे स्थिर हो गई है, उस विषय-वस्तु से मुक्त करके (release) किसी अन्य विषय मे लगाना अनिवार्य है। कामशक्ति के इस उन्नयन-पद्धति को फ्रायड की भाषा मे 'सब्लिमेशन' (sublimation) कहते हैं। रोगी की मनः-स्थिति का विश्लेषण करते समय पहले तो इस शक्ति का संक्रमण (trans-ference) चिकित्सक की ओर होता है। किन्तु एक बार गतिशील हो जाने पर वह सहज ही उन्नत होता है और उसका प्रवाह उचित और आवश्यक दिशाओं मे हो सकता है। प्रवृत्ति वही रहती है, शक्ति भी वही; केवल विषय-वस्तु का परिवर्तन हो जाता है। यह उन्नयन कई प्रकार का होता है। मानव मे मानसिक उन्नयन (intellectual sublimation) के साथ-साथ

नैतिक उन्नयन (moral sublimation) की भी शक्ति है। मानसिक उन्नयन मे प्रवृत्ति का संबंध बुद्धि (intellect) से रहता है; नैतिक उन्नयन मे प्रवृत्ति का संबंध नैतिक मूल्यों (moral values) से रहता है : प्रकृत इच्छाओं का परिमार्जन करके आदर्श सिद्धान्तों का विकास होता है। इसका प्रतिनिधि नैतिक मन है। इस उन्नयन और परिमार्जन का प्रयोजन रोगी को शिष्ट तथा व्यवहारकुशल बनाना है। यह अवस्था रोगी और चिकित्सक मे निकट सम्बन्ध बन जाने पर आती है। मनःसमीक्षक का यह उन्नयन सम्बन्धी प्रयत्न बहुत कुछ पुनर्शिक्षण विधि के समान है।

विश्लेषण की तीन अवस्थाएँ होती हैं और इनमे किसी न किसी प्रकार का संक्रमण अवश्य होता है। ग्लोमर ने निम्न प्रकार का विवरण दिया है :

१. प्रारम्भावस्था (opening phase):—इस अवस्था मे चिकित्सक उन तथ्यों (clues) की खोज का प्रयत्न करता है जिनसे यह पता लग जाय कि रोगी की वासना का रुख किधर को है। इसके लिये वह रोगी को ऐसी परिस्थिति मे डालता है जिससे वह अपने आप स्वतन्त्र-संबंध (free-associations) देवे और अपने अज्ञात मन की इच्छाओं का अधिक से अधिक प्रदर्शन करे। इस अवस्था मे अभावात्मक (negative) और भावात्मक (positive) दोनों प्रकार का संक्रमण संभव है अथवा ऐसी मानसिक परिस्थिति बारी-बारी से भी हो सकती है। रोगी की मानसिक अवस्था वही होती है जो उसकी बचपन मे माता-पिता के साथ रही।
२. संक्रमण-दौर्बल्य (tranference neurosis):—दूसरी अवस्था मे पहुँचने के बाद रोगी की भावनाओं का पूर्ण केन्द्रीयण चिकित्सक पर हो जाता है। पिछले संघर्ष-भाव का एक प्रकार से पुनः नाटक खेला जाता है। अहं के अतीत के प्रतिबंधित अनाचार, इच्छा, रुख की पुनरावृत्ति की जाती है। चिकित्सक पिता का प्रतिनिधि बनता है। इस प्रकार मातृ-पितृ काम-ग्रंथि की सम्पूर्ण रूप से पुनरावृत्ति विश्लेषण का आवश्यक अंग है।

३. यह विश्लेषण की वह अवस्था है जिसमे रोगी और चिकित्सक मे किसी प्रकार का भावनापूर्ण संबंध (rapport) नहीं रह जाता (dissolution of the transference)। फ्रायड की दृष्टि से यह बनावटी दुर्बलता की अवस्था (artificial neurosis) को हटाना आवश्यक है और यह वास्तविक स्थिति समझाने-बुझाने से आसानी से हो जा सकता है। रोगी की स्मृति को जगाने का सब प्रकार से प्रयत्न होना चाहिये।[1] इस प्रकार रोगी अपनी दमन

---

1 Freud says that the transference neuroses, "this new artificial neuroses," must be controlled or broken up. This, he says, is done "by proving to the patient that his feelings do not originate in the present situation.....but merely repeat what happened to him at some other time."—Structure and Meaning of Psycho-analysis p. 438.

Freud himself writes of the transference as follows: "The decisive part of the cure is accomplished by means of the transference through which new editions of the old conflict are created. Under this situation the patient would like to behave as he had behaved originally, but by summoning all of his available psychic power, we compel him to reach a different decision. Transference then becomes the battlefield on which all the contending forces are to meet. The full strength of the libido, as well as the entire resistance against it, is concentrated in this relationship to the physician; so it is inevitable that the symptom of the libido should be laid bare."

"In place of his original disturbance the patient manifests the artificially constructed disturbance of transference; in place of heterogenous unreal objects for the libido, you have now only the person of the physician, a single object, which, how-

की हुई इच्छाओं से अपने को मुक्त कर लेता है। सारा नया और पुराना संबंध टूटने पर वह सब प्रकार के मानसिक विकार से मुक्त हो जाता है।

संक्रमण से रोग को समझना आसान हो जाता है:—

१. यह रोगी के व्यवहार, अज्ञात मन की भाव-कल्पना (unconscious phantasies) और अहं के रोध (ego-resistance) को समझने मे सहायक बनता है।

२. इसमे बचपन से तादात्म्य (early identifications) होने के कारण पिछले सब अनुभवों का चित्र खिचता है और नैतिकमन (super-ego) के तथ्यों का भी बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है।

३. चिकित्सक का विवरण विश्वसनीय होता है; क्योंकि यह रोगी के पिछले भाव-वेदना के पुनः जागृत होने के आधार पर बनता है।

४. अनेक वासनाएँ-इच्छाएँ (tendencies) जो पहले कभी नहीं प्रकट हुई थीं, संक्रमण के कारण ज्ञातमन मे प्रदर्शित होना प्रारंभ करती हैं और यह चिकित्सा की दृष्टि से विशेष लाभप्रद है।

५. संक्रमण स्मृति जागृत करने मे उत्तेजक का कार्य करता है।

कभी-कभी विश्लेषण करते समय रोगी के स्थान पर चिकित्सक भी भावना-वेदना संबंध (emotional tie) बना लेता है। यह परस्पर

---

ever, is also phantastic. The new struggle over this object is, however raised to the highest psychic level with the aid of the physician suggesting, and proceeds as a normal psychic conflict. By avoiding a new suppression the estrangement between the Ego and the Libido comes to an end. The psychic unity of the personality is restored when the libido again becomes detached from the temporary object of the physician, it can not return to its former objects, but is now at the disposal of the Ego"—General Introduction to Psycho-analysis.

संक्रमण (counter transference) रहा । चिकित्सक और रोगी मे परस्पर संबंध होता है । चिकित्सक के भावात्मक संक्रमण (positive transference) की प्रतिक्रिया यह रही कि वह रोगी की ओर झुक जाता है, किंतु यह उचित नहीं। सफलता से उपचार करने के लिये यह आवश्यक है कि चिकित्सक को अपनी मनः स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान रहे और वह अपने आभ्यन्तरिक मन मे किसी प्रकार से भी अपने भाव-वेदना की डोरी ढीली न होने दे। शीलर (Schiler) का कहना है कि चिकित्सक को रोगी से कभी भी अत्यधिक सौहार्द-सहित व्यवहार न करना चाहिये; नहीं तो रोगी मे मानसिक दुर्बलता आती है। यह कथन ठीक नहीं। हाँ बहुत अधिक प्रोत्साहन देने से संभव है रोगी की भावना-वेदना अनुचित और असाधारण रूप ले लेवे। वास्तव मे चिकित्सक का मुख्य दो कार्य है : एक तो रोगी की मानसिक अवस्था का अध्ययन कर उसके अज्ञात मन की इच्छाओं, आभ्यन्तरिक रोध, संघर्ष समझना; दो, रोगी के प्रति अपना व्यवहार और रुख उचित कायम करना।

कभी-कभी चिकित्सक का व्यवहार रोगी के प्रति एक शिक्षक-सा होता है। किंतु किसी भी स्थिति मे शिक्षक का स्थान ग्रहण करना चिकित्सक के लिये उपयुक्त नहीं है।[1] साधारणतौर से उसका मुख्य और सर्वांङ्ग कार्य उपचार करना है; शिक्षा देना नहीं है। शिक्षक की तरह व्यवहार तथा क्रिया-व्यापार करने से रोगी पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। ई० ग्लोभर का भी यही कथन है कि विश्लेषण का उद्देश्य शिक्षा देना नहीं है।[2] वह सुधारक नहीं होता। उसका कार्य केवल भूमिका बाँध देना है। काम-इच्छा के बारे मे फ्रायड के दृष्टिकोण से चिकित्सक का व्यवहार और रुख औसत होना चाहिये : न तो रोगी को इसके बारे मे पूरा ज्ञान कराने की आवश्यकता पड़ती है; और न इसे वर्जित और निषेध ही समझा जाता है।

चिकित्सक को विश्लेषण के कार्य मे सफलता पाने के लिये उसे अपने अज्ञात

---

1. Freud says "the analyst should play the mentor as little as possible.

2. "The essential remodelling must be done by the patient."

मन का ज्ञान होना आवश्यक रहता है। अपनी भाव-कल्पना से परिचित रहने पर वह रोगी की भाव-कल्पना को आसानी से समझ पावेगा। फेरेन्कज़ी का कथन है कि चिकित्सक को अज्ञात मन की विषय-वस्तु भाव-इच्छा का पूरा ज्ञान रहे। फ्रायड ने जहाँ-तहाँ स्पष्ट किया है कि इस स्थिति मे रहने पर ही वह रोगी के अज्ञात मन के विकृत रूप मे प्रकट किये हुए भाव को समझ सकेगा। विश्लेषण करते समय उसे ध्यान बरबस (strained attention) नहीं देना पड़ता। वह निर्बाध (sustained attention) सुनता है और अपनी भावना-ग्रंथियों से संबंधित कर रोगी की मानसिक स्थिति का विवरण देता है। इसमे यह कठिनाई पड़ती है कि उसका बहुत कुछ विवरण उसके व्यक्तिगत अनुभव से रंग जाता है। इससे बचने के लिये यह आवश्यक है कि वह विवादात्मक निर्णय देवे और इस प्रकार अपने निर्णय मे अपने ही भाव-विचार-कल्पना का प्रदर्शन न कर देवे।

इस प्रकार फ्रायड की दृष्टि से उपचार का मुख्य ध्येय अज्ञात मन के भाव-विचार को चेतना स्तर पर लाना और सब प्रकार के रोध (resistance) को हटा देना तथा कामशक्ति को सब प्रकार के बंधन से छुड़ाकार अहं की सेवा मे लगाना है। फ्रायड के समर्थक ई० जोन्स का भी कथन है कि उपचार का ध्येय अहं की पुष्टि करना है; * भले ही यह पुष्टि नैतिक मन के बल को क्षीण कर दे। अलेक्ज़ेन्डर की दृष्टि से भी उपचार का ध्येय अहं की पुष्टि करना है और कठोर नैतिक मन को हटाना है। इस प्रकार अहं और इदं मे अपरोक्ष संबंध स्थापित (direct relation) हो जाता है। फेरेन्कज़ी की दृष्टि से विश्लेषण का ध्येय एक प्रकार का पुनर्शिक्षण (re-education) है।

---

* According to Jones the aim is to strengthen the ego at the expense of the super-ego, to give it greater control over the repressed unconscious and thus to bring about a more complete unity of the whole personality."

उपचार मे चिकित्सक का प्रमुख काम अहं को बल देना है। आभ्यन्तरिक संघर्ष के कारण रोगी का अहं निर्बल हो जाता है। एक तरफ अहं की शक्ति इदम् की प्रकृत आवश्यकताओं की पूर्ति मे अधिक व्यय हो जाती है और दूसरी तरफ नैतिक मन के आदर्शों की पूर्ति मे। जब मांग बहुत अधिक बढ़ जाती है अहं का संबंध बाह्य वस्तुओं (reality) से भी संतुलित नहीं रह पाता। ऐसी परिस्थिति मे उपचार मे पहला काम अहं को सहायता है। आभ्यन्तरिक क्षेत्र मे संघर्ष (सिविल वार) चलता है। चिकित्सक का कार्य रोगी को इतना बल देना है जिससे कि वह इदम् और नैतिक मन की विपरीत आवश्यकताओं का संतुलित रूप मे सामना कर सके और उनमे उचित संधि कायम करे। चिकित्सक रोगी की मानसिक अवस्था को पूरी तरह से समझने का प्रयत्न करता है। जो बातें रोगी छिपाना चाहता है उसे जान लेता है और जो गूढ़स्थल मे छिपी रहती है उसे भी।

युंग ने अबाध मनः आयोजन के स्थान पर शब्द-संधान (word-association) विधि का प्रयोग किया। चुने हुए शब्दों की प्रतिक्रिया देने के लिये कहा गया। जो कुछ प्रतिक्रिया मिली उसके आधार पर रोगी की संवेगात्मक अवस्था का पता लगाना चाहा। फ्रायड और युंग दोनों ही का ध्येय विश्लेषण द्वारा रोग का निवारण करना है। भेद केवल यह है कि एक विधि मे प्रतिक्रिया बिना किसी उत्तेजन के रही और दूसरे मे उत्तेजन रूप मे शब्द कहे गये और जो कुछ प्रतिक्रिया मिली उसके आधार पर मानसिक स्थिति को समझने का प्रयत्न किया गया।

सम्मोहन (*Hypnotism*)

मनोविश्लेषण विधि के पहले मानसिक रोग-निवारण के लिए सम्मोहन का ही प्रयोग किया जाता था। जब फ्रायड ने शारको और ब्राअर को इसके प्रयोग में सफल पाया तब वह भी इससे बहुत प्रभावित हुए। किन्तु बाद मे इसके कुछ दोषों को देखकर फ्रायड दूसरी ओर झुके और 'मनोविश्लेषण विधि' का विकास हुआ। फिर भी 'सम्मोहन' का प्रयोग सफलतापूर्वक चलता रहा है।

यह 'सम्मोहन' क्या है? सम्मोहन मानसिक चिकित्सा की वह विधि है जिसमे एक व्यक्ति की इच्छा-चेष्टा द्वारा दूसरे के मन की अचेतन अवस्था होती है। सम्मोहक मे कोई जादू की शक्ति नहीं रहती जिससे वह सम्मोहित को अपने वश मे करता है। यह एक प्रकार की मानसिक अवस्था है। इस अवस्था मे सम्मोहित व्यक्ति का मन सम्मोहक के वश मे रहता है। सम्मोहित व्यक्ति मे 'अपनी इच्छा' (will) और अपना 'स्वतंत्र दृष्टिकोण' (self-perspective) नहीं रहता। सम्मोहन मे सबसे पहले सम्मोहक अपनी दृढ़ इच्छा (strong will) से रोगी को अचेत करता है। फिर उसे स्वस्थ करने की इच्छा से या तो अचेतनावस्था मे निर्देश देता है कि स्वस्थ हो जाय या उसे ऐसी स्थिति मे रखता है कि वह स्वयं अपने गुप्त संवेगों से संबंधित मनो-भावों को प्रकट कर दे। यद्यपि रोगी चेतनाशून्य रहता है, फिर भी मन के गुप्त भावों के व्यक्त हो जाने से प्रायः वह स्वस्थ हो जाता है।

सम्मोहन मे रोगी को किसी एक वस्तु पर कुछ या एक फुट की दूरी पर रखी आँखें स्थिर करनी पड़ती है। वह कोच पर आराम से लेटा रहता है और सम्मोहक उसके सिरहाने खड़ा होता है। कमरा शांत रखा जाता है, दर्शकों की भीड़ नहीं लगाई जाती, क्योंकि इससे मन न स्थिर होने का भय रहता है। जब रोगी कुछ देर तक प्रस्तुत वस्तु पर ध्यान एकाग्र कर चुका हो तब उससे यह कहा जाय "भाई तुम थके हो, आँख मे नींद भरी है। भारी मालूम पड़ रही है।" इस परोक्ष निर्देशन का रोगी पर यह प्रभाव होता है कि उसे निद्रा-सी मालूम पड़ती है। निद्रावस्था मे होने पर उसे स्वस्थ होने का निर्देशन किया जाता है।

शारको के अनुसार यह एक अस्वाभाविक रीति से उत्पन्न की हुई विक्षिप्ता-वस्था (artificially induced neurosis) है। लाइबोल्ट और बर्नहम के मत से यह एक ऐसी अवस्था है जिसमे अधिक से अधिक निर्देश (suggestion) दिया जा सकता है। यह केवल निर्देशन का प्रभाव है। मैकडूगल के अनुसार सम्मोहन उन्माद का लक्षण है।

फ्रायड का 'सम्मोहन' का सिद्धान्त 'काम' (sex) से संबंधित है। उनके

अनुसार इस अवस्था में सम्मोहित व्यक्ति की कामशक्ति (libido) सम्मोहक की ओर लग जाती है, अर्थात् सम्मोहक स्वयं रोगी के आकर्षण का विषय हो जाता है। एक प्रकार यह कामशक्ति का प्रत्यावर्तन (regression) है। यही कारण है कि सम्मोहित व्यक्ति के लिये सम्मोहक पिता जैसा होता है। सम्मोहक और सम्मोहित के बीच पिता-पुत्र का संबध होने से सम्मोहित नम्र व्यवहार करता है। किन्तु फ्रायड के इस 'कामात्मक सम्मोहन सिद्धान्त' का खंडन किया गया। खंडन का आधार था कि कोई भी सम्मोहक 'सम्मोहित' के लिये कामशक्ति का केन्द्र नहीं हो सकता, भले ही कुछ काल के लिये उसकी मानसिक शक्ति अन्य विषयों की ओर प्रवाहित न होकर सम्मोहक में केन्द्रित हो जाय।

सम्मोहन की तीन सहज विशेषताएँ (inherent aspects) हैं जिनके बिना सम्मोहन की अवस्था का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। ये विशेषताएँ परस्पर संबंधित हैं। लेकिन इस बारे में मतभेद है।

१. **मूर्च्छा** (*catalepsy*) :—मैकडूगल के अनुसार 'कैटेलेप्सी' सम्मोहन की आवश्यक अवस्था है। इसमें सम्मोहित व्यक्ति मूर्छित होकर अपने शरीर के अंगों को स्वेच्छा से हिला नहीं सकता। इसका प्रमाण यह है कि चेतनावस्था में आने पर भी शरीर में लोच नहीं रहता। मैकडूगल ने एक उदाहरण दिया है कि किस प्रकार एक सम्मोहित व्यक्ति का हाथ आध घंटे तक फैला था और उसने दर्द का तनिक भी अनुभव नहीं किया। किन्तु मौल का मत है कि 'कैटेलेप्सी' सम्मोहन की आवश्यक अवस्था नहीं। ब्रौमवेल ने भी मौल का समर्थन किया है। कभी यह अवस्था निर्देश से आती है और कभी अपने आप आ जाती है।

२. **विस्मृति** :—हैडफील्ड के अनुसार सम्मोहित अवस्था की घटना को भूल जाना सम्मोहन का आवश्यक अंग है। चेतनावस्था में आने पर सम्मोहित अवस्था की घटनाओं का हमें स्मरण नहीं रहता। लेकिन मौल, बर्नहम और ब्रौमवेल के अनुसार इस प्रकार की विस्मृति

आवश्यक नहीं। चेतनावस्था मे आने पर यद्यपि सम्मोहित उस घटना का पुनरावाहन नहीं कर सकता तो कम से कम उसे पहचान अवश्य लेता है। यदि सम्मोहित अवस्था मे उसे याद रखने का निर्देश दिया जाय तो याद भी रख सकता है।

३. **सम्मोहक और सम्मोहित का संबंध** :—कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सम्मोहक और सम्मोहित का परस्पर संबंध 'सम्मोहन' का आवश्यक अंग है। मैकडूगल के अनुसार सम्मोहक और सम्मोहित मे संबंध होना सम्मोहन के लिये आवश्यक नहीं। यद्यपि सम्मोहित नम्र रहता है और किसी की (अर्थात् सम्मोहक की) इच्छा तथा निर्देश पर चलने लगता है, फिर भी यह कहना कि इन दोनों मे अटूट संबंध है, ठीक नहीं है। न्यू नैन्सी स्कूल के अनुसार सम्मोहक की उपस्थिति ही अनावश्यक है (*All suggestion is auto-suggestion*)। युंग और फुट ने 'आत्म-निर्देश' (auto-suggestion) और 'पर-निर्देश' (hetro-suggestion) पर अनेक प्रयोग (experiment) किये हैं और अन्त मे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सम्मोहन के लिये सम्मोहक आवश्यक नहीं। कोई भी व्यक्ति अपने को चेतनाहीन करके अपने को ही निर्देश दे सकता है।

मिलन और ब्रौमवेल के अनुसार तीव्रता की दृष्टि से सम्मोहन मे तीन अवस्थाएँ मिलती हैं।

१. धूमिल निद्रा (slight hypnosis) :—इसमे रोगी अर्द्ध सुप्तावस्था (drowsy) मे रहता है। उसे अपने इर्द-गिर्द उपस्थित वस्तुओं का धूमिल ज्ञान रहता है। स्मृति भी बनी रहती है। स्वस्थ होने के लिये उसे जो निर्देशन दिया जाता है उससे वह प्रभावित होता है और मानता है।

२. गाढ़ी निद्रा (deep hypnosis) :—इस अवस्था मे रोगी पूर्णतः निद्रा मे रहता है। उसे कुछ स्मरण नहीं रह जाता। हाँ, स्मृति पुनःताजी की जा सकती है।

३. प्रगाढ़ निद्रा (hypnotic coma)—इस अवस्था मे आनेपर व्यक्ति को स्थान, समय अपने व्यक्तित्व का भी ज्ञान नहीं रह जाता। पिछली घटनाओं की स्मृति कुछ नहीं रह जाती। यदि फिर से सम्मोहित किया जावे तो पहली अवस्था की किसी घटना का स्मरण नहीं कर सकता।

मानसिक रोग के निवारण के लिये सम्मोहन विधि के प्रयोग मे कुछ सीमाएँ (limitations) और कठिनाइयाँ मिलती हैं :–

१. इसका प्रभाव स्थायी नहीं होता। संभव है कि रोगी को कुछ समय के लिये आराम मिल जाय, लेकिन स्थायी छुटकारा नहीं मिलता। रोग का पुनः आक्रमण हो सकता है।

२. हरेक व्यक्ति को सम्मोहित करना संभव नहीं। जो व्यक्ति दुर्बल इच्छा (weak will) वाला है, या जिसका इसमे विश्वास है वही सम्मोहित किया जा सकता है। इस कारण यह थोड़े ही रोगियों पर प्रयोग किया जा सकता है।

३. सम्मोहन का प्रयोग हरेक प्रकार के मानसिक रोग मे नहीं किया जा सकता। मनोदौर्बल्य (psycho-neuroses) के रोगी पर यह सफल सिद्ध हुआ है, लेकिन मनोविक्षेप (psychoses) के रोगी पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता।

इससे यह पता चलता है कि हरेक रोग मे हरेक रोगी पर सम्मोहन की विधि सफल नहीं होती।

मैकडूगल की तरह शारको का भी कथन है कि सम्मोहन और उन्माद मे मन की एक सी अवस्था रहती है। उनका यह विश्वास है कि सम्मोहन मे लकवा भी हो जा सकता है जो कि उन्माद का प्रमुख लक्षण है। जैनेट का कथन है कि सम्मोहन एक अस्वाभाविक रूप से उन्पन्न की हुई उन्माद की निद्रा है (artificially induced hysterical somnambulism)। कारण ये हैं :—

१. उन्माद की अवस्था मे व्यक्ति निद्रा-विचरण करता है। यही विशेषता सम्मोहन मे मिलती है।

२. अधिकतर उन्माद का ही रोगी सम्मोहित होता है। अन्य रोग के रोगी आसानी से सम्मोहित नहीं हो पाते।

३. उन्माद की अवस्था से साधारण अवस्था हो जाने पर व्यक्ति कोसम्मोहित करना भी कठिन हो जाता है।

इस प्रकार उन्माद और सम्मोहन मे व्यक्ति की मानसिक अवस्था एक प्रकार से समान रूप मे रहती है।

निर्देशन (*Suggestion*)

'निर्देशन' का प्रयोग चेतन और अचेतन दोनों ही अवस्थाओं मे किया जाता है। जब इसका प्रयोग अचेतन अवस्था मे किया जाता है तब यह 'सम्मोहन' कहाती है, और जब यह चेतनावस्था मे रोगी के रोग-निवारण के उपाय-रूप में बतायी जाती है, तब यह निर्देशन की विधि बन जाती है। निर्देशन दो प्रकार का होता है: पर-निर्देशन और आत्म-निर्देशन। आत्म-निर्देशन के लिये आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता है। जब तक किसी व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास न हो गया हो वह व्यक्तित्व-संतुलन (personality adjustment) के लिये आत्म-निर्देशन नहीं कर सकता। और यदि उसमे आत्म-निर्देशन की शक्ति है तो वह मानसिक रोगों का आखेट ही क्यों होगा। इस कारण सामान्य रूप से निर्देशन से अभिप्राय पर-निर्देशन से ही है।

पर-निर्देशन विधि मे एक व्यक्ति दूसरे से कुछ शिक्षाप्रद बातें कहता है। दूसरा व्यक्ति पहले के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसके आदेश को मान लेता है। कभी-कभी निर्देशक के आदेश-पालन का कारण यह भी रहता है कि उसका आदेश संवेगात्मक होता है। किन्तु यदि निर्देशक का स्वयं अपना आध्यात्मिक और नैतिक विकास नहीं हुआ है तो वह अपने निर्देशन से किसी को प्रभावित नहीं कर सकता। या जब रोगी का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है तो भी यह विधि असफ़ल बैठती है। इसके अतिरिक्त 'निर्देशन'

कुछ रोगों के लिये उपयुक्त होता है और कुछ के लिये बिल्कुल अनुपयुक्त। विशेष कर प्रलाप की अवस्था में रोगी को निर्देशन निरा हास्यपद बैठता है।

'निर्देशन विधि' के निम्न दोष हैं:—

१. इसके द्वारा रोगी को अपने अज्ञात मन का—अर्थात् यह क्या है, इसमें किस प्रकार की इच्छाएँ दबी हुई हैं, तथा इनको किस प्रकार से संतुष्ट किया जा सकता है—कुछ भी ज्ञान नहीं होता। इस कारण रोग-निवारण की इस विधि का प्रयोग करने से हमारी भावना-ग्रंथियाँ, जो रोग का कारण हैं, अछूती रह जाती हैं और हम उन्हें चेष्टा करके भी समूल नष्ट नहीं कर पाते। जिस प्रकार कि फोड़े-फुन्सियों के इलाज में जब तक रक्त-शोधन की औषधि न दी जाय, बाहरी मलहम-पट्टी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार निर्देशन भी मानसिक रोगों के लिये केवल अस्थायी और बाहरी उपचार जैसा ही है।

२. इस विधि का यह दोष है कि यह बाहरी लक्षणों (external symptoms) को रोग का मूल समझती है और उन्हीं के निवारण का इसमें प्रयत्न भी किया जाता है। किन्तु वास्तव में रोग के उन लक्षणों का कोई मूल्य नहीं होता। वे तो हमारी आभ्यन्तरिक दमन की हुई इच्छाओं के प्रतीक मात्र हैं। रोग के उपचार के लिये हमें अज्ञात मन रूपी सागर में गोता लगाने हैं जिससे कि उन छिपे कारणों का पता लगे जो मानसिक विक्षेप के मूल हैं।

३. इसके प्रयोग से रोगी पराश्रित सा हो जाता है। उसकी इच्छा-शक्ति निर्बल हो जाती है। वह अपना व्यक्तित्व खो बैठता है और किसी भी दिशा में कोई पग उठाने के लिये उसे सदैव निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है। उसकी अपनी स्वतंत्र इच्छा, कल्पना-शक्ति, विचार, सिद्धान्त नहीं रह जाते।

४. इसका प्रभाव स्थायी नहीं होता। कुछ काल के लिये निर्देशक के

संकेत-आश्वासनों मे रोगी को आराम मिलता है, पर फिर रोग का आक्रमण होता है।

इन दोषों और कमियों के होते भी 'निर्देशन' का प्रयोग किया जाता है और साधारण मानसिक दुर्बलता मे यदि समय पर उचित परामर्श मिल जाय तो यह लाभप्रद भी है।

पुनर्शिक्षण (*Re-education*)

अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् मे संतुलन लाने के लिये जो विधियाँ प्रयोग मे लाई जाती हैं वे सब पुनर्शिक्षण का ही रूप हैं, यद्यपि सामान्य दृष्टि से उनमे सैद्धान्तिक भेद हैं। पुनर्शिक्षण-विधि का प्रतिपादन फ्रैन्ज़ (Franz) तथा वेलस् (Wells) द्वारा रोग के निवारण के लिये किया गया था। यह विक्षिप्त जनों के लिये उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार शिक्षा साधारण वर्ग के जनों के लिये है। फ्रैन्ज के अनुसार पुनर्शिक्षण का मुख्य ध्येय है व्यक्तियों मे इस प्रकार के भले और शिष्ट भाव-स्वभाव डालना कि जिससे वे अपने को समाज के अनुकूल बना सकें। इसमे रोगी की प्रकृत इच्छाओं को सुसंस्कृत करने का प्रयत्न किया जाता है जिससे रोगी अपनी निम्न कोटिवाली और निरी प्रकृत इच्छाओं का ग्रास न हो सके।

यह विधि जैनेट के 'मनोविच्छेद के सिद्धान्त' (theory of mental dissociation) पर ही आधारित है। पुनर्शिक्षण का प्रयोग करने के पूर्व चिकित्सक रोगी की सभी क्रिया-प्रतिक्रियाओं को 'असाधारण' समझ लेता है। फिर वह यह जानने की चेष्टा करता है कि मनोविच्छेद कहाँ से और कैसे हुआ : भावना-ग्रंथियों (complexes) का क्या स्वभाव है तथा उनके पड़ने का क्या कारण है ? भावना-ग्रंथियों के कारण की खोज के बाद उपचार प्रारम्भ होता है। उपचार मे अव्यक्त इच्छाओं का उन्नयन (sublimation) करने की चेष्टा की जाती है। रोगी को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से यह निरन्तर शिक्षा दी जाती है कि वह अपनी मानसिक शक्ति

को स्वाभाविक इच्छाओं (impulsive desires) के समाधान मे व्यय न करके सामाजिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक दृष्टि से उपयोगी दिशाओं मे करे। इस प्रकार इस विधि के सहारे इच्छाओं का दमन करने के स्थान पर उनमे सुधार किया जाता है। इसमे कठिनाई अवश्य पड़ती है: प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार रोगी की मानसिक स्थिति, उसकी दमन की हुई इच्छाएँ तथा अज्ञात मन मे बसी ग्रंथियों (complexes) का पता लगाया जाय जिससे रोग का ठीक-ठीक उपचार हो। बात यह है कि वास्तविक इच्छाओं के बारे मे पता होने पर ही उनमे सुधार लाया जा सकता है और तभी पुनर्शिक्षण (re-education) का लक्ष्य सिद्ध होगा।

जो व्यक्ति विक्षिप्तावस्था मे असामाजिक तथा अनैतिक क्रियाएँ करता है—जैसे, किसी पर बलात्कार करना, किसी की हत्या करना—उसके लिये यह विधि विशेष उपयोगी है। कार्ल्सन (Carlson) ने उन रोगियों पर भी इस विधि का सफलता से प्रयोग किया है जो लकवा (paralysis) तथा कंपन से पीड़ित थे।

पुनर्शिक्षण के लिये कुछ बातें आवश्यक हैं :—

१. रोगी को अपनी साधारण अवस्था की चेतना रहे। कम से कम यह वह अवश्य जानता रहे कि उसका व्यवहार साधारण व्यक्तियों के व्यवहार से भिन्न है।

२. रोगी मे स्वस्थ होने की तीव्र आकांक्षा रहे। जब रोगी मे नीरोग होने की इच्छा नहीं रहती, वह नीरोग नहीं हो सकता। यह बात विशेष कर मानसिक रोग मे सिद्ध हुई है।

३. रोगी का चिकित्सक मे विश्वास हो। विश्वास न होगा तो वह चिकित्सक की बातों पर ध्यान ही न देगा।

४. रोगी को उचित परामर्श दिया जाय जिससे वह उपचार से पूरा लाभ उठा सके।

होने के कारण रोगी स्वस्थ नहीं होता, बल्कि मानसिक क्षेत्र मे और भी गुत्थियाँ डाल लेता है। बात यह है कि जब तक मनुष्य काम मे व्यस्त रहता है; गुत्थियों के पड़ने की कम संभावना रहती है।

आघात-उपचार (*Shock therapy*)

मनोवैज्ञानिक उपचार (psychotherapy) के अतिरिक्त कुछ और भी विधियाँ हैं जिनका उपयोग विशेषकर मनोविक्षेप (psychoses) की अवस्था मे होता है। आघात-उपचार (shock therapy) काफ़ी प्रचलित है। इसमे इन्सुलिन, मेट्रोज़ल, विद्युत इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। इन्सुलिन-उपचार वियाना के डॉक्टर साकल (Sakel) ने पहले-पहल प्रारंभ किया। इसमे रोगी को इन्सुलिन का इन्जेक्शन मांस पेशियों (intra muscular) मे इस परिमाण मे दिया जाता है कि वह कुछ देर तक बेहोश (coma) पड़ा रहे। इन्सुलिन के इंजेक्शन से रक्त मे शक्कर की कमी हो जाती है और रोगी को गश-सा आ जाता है। आघात (shock) मिलने से रोगी की माँसपेशियों मे सनसनी (muscular twitching) होती है; वह उत्तेजित होता है, और उसके सम्पूर्ण शरीर का स्नायु-संबंध अव्यवस्थित हो जाता है। इस इंजेक्शन के देने पर रोगी को बहुत पसीना आता है। कुछ केस मे हिस्टीरिया के कन्वलशन (convulsion) आते हैं। तब नली या इन्ट्रावीनस इन्जेक्शन से शक्कर देकर बेहोशी हटाई जाती है। हफ्ते मे अधिकतर तीन बार रोगी को इन्सुलिन इन्जेक्शन दिया जाता है और यही क्रम दस हफ्ते तक चलता है।

इन्सुलिन इन्जेक्शन का प्रयोग विशेष रूप से असामयिक मनोह्रास (dementia praecox) के रोगियों पर होता है। मानसिक दौर्बल्य (psychoneuroses) के निवारण मे इसका उपयोग नहीं होता। इसको उपयोग मे लाना आसान कार्य नहीं। कभी-कभी यह प्राणघातक भी ठहरती है। इसका प्रयोग सभी व्यक्ति जहाँ-तहाँ नहीं कर सकते। इसके लिय संगठित अस्पताल तथा विद्वान् डॉक्टर आवश्यक हैं।

इन्सुलिन इन्जेक्शन से आसान मेट्रोज़ल को उपयोग मे लाना है। यह अन्वेषण मेडूना (Meduna) का है। मेट्रोज़ल से भी रोगियों मे कनवलशन (convulsion) की अवस्था लाई जा सकती है। इसमे भी रोगी को लिटाकर इंजेक्शन दिया जाता है। इन्जेक्शन देते ही रोगी चन्द घड़ियों के लिये बेहोश हो जाता है और एक मिनट तक कनवलशन चलता है। मेट्रोज़ल का प्रयोग असामयिक मनोह्रास के लिये बहुत उपयोगी नहीं है; यह भाव सबंधी मनोविक्षेप (affective psychosis) मे अधिक उपयोगी होता है। इसका मुख्य दोष यह रहा: एक तो इस रासायनिक द्रव्य का इन्जेक्शन देने से रोगी मे बहुत अधिक भय का भाव उठता है; दूसरे, यदि कुछ रोकने का उपाय हाथ न लगा तो संभव है कि इसके प्रभाव से रीढ़ की हड्डी टूट भी जा सकती है; या शरीर के किसी भाग जैसे हाथ की हड्डी खिसक जाय।

आजकल मेट्रोज़ल का भी उपयोग अधिक नहीं होता; विद्युत-आघात अधिक प्रचलित है। बिजली का इलाज पहले-पहल इटली के डॉक्टर सरलेटी और बिनी ने प्रारंभ किया। इसमे सिर पर इलेक्ट्रोड लगाकर मस्तिष्क से बिजली की लहर दी जाती है। बिजली की लहर लगते ही रोगी बेहोश हो जाता है और उसमे इपीलेप्टीफार्म सीज़र (epileptiform seizure) का लक्षण मिलता है। एक-दो मिनट तक यही दशा बनी रहती है। कन्वलशन के पश्चात् होश मे आने पर रोगी को पिछली कोई बातें स्मरण नहीं रहती। विद्युत-आघात की यह विशेषता है कि इसकी लहर रोगी की मानसिक अवस्था तथा प्रतिक्रिया के अनुसार कम और अधिक आसानी से की जा सकती है। इसमे रोगी उतना अधिक भयभीत भी नहीं होता। हड्डी टूटने और खिसकने की संभावना नहीं रहती। यह भाव संबंधी मनोविक्षेप मे अधिक सफल होता है। असामयिक मनोह्रास के रोग मे यह विशेष सफल नहीं होता।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आघात का प्रभाव यह पड़ता है कि रोगी एक बार वास्तविकता की ओर लौटने के लिये बाध्य हो जाता है। तीव्र उत्तेजना मिलने से उसकी चेतना का पुनः संघटन होता है। इस पुनः संघटन (re-adjustment) मे संभव है वह फिर अपने वातावरण से समायोजित हो जाय। शरीर

की ओर दृष्टिपात करने से यह पता लगा है कि आघात से असाधारण स्नायु-संबंध (abnormal nerve pathways) नष्ट हो जाते हैं; स्नायु-कोश (nerve cells) मे खलबली (irritation) होती है, और भाव संज्ञाहीन (blunting of the affect) हो जाता है।

लाभ होते आघात-उपचार प्राणघातक भी ठहरता है। आघात के लिये बिजली से अधिक भयंकर इनसुलिन का प्रयोग करना है। आघात (shock) से प्राय: स्मृति भी नष्ट हो जाती है।

निद्रोपचार (*Sleep therapy*)

कभी-कभी मानसिक रोग की अवस्था मे रासायनिक द्रव्य के द्वारा रोगी को निद्रा मे रखकर उसे स्वस्थ करने का प्रयास किया जाता है। निद्रा लाने के लिये सोडीयम अमीटल (sodium amytal) का अधिकतर प्रयोग किया जाता है। इससे रोगी को नशा-सा आ जाता है। ७–८ दिन तक उसे बराबर निद्रा मे रहने दिया जाता है। बस स्नान और भोजन के समय उठा दिया और फिर निद्रा मे ही पड़ा रहा। देखभाल की बड़ी जरूरत पड़ती है। इस विधि का उपयोग सबसे अधिक उत्साह-विषाद चक्र मानसावस्था (maniac-depressive insanity) मे किया जाता है और इसमे यह सफल भी होता है। असामयिक मनोह्रास मे निद्रा द्वारा रोगी का उपचार करना और स्वस्थ करने का प्रयास करना व्यर्थ है।

मस्तिष्क शल्य-उपचार (*Brain surgery*)

मस्तिष्क के कुछ स्नायु का केन्द्रीय भाग से विच्छेद करके भी रोगी को साधारण अवस्था मे लाने का प्रयत्न किया जाता है। सन् १९३५ मे मौनिज़ ने उपचार की इस नयी विधि का अन्वेषण किया। अधिकतर जब रोग पुराना (chronic) हो जाता है और किसी प्रकार का उपचार काम मे नहीं आता, इस विधि से रोगी स्वस्थ हो जाता है। उत्तेजित और विषादावस्था के रोगियों के लिये यह विधि बड़े काम की है। चिंता नहीं रह जाती और न तो रोगी पर किसी प्रकार का प्रतिबंध ही रह जाता। वह प्रसन्न और

संतुलित हो जाता है। प्रायः पहले की तरह उसके जीवन मे सामाजिक और व्यावसायिक संतुलन आ जाता है।

जलोपचार (*Hydrotherapy*)

इसमे जल का प्रयोग होता है: कभी ठंडा और कभी गर्म। यह रोगी की मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। विशेष उत्तेजित रोगी के लिये गर्म जल का प्रयोग होता है। एक विशेष प्रकार के टब मे निश्चित तापक्रम पर जल बहता रहता है और उसी मे कुछ घंटे तक रोगी को रखा जाता है। ठंडे जल मे भिगोये चादर मे लपेटने से भी उत्तेजित रोगी शांत हो जाता है। इसे ठंड-गीला-पैड उपचार कहते हैं। उत्तेजित रोगी के लिये जल का प्रयोग आघात (shock) से अधिक लाभप्रद है।

शरीरोपचार (*Physiotherapy*)

इसमे शरीर की मालिश है। इसका भी प्रभाव मानसिक अवस्था पर अच्छा पड़ता है।

व्यावसायिक उपचार (*Occupational therapy*)

कहावत है खाली दिमाग मे भूत का वास रहता है। जीवन के प्रति उदासीन व्यक्तिके लिये व्यवसाय मनोरंजन-सा होता है। काम मे लगे रहने से भाव की अभिव्यक्ति होती है, अपने मे विश्वास जमता है। बुनना, मेज़ कुर्सी बनाना, रंग भरना, चित्र बनाना, चर्खा कातना, फल लगाना—ये सब हस्तकला स्वास्थ्यप्रद हैं। मन बहलाव के लिये रेडियो, पुस्तकालय, चित्र-प्रदर्शन इत्यादि की व्यवस्था से मानसिक अवस्था समायोजित होती है। अच्छा शिक्षाप्रद वातावरण औषधि का कार्य करता है।

अब प्रश्न यह रहा कि इनमें से उपचार के लिये कौन विधि अधिक उपयोगी है? अन्वेषण पर यह पता चलता है कि यह बात पूर्णतः रोगी के स्वभाव, वातावरण तथा रोग की स्थिति पर निर्भर है।

९

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान

(*Mental Hygiene*)

मानसिक रोगों की विषमता ने मानव मे 'मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान' की जिज्ञासा उत्पन्न की, जिससे वह उनसे अपनी रक्षा कर सके—अर्थात् वह मन की दुर्बलताओं-विकारों का आखेट न हो, न विक्षेप की अवस्था को ही प्राप्त हो। रोग हो जाने पर उसका उपचार उतना सरल नहीं होता जितना उससे बचाव-रक्षा के उपाय कर लेना है। यह बात शरीर के संबंध में ही नहीं, मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का भी मूल-तत्त्व है। जिस प्रकार शरीर को आरोग्य रखने के लिये सफाई, पौष्टिक भोजन, व्यायाम आदि हैं, उसी प्रकार मन की आरोग्यता के लिये भी कुछ मूल नियमों का पालन करना आवश्यक है।

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान की परिभाषा :—मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान मे मनःसंबंधी ऐसे मूल-तत्त्व हैं जिनका पालन करने से मानव-मन आरोग्य रहता है; और आरोग्य वही है जिसका मन संघर्षों की चक्की और ग्रंथियों की जड़ता से मुक्त है। आरोग्य शरीर की पहचान रुधिर, नाड़ी और हृदय की नियमित गति, और स्नायुओं का उचित रूप मे उद्दीपन-प्रतिचार (stimulus response) है; आरोग्य मन की पहचान 'अन्तर और बहिर मे संतुलन' है—दूसरे शब्दों मे ऐसा जीवन जहाँ न तो प्रकृत इच्छाओं और वातावरण से बने आदर्श मे किसी प्रकार की मुठभेड़ हो और न दो विरोधी इच्छाओं मे संघर्ष हो। यदि कभी ऐसा अवसर आये तो संघर्ष का सामना करने के लिये मन मे शक्ति अवश्य रहे जिसमे वह उसके उलझनों में न फँसे। बात यह है कि मन का बल होने पर ही कोई व्यक्ति संघर्ष का सामना कर सकता

है। यह संघर्ष किसी मे अधिक और किसी मे कम मात्रा मे होता है। मनुष्य का स्वास्थ्य अधिकतर इसी के अनुपात पर निर्भर करता है।

सभ्यता के विकास के साथ मानव जीवन जटिल होता जा रहा है। प्राचीन काल मे मनुष्य का जीवन सरल था ; आवश्यकताएँ साधारण थीं और उनकी पूर्ति के साधन भी। प्रकृत इच्छाएँ जागृत होतीं, जो कुछ आस-पास साधन रहते उनसे ही उनका समाधान कर दिया जाता। किन्तु इस स्पर्द्धाओं-भरी सभ्यता, रहन-सहन, आचार-व्यवहार मे परिवर्तन हुए। समाज की व्यवस्थाएँ बदलीं: नये नये नैतिक और धार्मिक नियम बने और उनके आधार पर मानव की प्रकृत-मूलभूत इच्छाओं पर बाधा-बन्धन आये। परिणामतः एक विचित्र परिस्थिति बन गयी। इच्छाओं पर बन्धन आने से मन मे असंतोष जगा, कुण्ठाएँ बनीं और एक नये मनःसंबंधी विज्ञान की आवश्यकता खड़ी हो गयी।

ऐसी परिस्थिति मे मनोवैज्ञानिकों को 'मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान' (mental hygiene) संबंधी अन्वेषण की आवश्यकता प्रतीत हुई और उसके लिये विचार-उद्योग आरम्भ हुआ। यह होते ही मानव का मानसिक रोगों के प्रति सारा भाव ही बदल चला। उनमे यह भावना दृढ़ होती गई कि मानसिक रोगों का बहुतकर कारण अस्वस्थ रीति से जीवन-यापन है। मनोवैज्ञानिकों के इस विचार-उद्योग का आरम्भ हाल मे ही हुआ है और उसके प्रमुख प्रवर्तक डब्लू० बीअर हैं। एक रोगी की स्थिति में उन्होंने अनुभव किया कि व्यक्तित्व संबंधी विकारों (personality disorders) के निवारण और उनके प्रभावों से बचने के लिये कुछ नियमन होना चाहिये जिससे मनःक्षेत्र में व्यवस्था आ सकें। परिणाम-स्वरूप १९०८ में एक 'मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान समिति' बनी और एक ही वर्ष बाद एक राष्ट्रीय परिषद् भी। यह आन्दोलन योरप मे ऐसी तीव्र गति से चला कि १९११ में इसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिल गयी, यहाँ तक कि १९३० में ही वाशिंगटन मे इसका पहला अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन भी हुआ। 'मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान समिति' का एकमात्र उद्देश्य मन को स्वस्थ रखने के विषय पर विचार, विवेचन

और अन्वेषण करना था। इसी समिति की ओर से इस विषय पर एक पत्रिका भी निकली।

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के उद्देश्यः—

१. मानसिक रोगों को रोकना।

२. मानव के व्यक्तित्व-विकास मे सहायक बनना:—जिस व्यक्ति के जीवन मे प्रकार-प्रकार की गुत्थियाँ पड़ जाती हैं उसका विकास पूर्ण और व्यवस्थित रूप से नहीं हो पाता। या तो विकास एक सीमा, अवस्था-विशेष पर स्थिर होता है, या एक बार विकास हो जाने पर भी प्रत्यावर्तन (regression) हो जाता है। इस कारण जीवन मे कुछ संयम-नियम का पालन करना है। जिस प्रकार शरीर को संयम-नियम से स्वस्थ रखा जा सकता है, उसी प्रकार मन को भी।

३. मानव-जीवन मे संतुलन लाना:—जब बाह्य और आभ्यन्तरिक क्षेत्रों मे असंतुलन रहता है तब इसका स्वास्थ्य पर हानिकर प्रभाव पड़ता है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का उद्देश्य ऐसी तरकीब बतलाना है जिससे हम अपने को असंतुलन (maladjustment) और अव्यवस्था से उठती विषमताओं और कठिनाइयों से बचा सकें।

४. प्रकृत इच्छाओं की तुष्टि का उचित उपाय दिखाना:—बात यह है कि जीवन मे हरेक वृत्ति-प्रवृत्ति का अपना उपयोग है। 'दमन' का प्रभाव सदा हानिकर होता है। 'मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान' का उद्देश्य मनुष्य के प्रकृत स्वभाव पर नियंत्रण रखना नहीं है, बल्कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना है कि वह अपनी इच्छाओं को संतुष्ट करता हुआ जीवन बिता सके। इससे इच्छाओं के उन्नयन-परिमार्जन को प्रोत्साहन मिलता है।

मानसिक अस्वास्थ्य के कारण :—

१. पैतृक विशेषता (*heredity*)

२. सामाजिक अवस्था (*social condition*)

३. आर्थिक अवस्था (*economic condition*)
४. शारीरिक अवस्था (*physical condition*)
५. संवेगात्मक स्थिति (*emotional condition*)

१. कुछ व्यक्तियों के मानसिक अस्वास्थ्य का कारण पैतृक दोष होता है। जन्म से ही वृत्ति-भाव में व्यवस्था-क्रम नहीं होता। ऐसे व्यक्तियों का स्वभाव बचपन से ही विक्षिप्तता की ओर झुका रहता है। वे झक्की और आवेगी होते हैं। पैतृक दोषों से बचने के लिये विवाह के पूर्व ही युवकों युवतियों का मनोविश्लेषण कर लेना चाहिए जिससे आगामी सन्तति की रक्षा उन दोषों से हो जाय।

२. सामाजिक अवस्था का भी प्रभाव स्वास्थ्य पर बड़ा पड़ता है। जो बच्चे समाज में ऊँचा स्थान चाहते हैं पर प्राप्त नहीं कर पाते, उनमें हीनत्व ग्रंथि (inferiority complex) पड़ जाती है। आत्म-स्थापन (self-assertion) की प्रवृत्ति असन्तुष्ट रह जाने पर वे खिन्न, दुखी मन रहने लगते हैं; कभी-कभी मन में निराधार कल्पनाएँ, भ्रम तथा भ्रान्तियाँ उठती हैं। माता-पिता का कठोर या सीमातीत दुलार के व्यवहार से उनकी सामाजिक स्थिति और भी विषम हो जाती है।

३. निर्धनता चिंता का बहुत बड़ा कारण है और जहाँ चिंता है वहाँ मन नीरोग होना असंभव है। मनष्य स्वभाव से आत्म-प्रतिष्ठा चाहता है, सामाजिक मान का इच्छुक है; और यह स्पष्ट है कि इसके लिये अच्छी आर्थिक स्थिति आवश्यक है। धन का अभाव मनुष्य में 'हीनत्व ग्रंथि' डाल देता है। कभी-कभी ऐसा व्यक्ति अपराध तक कर बैठता है। उसे कठिन परिश्रम करना पड़ता है और इसमें शक्ति का अधिक व्यय हो जाने से धीरे-धीरे वह शरीर और मन दोनों ही से जीर्ण हो जाता है। अत्यधिक परिश्रम से मन प्रसन्न नहीं होता और मन प्रसन्न न रहने से वह व्यक्ति-विशेष मानसिक रोग का शिकार होता है।

४. शरीर-स्वास्थ्य का मानसिक-स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव होता है। 'स्वस्थ

मन का स्वस्थ काया में वास' पहले ही बतलाया जा चुका है। शरीर और मन में अटूट संबंध है। यदि एक दुर्बल है तो दूसरा भी धीरे-धीरे दुर्बल हो जायगा। इसलिये अस्वस्थ शरीर मानसिक अस्वास्थ्य का एक कारण है।

५. मन के स्वास्थ्य का संवेगों से भी घना संबंध है। दूसरे शब्दों में संवेग ही मानसिक स्वास्थ्य का माप है। जिस व्यक्ति के संवेगों का उचित विकास—उन्नयन-परिमार्जन—हुआ है और जिसने यह समझा-बूझा है कि हरेक संवेग का जीवन में अपना उपयोग है, वह स्वस्थ रहता है। 'मनोविश्लेषण' ने मानसिक अस्वस्थता की समस्या वृत्ति-संवेग की समस्या बतलाया है। संवेग का अनुभव वृत्ति से संबंधित है। जब कोई वृत्ति जगती है तो संवेग उठता है—जैसे भागने की वृत्ति के साथ भय का संवेग है, काम-वृत्ति के साथ वासना का, उत्सुकता के साथ आश्चर्य का, आत्म-स्थापन के साथ गर्व का, इत्यादि। वृत्ति और संवेग एक सिक्के के दो पहलू की तरह हैं।

मानसिक स्वास्थ्य के नियम :—मन को स्वस्थ रखने की समस्या वृत्तियों के सन्तोष-असन्तोष की समस्या है। एक प्रकार से सब उलझनें उनके पोषण होते सुलझ जाती हैं। यह बताने के पहले की वृत्तियों का परिमार्जन किस प्रकार किया जाय, इनके स्वभाव और प्रकार पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

मूल वृत्ति क्या है :—इस संबंध में हमें कई दृष्टिकोण और परिभाषाएँ मिलती हैं। इनमें मैकडूगल की परिभाषा* सबसे सुबोध और गम्भीर है। वृत्ति जीव की जन्मजात विशेषता है: परिस्थिति अनुसार अपने आप सक्रिय हो जाती है। भोजन सामने देखकर क्षुधा-वृत्ति का उत्तेजित होना स्वाभाविक

* "as an inherited or innate psychophysical disposition which determines its possessor to perceive, to pay attention to, to experience an emotional excitement of a particular quality upon perceiving such an object, and to act with regard to it in a particular manner, or at least to experience an impulse to such an action".

है। सिंह से साक्षात् होते ही भागने की वृत्ति सजग हो जाती है। हरेक वृत्ति के तीन पहलू होते हैं—बोधात्मक, भावात्मक, चेष्टात्मक। वृत्ति के चेष्टात्मक रहते, कभी-कभी उत्तेजित हो जाने के बाद भी वह व्यक्ति निष्क्रिय रहता है। यह अभ्यास (habit) और सहज-क्रिया (reflex) से भिन्न है। जब किसी कार्य को बार-बार किया जाता है तो उसका अभ्यास पड़ जाता है; वृत्ति को क्रियाशील होने के लिये सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसे उत्तेजित होने के लिये मस्तिष्क का उत्तेजित होना आवश्यक है; सहज क्रिया मे मेरुदण्ड (spinal cord) और स्नायु (nerves) उद्दीपन-प्रतिचार (stimulus-response) के लिये काफी हैं। इसके अतिरिक्त वृत्ति स्वभाव से जटिल है; सहज क्रिया सरल है।

मैकडूगल के अनुसार वृत्तियाँ-प्रवृत्तियाँ १४ प्रकार की होती हैं। पर सामान्य रूप से इन्हें तीन भागों मे बाँट सकते हैं:—

१. आत्म-रक्षा संबंधी ((*self-preservation*)
२. सामाजिक जीवन संबंधी (*social instincts*)
३. जाति-रक्षा संबंधी (*race-preservation*))

आत्म-रक्षा संबंधी वृत्तियों में भूख (*hunger*), भागने (*escape*), और लड़ने (*combat*) की वृत्तियाँ आती हैं; समाज-संबंधी वृत्तियों मे आत्मस्थापन (*self-assertion*), आत्म-लघुता (*self-abasement*) सामूहिकता (*gregariousness*) और रचना (*.constructiveness*) की वृत्तियाँ हैं; जाति-रक्षा संबंधी वृत्तियों मे काम (*sex*) और मातृ-पितृ-प्रेम (*maternal instinct*) की। मनोविश्लेषण ने सब मूल वृत्तियों की पृष्ठभूमि एक ही मूल तत्त्व समझा है और वह मूल तत्त्व काम-वृत्ति (*sex-instinct*) है।

इन मूल अर्थात् प्रकृत वृत्तियों के संबंध मे जो भी विचार-सिद्धान्त हों, यह तो निर्विवाद है कि हमारा आचार-विचार, व्यवहार, स्वास्थ्य और सफलता-असफलता सब हमारी वृत्तियों के खेल हैं। मन को स्वस्थ या अस्वस्थ रखने मे इनका बड़ा हाथ है। इसके कई कारण हैं:—

१. वृत्ति के उन्नयन-परिमार्जन पर ही आन्तरिक और बाह्य जीवन का संतुलन (adjustment) निर्भर है।

२. वृत्तियों पर ही व्यक्तित्व का क्रमिक विकास, जो मानसिक स्वास्थ्य का चिह्न है, निर्भर है। यह तभी संभव है जब प्रत्येक वृत्ति को जीवन में उचित स्थान दिया जाय। मनोविज्ञान में 'व्यक्तित्व' (personality) शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में हुआ है। इसमें शरीर का आकार-प्रकार (physical appearance), सामाजिकता (sociability), संवेगता (emotionality), बुद्धि (intelligence)) इत्यादि सभी समाये हैं।

३. वृत्तियाँ उन्नत हो जाने पर मन को स्वस्थ रखने में बड़ा हाथ बटाती हैं।

इस कारण मन को स्वस्थ रखने के लिये वृत्ति के संबंध में दो बातें ध्यान में रखनी हैं :—

१. वृत्तिका दमन न करना ; और

२. वृत्ति का उचित उन्नयन।

१. वृत्ति के दमन का मानसिक स्वास्थ्य पर कहाँ तक प्रभाव पड़ता है, इसका उल्लेख मानसिक रोगों के प्रसङ्ग में किया जा चुका है। यहाँ पर केवल यह बतलाना है कि वृत्तियों के दमन में वातावरण का कहाँ तक हाथ है ; और क्या यह स्वास्थ्य के अनुकूल सुधारा जा सकता है ? वातावरण में सबसे अधिक प्रभाव माता-पिता तथा शिक्षक का होता है। वृत्तियों के तोषण पर आरम्भ से ही इनका नियन्त्रण रहता है; विशेष कर काम-वृत्ति पर। बालक का ध्यान ऐसी दिशाओं तथा विषयों में रक्खा जाता है कि उसका झुकाव प्रकृत इच्छाओं की ओर न हो। 'उत्सुकता की वृत्ति' को दबा दिया जाता है। 'आत्म-स्थापन की वृत्ति' का दमन सामाजिक अभाव (social-inadequacy) में होता है। कभी कभी माता-पिता का उदासीन रहना भी इसका कारण बनता है। इस पर रोकथाम रखने का कारण यह है कि कहीं वह अभिमानी-गर्वीला न बन बैठे। इस प्रकार के नियन्त्रण का बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि बालक को उसके व्यक्तित्व का ध्यान रख कर

उसकी प्रकृत इच्छाओं का समाधान करते शिक्षा दी जाय तो ग्रंथियों के विष से वह अपनी रक्षा करने मे कदाचित् सफल हो। मनोविश्लेषण के अनुसार मनुष्य के जीवन मे उसकी बाल्यावस्था का विशेष महत्व है। यह सत्य है कि जीवन पर बाल्यकाल का गहरा प्रभाव पड़ता है। यह विकास की प्रारम्भिक अवस्था है। इसमे बालक का मन और शरीर दोनों ही कोमल और लचीला (flexible) होता है। जिस प्रकार कोई वृक्ष जब पौधा रहता है तभी उसकी ओर विशेष ध्यान दिया जाता है कि उसे आवश्यक हवा, धूप, पानी सभी मिल जायँ, जो डालें-पत्ते व्यर्थ से इधर उधर निकले हैं उन्हें छांट दिया जाय और शेष पौधे का उचित पोषण-रक्षण संभव हो, उसी प्रकार बालकों के आचार-विचार, व्यवहार मे सुधार बचपन मे ही सम्भव है। यदि वह विकृत रह गया तो आगे जाकर उसे मोड़ना-सँवारना संभव नहीं होता।

फ्रायड का कथन है कि मानव की मन संबंधी दुर्बलताओं के कारण बाल्यकाल मे केन्द्रित रहते हैं। सब प्रकार की भावना-ग्रंथियाँ बाल्यकाल मे पड़ती है और बाल्यकाल मे ही पड़ी ग्रंथियां परिस्थितियों से उत्तेजना पाकर क्रियाशील हो जाती हैं, या संचित होते-होते एक दिन उनका आपो आप विस्फोट हो जाता है। मनुष्य विवश हो उठता है, अपने ही मन पर उसका अधिकार-शासन नहीं रह जाता।

ऐडलर तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी मनुष्य के जीवन मे बाल्यकाल का प्रभाव विशेष रूप से माना है। ऐडलर के अनुसार बालक जब ५ या ६ वर्ष का रहता तभी उसकी 'जीवन-शैली' (style of life) बनती है। इस 'शैली' पर ही जन-समूह का आचार-विचार रहन-सहन तथा रुचि-विरुचि अवलम्बित रहती है।

मनःक्षेत्र मे बचपन की पड़ी हुई ग्रंथियाँ कभी तो परिस्थिति के समर्थन से उग्र रूप धारण कर लेती हैं; कभी धीरे-धीरे हमारी शक्ति को क्षीण कर देती हैं। मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से वृत्तियों-प्रवृत्तियों का अभिव्यक्तीकरण उनके दमन से अच्छा है। यह तो मानव स्वभाव है कि जो वस्तु अप्राप्य है, जिसपर प्रतिबन्ध है, उसके लिये वह और भी उत्सुक और अधीर हो जाता

है। जब उसे अपनी इच्छित वस्तु नहीं मिलती वह खीझ उठता है। यदि अपराधी वर्ग (criminal type) का हुआ तो असामाजिक चेष्टाएँ-क्रियाएँ करेगा, नहीं तो उस इच्छा को कुछ जाने और कुछ अनजाने दबा देगा। जो इच्छायें दबायी जाती हैं वे अज्ञात मन का एक भाग बन जाती हैं और और बाद में हमारे विचारों और चेष्टाओं को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार 'दमन' (repression) से मनुष्य अस्वस्थ ही नहीं होता, कभी-कभी भयंकर रोगों का शिकार हो जाता है। वह अपना विचार-विवेक खो देता है और विक्षिप्त-सा इधर-उधर भटकता-भागता फिरता है।

वह वृत्ति जिसके दमन का मानसिक स्वास्थ्य पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है 'काम-वृत्ति' है। इसका प्रमाण मानसिक रोग मे मिलता है। उन्माद (hysteria), स्थिर-भ्रम रोग (paranoia), चिंता (anxiety neurosis), उत्साह-विषाद-चक्र मनोदशा (manic-depressive insanity) सब का यही मूल कारण है। स्थिर-भ्रम के रोगी का विश्लेषण उदाहरण के लिये अधिक रोचक होगा। जब कभी कोई व्यक्ति किसी दूसरे के प्रति अज्ञात मन मे आकर्षित होता है, किन्तु यह सोचकर कि इस प्रकार से आकर्षित होने का तात्पर्य अपने 'प्रिय को धोखा देना' है वह अज्ञात मन मे ही उस समय बनता-उठता अपना प्रेम-भाव दबा देता है, तब अपराधी भाव उत्पन्न होता है। यदि उस व्यक्ति-विशेष ने काम-वृत्ति संबंधी इच्छा को न दबाया होता तो उसके मन मे अपराधी भाव न पैदा होता और न उसे अपने अपराधी भाव को आरोपित करने की आवश्यकता ही पड़ती।

बात यह है कि दमन से ही भावना-ग्रंथियां (complexes) बनती हैं और ये ग्रंथियाँ रोग के कीटाणु हैं। फिर भी जिस प्रकार शरीर मे विषैले कीटाणुओं के रहते मनुष्य अपनी रोध-शक्ति (power of resistance) से उनका सामना करते हुए स्वस्थ रहता है, उसी प्रकार भावना-ग्रंथियों का सामना करने की आध्यात्मिक और नैतिक शक्ति होने पर अनेक ग्रंथियों के रहते हुए भी मनुष्य मन से आरोग्य रह सकता है। इस प्रकार 'साधारण' और 'असाधारण' व्यक्ति दो पृथक् वर्ग के नहीं होते। इनमे 'प्रकार' (kind)

का नहीं 'मात्रा' (degree) का भेद है। एक भावना-ग्रंथियों (complexes) से युद्ध करना जानता है, दूसरा नहीं। दूसरे मे भावना-ग्रंथियों से युद्ध करने की शक्ति का अभाव रहता है। युंग के शब्दों मे *"The normal has to contend the same complexes that make a neurotic ill"*

'साधारण' (normal) को 'असाधारण' अथवा विकृत (abnormal) से हम निम्न प्रश्नों के आधार पर सरलता से पृथक् कर सकते हैं :—

१. उस व्यक्ति-विशेष की रुचि अथवा उद्देश्य (motives) क्या हैं? उसने अपनी किन इच्छाओं का दमन किया है; और उसकी किन इच्छाओं का विकास ही नहीं हुआ? क्या उसकी इच्छाएँ अतिशयी (exaggerated) हैं।
२. उसकी रुचि का विकास किस स्तर तक पहुँचा है? ऐसा तो नहीं कि प्रौढ़ होते भी वह बचपन दिखाता है?
३. वह विषय-वस्तु क्या है जिससे उसने अपने अहं का तादात्म्य (ego-identification) स्थापित किया है? क्या वह वातावरण से मेल रखता है? वास्तव मे वह क्या बनना चाहता है?
४. उसका स्वभाव कैसा है? सुविधाएँ रहते भी क्या वह उदास अनमना रहता है, या प्रसन्न रहता है?
५. उसकी रुचि और ध्यान की धारा किधर को है? भूत भविष्य तथा वर्त्तमान मे से उसकी लगन (orientation) किसमे है?
६. अन्य जनों का उसके विषय मे क्या विचार है? क्या वे उसके जीवन को असंतुलित (unadjusted) समझते हैं जब कि वह अपने को संतुलित समझता है?
७. विवाह तथा गार्हस्थ जीवन के प्रति उसके क्या विचार हैं? क्या वह विवाह के दायित्व से भागता है? क्या उसे परवर्गी (hetrosex) को देखकर झेंप आती है?
८. उसका व्यक्तित्व किस प्रकार का है: वह अन्तर्मुखी है या बहिर्मुखी—कल्पनाप्रेमी अथवा समाजप्रेमी?

९.उसकी चेष्टा-भावना क्या प्रबल है अथवा उसमें उसका सर्वथा अभावहै?

१०. कठिनाइयों की उस पर क्या प्रतिक्रिया होती है ? क्या परिस्थिति और वातावरण से वह विशेष प्रभावित होता है ?

सामान्य रूप से जो व्यक्तिगण भाव-बुद्धि, विचार-क्रिया की दृष्टि से विकृत हैं उन्हें चार वर्ग मे बाँटा जा सकता है : मानसिक दौर्बल्य (psychoneurosis) मनोविक्षेप (psychosis), मानसिक दोष-कमी (mental defectiveness) और अपराधी वर्ग (anti-social)। मानसिक दौर्बल्य के मुख्य लक्षण चिंता, अन्तर्द्वद्व, ध्यान का अस्थिर रहना, विस्मरण, असाधारण भय, विचारों का मडराना हैं। शारीरिक लक्षण मे सिर का दर्द, बदहजमी, थकान और क्रियाओं मे कमी का हो जाना है। जो व्यक्ति साधारण है उसमे भी भाव-संबंधी हलचल होती है, किंतु यह क्षणिक है । वह चन्द मिनटों मे ही ज्ञान, क्रिया और भाव से समायोजित हो जाता है । शरीर और मन का हलचल क्षणभंगुर होता है । मानसिक दौर्बल्य मे अव्यवस्था, चिंता, भय, थकान सब निरंतर बनी रहती हैं । हीनत्व भाव की गांठ पड़ जाती है और प्रयत्न करने पर भी सुधार नहीं होता । मनोविक्षेप की अवस्था मे तो ऐसे स्पष्ट लक्षण मिलते हैं कि इस वर्ग के व्यक्तियों को आसानी से साधारण वर्ग से पृथक् किया जा सकता है । इनके बारे मे विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है।

जिन व्यक्तियों मे मानसिक दोष-कमी रहती है उनका भी क्रिया-व्यापार-व्यवहार बुद्धि की कमी के कारण विकृत होता है। बुद्धि-स्तर ऊँचा न होने के कारण उनका व्यवहार साधारण नहीं हो पाता। वातावरण से संतुलन स्थापित करना उनके लिये असंभव सा हो जाता है। भावना-वेदना असाधारण रूप ले लेती है। जो भी अपने वातावरण से असंतुलित हैं उन्हें असाधारण कहना गलत नहीं है । इसी प्रकार असामाजिक कार्य करनेवाले भी असाधारण ही हैं क्योंकि इनका क्रिया-व्यापार-व्यवहार औसत व्यक्ति से भिन्न रहता है। औसत व्यक्ति मे सामाजिक भावनाएँ होती हैं। इनमे दया सहानुभुति वफ़ादारी का भाव नहीं रहता। किस प्रकार असामाजिक वर्ग के व्यक्ति औसत से भिन्न हैं, इसका विस्तार से आगे उल्लेख किया जायगा।

२—मानसिक स्वास्थ्य-वृद्धि का दूसरा उपाय (positive factor) वृत्ति का उन्नयन (sublimation) है। इससे एक ओर वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं और दूसरी ओर परिशोधित रूप ले लेने से समाज उनकी आलोचना भी नहीं करता। बात यह है कि मन को स्वस्थ रखने के लिये वृत्तियों को तृप्त करना ही है; और प्रकृत इच्छाओं के संतोष का सबसे भला उपाय उनका उन्नयन करना है। यह आन्तरिक और बाह्य जगत् मे समझौता-संतुलन लाने का एक साधन है। वृत्तियों की अभिव्यक्ति परिशोधित रूप मे हो जाती है। मानव स्वभाव ऐसा है कि यह अभिव्यक्ति होगी ही, रूप कुछ भी हो। यदि आत्म-स्थापन की वृत्ति प्रबल है तो उसकी संतुष्टि दूसरों पर रोब दिखलाने मे भी हो सकती है और देश-सेवा द्वारा भी। इसी प्रकार काम-वृत्ति की तुष्टि वासनाओं द्वारा भी हो सकती है और भक्ति-भाव द्वारा भी। प्रत्येक वृत्ति जब परिशोधित रूप मे अपने स्थान पर काम करती है, तभी मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। संक्षेप मे, उन्नयन से ये लाभ हैं:—

१. इससे बहिर्जगत् और आन्तरिक जगत् मे समझौता होता है।
२. आन्तरिक जगत् मे भी इदम् की प्रकृत इच्छाओं और नैतिक मन मे संघर्ष नहीं रह जाता।

इस उन्नयन-परिमार्जन के लिये घर का वातावरण उपयुक्त रहना चाहिये। बालकों की वृत्तियों-प्रवृत्तियों तथा संवेगों को किसी भी दिशा मे मोड़ा जा सकता है। कभी-कभी कुछ वृत्तियों का प्रकाशन न होने से वे निश्चेष्ट भी हो जाती हैं।

निम्न नियमों को ध्यान मे रखने से सामान्य रूप से मन स्वस्थ रह सकता है:—

१. जीवन के प्रति विचारयुक्त भाव रखा जाय, अर्थात् मध्यम मार्ग का अनुसरण किया जावे—जिसमे व्यक्ति न तो वृत्तियों का दास बने और न वैरागी। भोग-विलास मे अपने को भूल जाने पर वह मन से वैसे ही स्वस्थ नहीं रह सकता जैसे वृत्तियों-प्रवृत्तियों पर कड़ा शासन रखने से।

२. शरीर आवश्यक रूप से स्वस्थ रखा जाय। इस पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है।

३. कायिक क्रियाओं (biological functions) के प्रति यह भाव रखा जाय कि वे घृणित न लगें। जिस प्रकार भूख लगने पर भोजन करना आवश्यक है, उसी प्रकार काम सम्बन्धी क्रियाएँ (biological function of the sex) भी।

४. यह अभ्यास हो कि किसी भी परिस्थिति मे कठिनाइयों का सामना किया जा सके। इसके लिये उसमे आवश्यक साहस और शक्ति रहे।

५. परिस्थितियों का सामना करके फिर अपनी चेष्टा मे सफलता पाने की योग्यता रहे।

६. अपने विषय मे, अपनी दुर्बलताओं के विषय मे पूरा बोध रहे। मनुष्य यदि कोई अपराध करे तो उसे समझे-बूझे और मान ले, क्योंकि भूलों और दुर्बलताओं को समझ लेने पर ही सुधार संभव है।

७. मनुष्य को सतत प्रयत्नशील होना चाहिये ; साथ ही प्रगतिशील भी। सदा नई आशा-योजनाएँ बनाता रहे। क्योंकि जो है उसी से, अपने अर्थात् अपने वर्तमान से संतुष्ट रहनेवाला व्यक्ति भविष्य मे उससे असंतुष्ट हो उठता है।

८. व्यवहार-कुशल हो। अपने लाभ के साथ-साथ दूसरों के हित का भी ध्यान रक्खे। जो व्यक्ति स्वार्थी होता है, जिसे दूसरे के हानिलाभ का ध्यान नहीं होता, वह मन से स्वस्थ नहीं रह सकता।

९. जो व्यक्ति मानसिक विकारों से दुखी है उसके प्रति तिरस्कारपूर्ण भाव नहीं रखना चाहिये। तिरस्कार दोनों पक्ष के लिये हानिकारक है।

इन नियमों का पालन करने से मनुष्य मन से नीरोग रहता है। यदि माता-पिता तथा शिक्षक प्रारम्भ से ही इन नियमों का बोध बालकों को करायें, तो निश्चय ही आगे जाकर उनका जीवन संतुलित रह सकेगा।

१०

मनोविश्लेषण और स्वप्न

आधुनिक मनोविज्ञान मे मन की दशा समझने के लिये स्वप्न का विशेष महत्व है। स्वप्नों के अध्ययन मे मानव-समाज को सदा से ही रस रहा। जिज्ञासा का विषय था : स्वप्न क्या है, क्यों होता है, तथा उसका क्या प्रयोजन है? इन प्रश्नों पर विचार-विवेचन देश, काल और सभ्यता के विकास के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया। बहुत समय तक सबकी यही धारणा रही कि स्वप्न का कारण कोई दैवी शक्ति है और इसलिये यह भावी घटनाओं का भी सूचक है। कहीं-कहीं यह भी धारणा थी कि स्वप्न आत्मा (soul) का निद्रा में अनुभव है। निद्रावस्था मे मनुष्य की आत्मा भौतिक शरीर को छोड़कर स्वच्छन्द रूप से इधर-उधर भ्रमण करती है; और उस समय वह जो कुछ देखती और अनुभव करती है, वही स्वप्न है। यह धारणा बहुत दिनों तक लोगों मे बनी रही। लेकिन स्वप्न का यह सिद्धान्त आधुनिक मनोविज्ञान मे कोई स्थान नहीं रखता। मनोवैज्ञानिकों के लिये यह कपोल कल्पना है। मनोविश्लेषण मे तो 'स्वप्न के दैहिक सिद्धान्त' (physiological theory of dream) का भी विरोध किया गया है।

दैहिक सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न का संबंध शारीरिक उद्दीपनों से है। ये उद्दीपन दो प्रकार के होते हैं: कभी बाह्य विषय-वस्तुएँ उद्दीपन का कार्य करती हैं, और कभी शरीरस्थ विकार। घड़ी की टिक-टिक ध्वनि के प्रभाव से जब कोई व्यक्ति स्वप्न मे गिरजा का घंटा बजते सुनता है तब यह कहा जायगा कि इस स्वप्न का उद्दीपन बाह्य वस्तु है। इसी प्रकार जब अपच स्वप्न का

कारण होता है तब स्वप्न का उद्दीपन आन्तरिक शारीरिक विकार है। किन्तु वर्तमान मनोवैज्ञानिक युग का एक नया सिद्धान्त है। मनोविश्लेषण की दृष्टि से स्वप्न का संबंध बाह्य तथा आन्तरिक उद्दीपनों (external & internal stimuli) से नहीं ,वास्तव मे अज्ञात मन से है।

स्वप्न क्या है:—'स्वप्न' शब्द का अर्थ है "अपने आप मे रमण करना"। अन्य मानसिक क्रियाओं के समान यह भी एक सामान्य चेष्टा-अनुभव है। निद्रावस्था मे प्रत्येक व्यक्ति स्वप्न का अनुभव करता है, भले ही वह किसी को अधिक और किसी को कम हो। जो कुछ स्वप्न मे अनुभूत होता है उसकी सदा पूरी स्मृति नहीं रहती। कभी थोड़ी या छिटपुट रहती है और कभी बिल्कुल नहीं। विश्लेषण करने पर पता लगता है कि निद्रावस्था की इन अनुभूतियों का संबंध जाग्रत मन से नहीं है क्योंकि तब हम जाग्रति की अनुभूतियों से दूर रहते हैं। उस समय हम कल्पना-लोक मे रमते हैं और उसका संबंध पूर्णतः अज्ञात मन से है। अज्ञात मन की इच्छाएँ ही स्वप्न मे प्रत्यक्ष होती हैं। इसी आधार पर फ्रायड तथा उनके समर्थकों ने 'स्वप्न' को अज्ञात मन के स्तर पर इच्छा-पूरक (wish fulfilment) माना। स्वप्न एक ऐसी पहेली है जिसके द्वारा अज्ञात मन अपनी अतृप्त तथा दबी-घुटी इच्छाओं का चुपे-छिपे सन्तोषण अथवा समाधान करता है। अज्ञात मन मे दमन की जाने पर अनेक इच्छाएँ संगृहीत हो जाती हैं, ये ही इच्छाएँ स्वप्न का कारण बनती हैं। स्वप्न एक मानसिक क्रिया है जिसके पीछे एक इतिहास छिपा होता है। इसी कारण मनोवैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि स्वप्न का जीवन से बहुत घनिष्ट संबंध है। इसमे मनुष्य जीवन की जटिल समस्याओं को काल्पनिक रूप मे सुलझाने का प्रयत्न करता है। कोई भी स्वप्न बाहरी दृष्टिसे कितना ही हास्यास्पद अथवा असम्बद्ध क्यों न लगे वह स्वप्नद्रष्टा के व्यक्तित्व को व्यक्त करता है। स्वप्न मे हमारे व्यक्तित्व का आभास मिलता है। इसका अधिकतर महत्त्व व्यक्तिगत (personal) होता है। स्वप्न मे देखी हुई वस्तुओं तथा घटनाओं द्वारा स्वप्नद्रष्टा की

मूल इच्छा, प्रवृत्ति और रुचि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है। दूसरे शब्दों मे स्वप्न प्रत्येक प्राणी की अपनी-अपनी भावनाओं और वासनाओं के अनुसार रची हुई विशेष सृष्टि है। उदाहरणार्थ, एक सदाचारिणी युवती स्वप्न मे देखती है कि एक अपरिचित पुरुष पीछा कर रहा है और वह भागने का, बचने का प्रयत्न कर रही है। अंत मे उसे माँ मिल जाती है और वह अपने को सुरक्षित समझ लेती है। इस स्वप्न मे मनोविश्लेषण के आधार पर वह पुरुष उसकी दबी-दबाई कामेच्छा तथा पुरुषों के प्रति आर्कषण का द्योतक है। उस स्त्री के ज्ञात मन मे राग नहीं था, किन्तु अज्ञात मन मे था। जब उसका मनोविश्लेषण किया गया तो यह रहस्य स्पष्ट हो गया।

स्वप्न पर अधिक ज्ञान के लिये तत्सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्त जानना आवश्यक है।

स्वप्न के सिद्धान्त :—स्वप्न के अनेक सिद्धान्त हैं जिनमे निम्न विशेष उल्लेखनीय हैं :—

१. बोधन भ्रम सिद्धान्त (Perception Illusion Theory of Dream)

२. अन्वीक्षा विभ्रम सिद्धान्त (Dream as an Apperceptive Trial and Error)

३. फ्रायड स्वप्न सिद्धान्त

४. स्वतः प्रतीकात्मक स्वप्न सिद्धान्त (Auto Symbolic Theory of Dream)

१. 'बोधन भ्रम' एक प्राचीन सिद्धान्त है। इसके अनुसार स्वप्न निद्रावस्था के उद्दीपनों की प्रतिक्रिया है। निद्रा मे हम उद्दीपन (stimulus) को उसके वास्तविक रूप मे नहीं देखते, प्रायः उसे कुछ का कुछ समझते हैं, और इस प्रकार हमे भ्रम होता है। जैसे कोई व्यक्ति यदि गहरी नींद मे है और उसे पानी का छींटा दिया जाय तो वह स्वप्न मे अपने को शराब पीता हुआ पायगा। भारतीयों को तब पानी बरसने का

अनुभव होता है। इसी प्रकार नींद मे कुछ छू जाने पर बाघ के आक्रमण का स्वप्न हो सकता है। अब प्रश्न यह है कि निद्रावस्था मे रहने पर भी वह इस प्रकार राई का पर्वत कैसे कर लेता है? किस प्रकार वह मच्छर के आक्रमण को बाघ का आक्रमण समझ बैठता है? बात यह है कि निद्रावस्था मे विचार (thinking), प्रत्यक्षीकरण (perception) और स्मरण (memory) शक्तियां परस्पर असम्बद्ध हो जाती हैं। इसी कारण भ्रम होने लगता है और उत्तेजन को उसके सहज-रूप मे न देखकर अन्य रूप मे देखा जाता है। विकृत स्वप्नों का यही कारण है। 'प्रयोगों' (experiments) के आधार पर स्वप्न-विषयक इस सिद्धान्त की सत्यता कुछ सीमा तक सिद्ध की जा सकती है।

२. 'अन्वीक्षा विभ्रम सिद्धान्त' भी स्वप्न को प्रत्यक्ष उद्दीपन (perceptual stimulus) की प्रतिक्रिया (response) मानता है। अंतर इतना ही है कि इस सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न उस उद्दीपन(stimulus) का परिणाम ही नहीं होता, वरन् उसमे उसकी (उद्दीपन) विवेचना (interpretation) भी मिलती है। स्वप्न में ही उद्दीपन (stimulus) की व्याख्या का भी प्रयत्न किया जाता है। मच्छर के आक्रमण का अनुभव होते ही हम बाघ के आक्रमण का स्वप्न नहीं देखते; मन इसकी विवेचना करता है और तब बाघ के आक्रमण का अनुभव हम स्वप्न मे करते हैं।

३. फ्रायड का स्वप्न सिद्धान्त समझने के पहले अज्ञात मन के सिद्धान्त को समझना आवश्यक है। स्वप्न का अज्ञात मन से ऐसा अटूट संबंध है कि अज्ञात मन को जाने बिना स्वप्न को समझा ही नहीं जा सकता। अज्ञात मन की विशद व्याख्या प्रथम तीन प्रकरणों मे हो चुकी है। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि फ्रायड के दृष्टिकोण से स्वप्न कामवासना का काल्पनिक पूरक मात्र है।

४. 'स्वतः प्रतीकात्मक सिद्धान्त' (Auto Symbolic Theory of dream) युंग द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार स्वप्न एक साधारण मानसिक क्रिया है जिसमे दबी-दबायी प्रवृत्तियाँ तथा जातीय विशेषताएँ प्रतीक रूप मे अभिव्यक्त होती हैं। अज्ञात मन का स्वभाव है कि वह किसी भी वस्तु के विषय में सीधे-सीधे न सोचकर परोक्ष रूप मे सोचता है। इस विषय पर आगे चलकर और भी प्रकाश डाला जायगा।

इतना मतभेद होने पर भी स्वप्न के संबंध मे यह प्रायः सभी को मान्य है कि स्वप्न ज्ञात मन के अधीन नहीं है। इसका संबंध अज्ञात मन से है। यही कारण है कि स्वप्न मे बहुधा ऐसी वस्तुएँ देखी जाती हैं, जो जाग्रत मन की इच्छाओं के प्रतिकूल होती हैं।

स्वप्न के कारण :—स्वप्न का मुख्य कारण मन का संघर्ष (conflict) और दमन (repression) है। यहाँ तक सभी मनोवेत्ता एकमत हैं; पर जिस इच्छा का दमन किया जाता है वह क्या है और उसका क्या स्वभाव है, इस पर मनोवैज्ञानिकों मे मतभेद हैं। फ्रायड के मत से मनुष्य-जाति मे काम-वृत्ति प्रबलतम होती है। समाज के नियम-प्रथाओं के अनुसार उसके सन्तोषण-समाधान पर प्रतिबंध रखा गया है। परिणामतः साधारण जीवन मे इस वृत्ति का दमन कर दिया जाता है। इस प्रबल मूलवृत्ति से संबंधित इच्छाओं का दमन ही स्वप्न का मूल कारण है। दमन किये जाने पर ये इच्छाएँ अज्ञात मन का प्रमुख अंग बन जाती हैं और स्वप्न मे चित्रों-दृश्यों के रूप मे दिखाई पड़ती हैं। बाग, बगीचा, गुफा, पेड़, छड़ी, सर्प, पानी, सीढ़ी चढ़ना-उतरना, इत्यादि सब वस्तुएँ तथा घटनाएँ जो स्वप्न मे दिखाई देती हैं कामवासना से संबंधित इच्छाओं की द्योतक हैं।

प्रश्न यह उठता है कि क्या निद्रावस्था मे अज्ञात मन जाग्रत रहता है? निद्रा मे चेतन क्रियाएँ तो बंद रहती हैं, किन्तु अज्ञात मन की चेष्टाएँ-कार्य-पद्धतियाँ (mechanisms) चलती रहती हैं। सच तो यह है कि निद्रावस्था मे

अज्ञात मन अधिक सचेत-क्रियाशील हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि निद्रावस्था मे ज्ञात मन (conscious mind) का प्रतिरोध (resistance) घट जाता है जिससे कि अज्ञात मन को अपने उद्‌गार-प्रदर्शन का अवसर मिल जाता है। फिर भी स्वप्न-प्रतिबंधक (dream censor) के कारण कुछ न कुछ रोध बना ही रहता है और इस प्रकार अज्ञात मन मे दबी-दबायी संग्रहीत इच्छाओं की अभिव्यक्ति प्रकृत रूप मे नहीं हो पाती। इस कारण इच्छाएँ संकेतों मे व्यक्त होती हैं। यह सारा अभिनय स्वप्न-प्रतिबंधक को भ्रम मे डालने के लिये अज्ञात मन रचता है। नैतिक मन (super-ego) की दृष्टि से ये इच्छाएँ अश्लील होती हैं, फिर भी इन प्रकृत इच्छाओं का समाधान करना ही पड़ता है। फल-स्वरुप हम स्वप्न देखते हैं और उनसे एक प्रकार की स्थानापन्न तृप्ति (substitutive gratification) पाते हैं। यह काल्पनिक तृप्ति है, तो भी अज्ञात मन को तृप्त करने का अच्छा साधन है।

स्मरण यह रखना है कि कामवासना के अतिरिक्त अन्य मूल वृत्तियों से सम्बन्धित इच्छाएँ भी उद्दीपन के रूप मे स्वप्न का कारण हो सकती हैं। जिस प्रकार अतृप्त काम-वृत्ति हमे स्वप्न के लिये बाध्य करती है, उसी प्रकार अन्य वृत्तियाँ, जिनके समाधान के लिये जीवन मे उचित साधन नहीं मिलते, स्वप्न का कारण हो सकती हैं। ये वृत्तियाँ धार्मिक, सामाजिक, नैतिक और आत्म-स्थापन की होती हैं। ऐडलर के मनोविज्ञान मे आत्म-स्थापन की वृत्ति का तुष्ट न होना स्वप्न का कारण माना गया है। वास्तव मे प्रत्येक व्यक्ति मे आत्म-प्रदर्शन की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। जब इस इच्छा के समाधान का साधन जीवन मे नहीं मिलता तो मनुष्य स्वप्नों मे कल्पनाओं (phantasy) द्वारा उसकी पूर्ति करता है। कारण, मनुष्य की प्रकृत इच्छाएँ अतृप्त अवस्था मे नहीं रह सकतीं। वास्तविक जीवन मे यदि इच्छाएँ तृप्ति न होंगी तो वे कल्पनाओं, स्वप्नों या किसी न किसी रूप में समाधान खोजेंगी। आत्म-स्थापन (self-assertion) की वृत्ति के अतृप्त रहने पर स्वप्न मे कभी-कभी हम अपने को ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित पाते हैं ; कभी दास-दासियों के बीच आलीशान महल

मे बैठे हुए ; कभी युद्ध-भूमि मे वीरतापूर्वक शत्रु-संहार करते हुए पाते हैं। ऐंडलर के मत से जीवन के प्रति हमारा जो भाव है स्वप्न उसको व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों मे, स्वप्न जीवन की समस्याओं, कुंठित इच्छाओं और ग्रन्थियों का छाया-वाहक होता है। जीवन की ये समस्याएँ मनुष्य के विचार-आदर्श और ध्येय से संबंधित हैं और यह ध्येय अपनी सत्ता (will to power)रखनी है। आत्म-स्थापन की वृत्ति संतुष्ट रखना वास्तव मे अधिकतर व्यक्तियों के जीवन का ध्येय होता है।

आत्म-स्थापन की वृत्ति के समान अन्य वृत्तियाँ भी उद्दीपन का कार्य करती हैं। मैकडूगल के अनुसार सब मूल वृत्तियों मे से, जिनका उल्लेख पिछले अध्याय मे किया जा चुका है, किसी भी वृत्ति का दमन या उनका आपस का संघर्ष स्वप्न का कारण हो सकता है। कभी आत्मलघुता और आत्म-स्थापन की वृत्तियों मे संघर्ष होता है ; कभी अन्य दो और वृत्तियों मे। यदि हम स्वप्नों की विवेचना करें तो पता लगेगा कि अधिकतर वे वृत्तियों से सम्बन्धित विषयों को प्रकट करते हैं। भोजन, जल, मृत्यु, जल मे तैरना, साँप से डरना इत्यादि, इसका प्रमाण हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य जब भूखा होता तो वह भोजन का स्वप्न देखता है ; जब भागने की वृत्ति जाग्रत होती है, तब वह अपने को स्वप्न मे लड़ाई के मैदान से भाग खड़ा हुआ पाता है। स्वप्न का कारण किसी वृत्ति मात्र का होना नहीं है। वास्तव मे, जैसा कहा भी जा चुका है, यह दो विरोधी इच्छाओं-वृत्तियों के संघर्ष का परिणाम है। एक ओर तो मूल वृत्ति समाधान चाहती है और दूसरी ओर जीवन के आदर्श उसमे बाधा डालते हैं। तब संघर्ष होता है। संघर्ष मे अधिकतर आदर्शों की विजय होती है। आदर्शों को संतुष्ट करने के लिये प्रकृत इच्छाओं का दमन किया जाता है। ये दमन की हुई इच्छाएँ परिवर्तित विकृत रूप मे प्रकट होती हैं। और यही कारण है कि स्वप्न पहेली से प्रतीत होते हैं।

साथ ही स्वप्न का कारण केवल मूल वृत्तियों का दमन और संघर्ष ही नहीं है। स्वप्न एक प्राकृतिक क्रिया है। इसका कारण वंशगत् विशेषताएँ भी हो

सकती हैं। इसके प्रमाण मे युंग ने कई उदाहरण दिये हैं। युंग के मित्र ने एक स्वप्न देखा : "वह बहुत सी स्त्रियों से घिरा हुआ है। वह उन लोगों से मुक्त भाव से विचार-विनिमय करना चाहता था। किन्तु समस्या यह थी कि वह पिता की उपस्थिति मे उन लोगों से बातें कैसे करे। इस कारण उसने उन स्त्रियों से कहा, 'ठहरो ! पहले मुझे पिता से समझ लेने दो'।"

साधारणतया पुरुषों मे स्त्रियों के प्रति एक आकर्षण का भाव होता है। यह स्वप्न उसी भावना का दिग्दर्शन कराता है। पुरुषों के अज्ञात मन मे स्त्री-आकर्षण की एक भाव-प्रतिमा है। यह भाव-प्रतिमा एक जातीय संवेगात्मक विशेषता है जो प्रत्येक पुरुष मे रहती है। अन्तर इतना ही है कि किसी मे यह अधिक विकसित रहती है, किसी मे कम। युंग के शब्दों मे पुरुषों के अज्ञात मन मे उपस्थित यह संवेगात्मक आकर्षण की भाव-प्रतिमा 'ऐनिमा' (anima) नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार स्वप्न हमारे व्यक्तित्व की साधारण-असाधारण दोनों ही अवस्थाओं को व्यक्त करता है। यह सोचना भूल है कि संघर्ष और दमन के न होने पर स्वप्न नहीं आता, या स्वप्न केवल हमारे मानसिक विकार का परिणाम है और हम विक्षिप्तावस्था मे ही स्वप्न देखते हैं। स्वप्न एक साधारण क्रिया है और मानसिक विशेषता का द्योतक है।

स्वप्न का मनोवैज्ञानिक आधार (*Psychology of Dream*)

स्वप्न-विश्लेषण के सहारे यह प्रमाणित हुआ है कि प्रत्येक स्वप्न के दो भाग या दो स्वरूप होते हैं। फ्रायड के मनोविज्ञान मे ये दोनों भाग व्यक्तस्वरूप (manifest content) और अव्यक्त स्वरूप (latent content) नाम से प्रसिद्ध हैं। व्यक्तस्वरूप(manifest content)स्वप्न का वह भाग है जो स्वप्न-द्रष्टा जागने पर वर्णन करता है। विराम के कारण वर्णन करते समय बीच-बीच की कुछ बातें वह भल जाता है और कुछ कल्पना के सहारे जोड़ देता है। इस प्रकार जो कुछ वह स्वप्न मे देखता है उसका भी ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर पाता। साथ ही यदि स्वप्नद्रष्टा अपने स्वप्न का ठीक-ठीक वर्णन कर दे, फिर भी मूल तत्व पर हम नहीं पहुँच सकते। इसका कारण है अज्ञात मन की कूट-

नीति (diplomacy of the unconscious) जिसके कारण अज्ञात मन की इच्छाएँ प्रतीकात्मक रूप मे प्रकट होती हैं।

अव्यक्त स्वरूप (latent content) स्वप्न का वास्तविक तत्व है। इसका अन्वेषण विश्लेषण द्वारा ही हो सकता है। वास्तव मे व्यक्त स्वरूप (manifest content) अव्यक्त स्वरूप (latent content) का आवरण मात्र है जैसे, परिमित (finite) अपरिमित (infinite) का।

विश्लेषण के सहारे यह ज्ञात होता है कि प्राय: वर्णन किया हुआ स्वप्नांश अर्थात् स्वप्न का व्यक्त स्वरूप (manifest content) हमारी वास्तविक इच्छाओं (latent thoughts) का निरा विपरीत रूप होता है। स्वप्न मे हम से वही व्यक्ति घृणा करता है, जो कि वास्तव में हमको बहुत प्यार करता है। इसलिये स्वप्न मे किसी को अपने से घृणा करते हुए देखने का यह तात्पर्य नहीं कि हम उसका अविश्वास करने लगें। कभी-कभी स्वप्न मे हमारी ही आन्तरिक इच्छाएँ और आकांक्षाएँ विपरीत रूप मे प्रकट हो जाती हैं। अपनी इच्छा के प्रतिकूल भी अपने प्रिय से प्रिय की मृत्यु स्वप्न मे देखी जाती है, लेकिन इस प्रकार के स्वप्न से भय नहीं होना चाहिये। स्वप्न के वास्तविक अर्थ को समझना अत्यन्त आवश्यक है। इसका ज्ञान हमे स्वप्न-विवेचन (dream-interpretation) द्वारा ही हो सकता है। स्वप्न-विवेचन (dream-interpretation) की क्या विधि है इसका उल्लेख पीछे किया जावेगा। यहाँ इतना बतलाना आवश्यक है कि विचित्र प्रकार के स्वप्नों का दायित्व किन कार्य-पद्धतियों (mechanisms) पर है। कौन सी कार्य-पद्धतियाँ वास्तविक इच्छा (latent content) को परिवर्तित रूप (manifest content) मे अभिव्यक्त करती हैं। फ्रायड के शब्दों मे वास्तविक इच्छा को परिवर्तित रूप मे व्यक्त करने की प्रणाली को 'स्वप्न क्रिया' (*dream-work*) कहते हैं। इसके कारण आभ्यन्तरिक इच्छाओं का, जो स्वप्न के लिये उद्दीपक-प्रेरक हैं, रूप बदल जाता है और हमारी इच्छाएँ स्वप्न मे विलक्षणरूप मे प्रकट होती हैं। यही कारण है कि 'स्वप्न-क्रिया' (*dream-*

work) बड़े महत्त्व का कार्य करती है। यह हमारे अज्ञात मन की इच्छाओं को वह रूप देती जो हमारे ज्ञात मन को स्वीकृत हो ।

स्वप्न की कार्य-पद्धतियाँ (*dream mechanisms*) :—फ्रायड के अनुसार 'स्वप्न-क्रिया' (*dream work*) मे अज्ञात मन की ये चार कार्य-पद्धतियाँ प्रमुख हैं :—

१. संक्षेपण (*condensation*)
२. विस्थापन (*displacement*)
३. नाटकीयन (*dramatization*)
४. प्रतीकीकरण (*symbolization*)

१. यह पहले ही बतलाया जा चुका है किस प्रकार संक्षेपण की कार्य-पद्धति के कारण समान अथवा समान गुणोंवाली अनेक विषय-वस्तुएँ किसी 'एक' ऐसे विषय-वस्तु द्वारा प्रकट की जाती हैं जिसमे उस समानता या उन समान गुणों या विशेषताओं को व्यक्त करने की क्षमता हो। यही नहीं, स्वप्न मे अज्ञात मन दो भिन्न तथा विरोधी विचारों को भी संक्षिप्त करने का प्रयत्न करता है। बात यह है कि स्वप्न-कल्पना (dream phantasy) की यह विशेषता है कि वह किसी भी वस्तु या घटना का विशद रूप नहीं लेती। इस कारण स्वप्न रूप मे प्रकट होने के पहले किसी घटना-विशेष का संक्षिप्त होना आवश्यक है।

जब स्वप्न-कल्पना अपनी कार्य-कुशलता का प्रयोग इच्छाओं के सम्मिश्रण मे करती है तब जो कार्य-पद्धति काम करती है उसे 'ओवर-डिटरमिनेशन' (*over-determination*) कहते हैं। हमारे अज्ञात मन मे अनेक इच्छाएँ होती हैं: कुछ बहिष्कृत होती हैं, कुछ अज्ञात मन की जन्मजात निधि होती हैं और इनमे से कुछ मे एकत्व और समानता रहती है। ऐसी स्थिति मे कुछ अव्यक्त इच्छाएँ छूट जाती हैं, और कुछ मिश्र रूप मे प्रकट होती हैं। उदाहरणार्थ, 'एक बालिका स्वप्न मे अपने को झूले पर झूलते हुये तथा एक युवक को सैनिक वेष-सज्जा मे घोड़े पर चढ़े और हाथ मे मूल्य-

वान हीरे की अँगूठी पहने अपनी ओर आते हुए देखती है'। इस स्वप्न मे युवक युवती की कई इच्छाओं का प्रतिनिधि बनता है। दूसरे शब्दों मे स्वप्नद्रष्टा की इच्छाओं का वह मिश्र प्रतिरूप (composite image) है। युवक का व्यक्तित्व—यौवनावस्था—युवती की काम-वृत्ति का द्योतक है; उसका वेष युवती के आत्म-स्थापन वृत्ति पर प्रकाश डालता है; और हीरे की अँगूठी युवती की संचय-वृत्ति को प्रदर्शित करती है। अब प्रश्न यह है कि स्वप्न मे अज्ञात मन को इस प्रकार की कूटनीति चलने का क्या प्रयोजन है? इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि अधिक से अधिक अव्यक्त इच्छाएँ सक्षेप मे प्रकट की जा सकें। यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार फ्रायड के अनुसार अज्ञात मन हमारी बहिष्कृत इच्छाओं का संग्रहालय है, और ये ही इच्छाएँ स्वप्न मे संक्षिप्त रूपसे प्रकट होती हैं।

२. इसी प्रकार स्वप्न-रूप लेने के पहले हमारी वास्तविक इच्छाएँ भ्रिस्थापन (*displacement*) की कार्य-पद्धति से संचालित होती हैं। इस कार्य-पद्धति के कारण इच्छा की पूर्ति के लिये जो आवश्यक वस्तु है अनावश्यक दिखलाई पडती है और अनावश्यक आवश्यक। इस प्रकार एक वस्तु का मान-मूल्य (value) दूसरी वस्तु की ओर स्थानान्तरित (transference) हो जाता है। निट्शे के शब्दों मे इसे 'मूल्यों का परामूल्यान्तरण' (*Transvaluation of values*) कहा गया है। इस कार्य-पद्धति के सक्रिय होने का परिणाम यह होता है कि हमारी अव्यक्त इच्छाएँ (latent desires) कुछ का कुछ रूप ले लेती हैं। स्वप्न का जो विषय (object) है उससे स्वप्नद्रष्टा की वास्तविक रुचि का पता कठिनाई से लग पाता है। इस प्रकार स्वप्नद्रष्टा की वर्णित कहानी के आधार पर स्वप्न का वास्तविक महत्त्व समझना एक समस्या है और इसको समझने के लिये स्वप्न विश्लेषक को विशेष कुशल होना चाहिये। तभी वह स्वप्न के वास्तविक तत्त्व (latent thought) पर पहुँच पायेगा।

३. ऐसे ही 'नाटकीयन' (dramatization) भी स्वप्न मे अपना कार्य करता है। इस पद्धति के कारण स्वप्न मे हरेक घटना चित्र रूप मे आती है।

ये चित्र दृश्य, श्रव्य और स्पर्श, तीनों रूपों मे हो सकते हैं। स्वप्न मे गूढ़ से गूढ़ विचार भी चित्र रूप मे ही प्रकट होते हैं। व्यक्तियों और घटनाओं को चित्र रूप में प्रस्तुत करना सरल है, किन्तु जब गूढ़तम दार्शनिक विचारों को चित्र मे प्रकट करना होता है तब कठिनाई होती है। फिर भी अज्ञात मन की यह प्राकृतिक क्रिया स्वप्नों के लिये आवश्यक है, क्योंकि कल्पना को अमूर्त (abstract) रूप देने की अपेक्षा मूर्त (concrete) रूप देने मे कम शक्ति लगती है।

४. प्रतीकीकरण (symbolization) स्वप्न को विकृत करने की एक अन्य विधि है। फ्रायड के लिये यह 'दूसरी स्वतंत्र कार्य-पद्धति' (second independent mechanism) है। 'नैतिक प्रतिबंधक' (censor) प्रधान है। किन्तु वास्तव मे 'प्रतीकीकरण' अज्ञात मन की प्रमुख कार्य-पद्धति है। यदि नैतिक प्रतिबंधक (censor) न हो तब भी यह पद्धति स्वप्न को विकृत-परिवर्तित करने के लिये काफ़ी है। इसके द्वारा अज्ञात मन को अपनी दमन की हुई इच्छाओं के प्रदर्शन मे विशेष सहायता मिलती है। इस प्रणाली के प्रयोग से अज्ञात मन की निन्दनीय इच्छाएँ अभिव्यक्ति योग्य हो जाती हैं और हमारा नैतिक मन बाधक नहीं होता। यदि इच्छाओं का रूप न बदले तो नैतिक प्रतिबंधक (censor) अज्ञात मन की इच्छाओं के प्रदर्शन मे रुकावटें डालेगा। साथ ही 'अज्ञात मन की कल्पना' (unconscious phantasy) का यह भी प्रकृत स्वभाव है कि वह इच्छाओं को विलक्षण रूप मे प्रस्तुत करना चाहती है।

स्वप्न का प्रयोजन :—स्वप्न के स्वरूप तथा कार्य-पद्धति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने के पश्चात् अब प्रश्न यह उठता है कि स्वप्न का प्रयोजन क्या है? क्या स्वप्न एक निरर्थक मानसिक क्रिया है, अथवा जीवन में उसका कुछ उपयोग भी है? इस बात पर प्रकाश डालना आवश्यक है। फ्रायड के दृष्टिकोण से स्वप्न एक आवश्यक मानसिक क्रिया है। स्वप्न के द्वारा हमारी अतृप्त, बहिष्कृत तथा दमन की हुई इच्छाओं का समाधान होता है। जब कभी जीवन के किसी काल मे —बाल्यावस्था या युवावस्था मे—हम किसी प्रकृत इच्छा का

दमन करते हैं, वह इच्छा नष्ट अथवा लुप्त नहीं हो जाती; वह हमारे अज्ञात मन का विषय बन जाती है और पौराणिक टीटन्स (legendary Titans) नाईं अभिव्यक्ति के लिये बल लगाती रहती है। जब इन इच्छाओं की स्वप्न-रूप मे अभिव्यक्ति हो जाती है तो स्वप्नद्रष्टा एक प्रकार की शान्ति का अनुभव करता है। इच्छाओं की तुष्टि परोक्ष रूप मे होती है, इस कारण फ्रायड के शब्दों मे इसे 'स्थानापन्न तृप्ति' (*substitutive gratification*) कहते हैं। स्वप्न देखने के पश्चात् हम अपने को हलका अनुभव करते हैं, और स्वप्न के ही कारण हमारी निद्रा मे विक्षेप नहीं पड़ता। ऐडलर के अनुसार स्वप्न मे वे सभी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं जिन्हें हम जागृत अवस्था मे नहीं पा सकते। इस प्रकार स्वप्न हमारी अतृप्त आत्म-स्थापन (self-assertion) की वृत्ति को तृप्त करता है।

स्वप्न-विश्लेषण की विधि :—सामान्यतः स्वप्न का विश्लेषण निम्नलिखित आधार पर किया जा सकता है :—

१. या तो स्वप्नद्रष्टा से हम स्वप्न का वर्णन उसी क्रमानुसार सुनाने को कहें, जिस क्रम से उसने उसे देखा हो : "एक निर्जन पहाड़ी स्थान है। दो युवतियाँ चली जा रही हैं। चट्टान के दाहिनी ओर एक पहाड़ी सोता चट्टानों को काटता हुआ बह रहा है। सहसा उन युवतियों मे से एक का पैर फिसला और वह पानी मे जा गिरी।"

२. या मनःसमीक्षक वर्णित घटनाओं मे से कोई एक विशिष्ट घटना चुने और उसके आधार पर विश्लेषण प्रारम्भ करे। जैसे, ऊपर के स्वप्न मे से वह केवल यह घटना ध्यान मे रख ले कि "युवती का पैर फिसला और वह पानी मे गिर पड़ी।" अधिकतर मनःसमीक्षक जिस घटना को प्रमुख समझता है, वह स्वप्नद्रष्टा के जीवन से विशेष संबंधित होती है।

३. या मनःसमीक्षक स्वप्नद्रष्टा से पहले दिन की किसी ऐसी घटना का वर्णन करने को कहे जिसे वह स्वप्न से संबंधित समझता है। इसमे

मन:समीक्षक का ध्यान इस पर नहीं रहता कि स्वप्न मे क्या देखा गया है।

४. या मन:समीक्षक स्वप्नद्रष्टा पर किसी प्रकार की रोक न रक्खे। अपनी इच्छानुसार जिस संबंध मे वह जो चाहे बात करे। यह बात अधिकतर उस अवस्था मे की जाती है जब स्वप्नद्रष्टा स्वप्न-विवेचन की रीति से भली भाँति परिचित रहता है।

'स्वप्न-क्रिया'(*dream-work*) 'स्वप्न-विवेचन' (*dream-interpretation*) के विपरीत है। स्वप्न-क्रिया मे तो हम यह अध्ययन करते हैं कि किस प्रकार स्वप्न का अव्यक्त अंश(latent thoughts)परिवर्तित होकर व्यक्त अंश(manifest contents)मे प्रकट होता है। 'स्वप्न-विवेचन'(dream interpretation) मे हम वर्णित स्वप्न से वास्तविक तत्व, अर्थात् अव्यक्त अंश पर पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। यही स्वप्न-विश्लेषण की विशेषता है।

फ्रायड की दृष्टि से स्वप्न-विश्लेषण की दो प्रमुख विधियाँ हैं:—

१. अबाध मन: आयोजन (*free-association*) विधि मे समीक्षक स्वप्नद्रष्टा से स्वप्न सुनने के बाद आग्रह करता है कि स्वप्न से संबद्ध या असंबद्ध, आवश्यक या अनावश्यक, अतीत की या वर्त्तमान की जो भी बातें उसके मन मे आवें वह उन्हें बेरोक कहता जाय। वर्णित घटनाओं मे से कुछ घटनाएँ स्वप्न को समझने मे विशेष सहायक होंगी और कुछ नहीं। स्वप्न का ठीक-ठीक विश्लेषण करने के बाद स्वप्नद्रष्टा के व्यक्तित्व, आचार-विचार, अभिरुचि और जीवन की बातों का ज्ञान हो जाता है। इस विधि की सफलता बहुत कुछ स्वप्न-समीक्षक की प्रज्ञा (intuition) और विश्लेषणात्मक शक्ति पर अवलंबित है।

२. स्थानापन्न विधि (*cipher method*) की यह विशेषता है कि इसमे स्वप्न-समीक्षक मे विश्लेषणात्मक शक्ति और प्रज्ञा (intuition) का होना आवश्यक नहीं। एक प्रकार से वे व्यर्थ हैं क्योंकि फ्रायड की धारणा है कि स्वप्न मे देखी हुई वस्तुओं का एक निश्चित अर्थ होता है, जैसे, 'अन्त्येष्टि क्रिया' 'सगाई'

को व्यंजित करती है । कौन वस्तु किस वस्तु का प्रतिनिधि है इसकी एक सूची है जिसकी सहायता से हम स्वप्नों का विश्लेषण कर सकते हैं। लेकिन स्वप्न-विवेचन की यह विधि उपयुक्त और वैज्ञानिक नहीं लगती। यदि हम मान लें कि यह विधि उपयुक्त है, और स्वप्नद्रष्टा के व्यक्तित्व पर पूर्ण प्रकाश डालती है, तब यह बात समझ मे नही आती कि वैज्ञानिकों ने स्वप्न-विश्लेषण की क्रिया को एक जटिल समस्या क्यों कहा है । जिस प्रकार शब्द-कोश से शब्दों के अर्थ का पता हम सरलता से लगा लेते हैं, उसी प्रकार इस सूची की सहायता से स्वप्नों का अर्थ भी लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत भेद (individual difference) स्वाभाविक है। यदि दो व्यक्तियों नें स्वप्न मे एक ही वस्तु देखी—जैसे पानी—तो यह संभव नहीं है कि दोनों के लिये पानी का एक ही अर्थ है । वास्तव मे स्वप्न मे देखी हुई घटना या क्रिया किसी निश्चित वस्तु अथवा क्रिया का प्रतीक नहीं है। हरेक वस्तु का अर्थ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिये भिन्न-भिन्न होता है। यहाँ तक कि कभी-कभी एक ही वस्तु का अर्थ एक ही व्यक्ति के लिये भिन्न-भिन्न कालों मे पृथक् होता है। कौन वस्तु किस वस्तु का प्रतीक है, यह स्वप्न-द्रष्टा के स्वभाव पर निर्भर है। इसलिये स्थानापन्न पद्धति (cipher method) स्वप्न-विश्लेषण मे केवल सहयोग देती है। यह स्वप्न की स्वतंत्र प्रणाली नहीं हो सकती। स्वप्न की ठीक-ठीक विवेचना करने के लिये हरेक परिस्थिति मे 'अबाध मनः आयोजन' (free-association) आवश्यक है।

स्वप्न-विवेचम दो दृष्टिकोण से की जा सकती है: एक विश्लेषक (reductive or analytic method) दूसरी संश्लेषक या निर्मायक (synthetic or constructive) । विश्लेषक दृष्टि से स्वप्न की विवेचना करने पर हमे अज्ञात मन के उद्‌गारों का ज्ञान होता है। अज्ञात मन की इच्छाओं का पता लगाना ही विश्लेषण का मुख्य ध्येय रहता है । संश्लेषक या निर्मायक दृष्टि सें स्वप्नदृष्टा की भावी लालसा, इच्छा तथा उसके जीवन के सिद्धान्त जानने और समझनें का प्रयत्न किया जाता है। फ्रायड की

स्वप्न-विवेचना की पहुँच विश्लेषणात्मक है। युंग ने विश्लेषक और संश्लेषक दोनों का समन्वय किया है। यही कारण है कि युंग की स्वप्न-व्याख्या अधिक वैज्ञानिक और ग्राह्य है। इससे स्वप्नद्रष्टा के मन की स्थिति का पूरा ज्ञान हो सकता है। स्वप्न को समझने के लिये विश्लेषणात्मक दृष्टि से भी देखना चाहिये और संश्लेषणात्मक दृष्टि से भी। जब तक स्वप्न-समीक्षक सम्पूर्ण परिस्थिति का ध्यान नहीं रखता वह विश्लेषण नहीं कर सकता।

स्वप्न-विश्लेषण की उपयोगिता—

स्वप्न-विश्लेषण की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि स्वप्नों के उचित विश्लेषण की सहायता से मानसिक रोगों का निवारण सहज ही किया जा सकता है। रोगियों के स्वप्नों का विश्लेषण करके उनके व्यक्तित्व-विच्छेद का कारण समझा जा सकता है। यह बात फ्रायड को रोगियों के उपचार के समय सूझी। फ्रायड ने रोगियों के स्वप्नों को उनकी मानसिक स्थिति समझने का भारी साधन समझा और फलतः स्वप्नों की व्याख्या करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने यह पूर्ण रूप से अनुभव कर लिया कि स्वप्नों की व्याख्या मानसिक रोगों के उपचार के लिये आवश्यक है। इसके कई उदाहरण फ्रायड की पुस्तक 'कलेक्टेड पेपर्स' (*Collected Papers*)और युंग की पुस्तक 'मैन इन सर्च ऑफ सोल'(*Man in Search of Soul*) मे मिलते हैं। विशेषकर स्थिरभ्रम रोग (paranoia) भय (*phobia*) और उन्माद (*hysteria*) से पीड़ित रोगियों के स्वप्नों के विश्लेषण का विस्तृत वर्णन 'कलेक्टेड पेपर्स' (*Collected Papers*) मे है। इस प्रकार औषध (medicine) मे स्वप्नों का अपना पृथक महत्त्व है।

साधारण अवस्था मे भी स्वप्न-विश्लेषण लाभप्रद है। कभी-कभी कमजोर हृदय वाले व्यक्ति भयंकर और विचित्र स्वप्नों को देखकर भयभीत हो उठते हैं। भय उपजाने वाले स्वप्न दो प्रकार के होते हैं: एक वे जिनमे भयदायक वस्तु स्पष्ट रहती है, दूसरे वे जिनमें भाव-प्रधानता होती है। स्वप्नद्रष्टा भाव को नहीं समझता। जब कभी स्वप्न मे इन दोनों का—भयदायक वस्तु और भाव का—मिश्रण होता है तब स्वप्न अत्यधिक भयोत्पादक हो जाता है। कभी स्वप्न मे अपने प्रियजन

की मृत्यु देखकर भय लगता है; कभी अपने प्रिय को धोखा देते हुये देखकर भय लगता है; और कभी स्वप्नावस्था मे ही कोई भावी दुर्घटना सोचकर भी भय होता है। ऐसी परिस्थिति मे यदि स्वप्नद्रष्टा को यह समझा दिया जाय कि स्वप्न मे इच्छाएँ वास्तविक रूप मे प्रकट न होकर विकृत रूप मे प्रकट होती हैं तो उसे बहुत कुछ आश्वासन हो जायगा।

इसके अतिरिक्त स्वप्न-विश्लेषण किसी व्यक्ति की मनोदशा को समझने मे भी सहायक होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व का अध्ययन कई प्रकार से, कई साधनों द्वारा, किया जाता है। उन साधनों में स्वप्न भी एक साधन है। व्यक्तित्व का अध्ययन करने का तात्पर्य अज्ञात मन मे छिपे मूल तत्वों का पता लगाना है। फ्रायड ने यहाँ तक कहा है कि स्वप्न अज्ञात मन मे पहुँचने का प्रथम सोपान है। जोन्स, युंग, ऐडलर तथा स्टेकल के अनुसार भी स्वप्न अज्ञात मन विषयक ज्ञान का एक प्रमुख स्रोत है। यहाँ तक कहा गया है कि 'तुम अपना स्वप्न सुनाओ और मैं बतला दूंगा कि तुम क्या हो'। किसी व्यक्ति-विशेष के स्वप्न-विश्लेषण के आधार पर उसका मानसिक विश्लेषण किया जा सकता है। जिस प्रकार किसी पागल की सांकेतिक चेष्टाओं के विश्लेषण द्वारा उसकी मानसिक अवस्था का अध्ययन किया जा सकता है, उसी प्रकार स्वप्न भी किसी व्यक्ति-विशेष के मनोवैज्ञानिक अध्ययन मे सहायक होता है। यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि स्वप्न मन की किन-किन कार्य-पद्धतियों से संचालित होता है और साथ ही यह कि अज्ञात मन के आधार पर ही हम कहाँ तक यह भी घोषित कर सकते हैं कि कोई भी स्वप्न हास्यास्पद अर्थहीन नहीं। यदि वह हास्यास्पद लगता है तो इसका अर्थ है कि वह गूढ़ है और हमें उसका वास्तविक अर्थ खोज निकालना है।

फ्रायड और युंग के स्वप्न संबंधी मतभेद :—

१. फ्रायड के अनुसार स्वप्न एक ऐसी अनुभूति है जो काम-वृत्ति के दमन से होती है। जो व्यक्ति जीवन के बाल्यकाल, यौवन या प्रौढ़ावस्था मे इस वृत्ति का दमन नहीं करता उसे स्वप्न नहीं आते। यह बात फ्रायड के समर्थक मेजेन्डी (Magendie) ने स्पष्ट कर दी है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे लिखा है "स्वस्थ व्यक्ति

निद्रावस्था मे स्वप्न नहीं देखता, जो व्यक्ति स्वप्न देखता है वह अवश्य किसी मानसिक अथवा शारीरिक रोग का रोगी है"। किन्तु युंग के अनुसार अन्य मानसिक अनुभवों की नाईं स्वप्न भी एक मानसिक अनुभूति है। हम अपनी किसी भी प्रकृत इच्छा का दमन करें, या न करें स्वप्न हमे आ ही सकता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि स्वप्न का संबंध दमन से नहीं है; अभिप्राय इतना ही है कि स्वप्न के लिये दमन आवश्यक नहीं। कुछ स्वप्न दमन के कारण होते हैं और कुछ यों ही। साधारण लोगों के स्वप्न कुछ दमन की हुई इच्छाओं को व्यक्त करते हैं और कुछ मानसिक या जातीय विशेषताओं को। मानसिक रोगों के रोगियों के स्वप्न अधिकतर दमन का ही परिणाम होते हैं। यदि फ्रायड का समर्थन करते हुए यह मान लिया जाय कि स्वप्नों के लिये पहले दमन आवश्यक है तो इसका यह तात्पर्य है कि स्वप्न केवल विक्षिप्तावस्था की ही अनुभूति है। किन्तु यह दृष्टिकोण गलत सिद्ध हुआ है; अनुभव और प्रत्यक्षीकरण इस बात का प्रमाण हैं कि साधारण और स्वस्थ जन भी निद्रावस्था मे स्वप्न देखते हैं।

२. फ्रायड के अनुसार स्वप्न का संबंध केवल काम-वृत्ति से है; युंग ने मानव-स्वभाव का सूक्ष्म अध्ययन किया है और इस प्रकार अन्य प्रकृत इच्छाओं का भी महत्त्व माना है। फलस्वरूप युंग के दृष्टिकोण से स्वप्नों मे केवल काम-वृत्ति की ही छाया नहीं मिलती, बल्कि अन्य वृत्तियों का भी हस्तक्षेप रहता है। इस प्रकार स्वप्नों मे काम-प्रतीक* के अतिरिक्त नैतिक प्रतीक, धार्मिक प्रतीक और मानसिक प्रतीक भी (psychic symbols) मिलते हैं। ऐडलर ने

* प्रतीक उसे कहते हैं, जिसमे एक वस्तु दूसरे का प्रतिनिधि हो। जो वस्तु प्रतीक है, उसका अपना कोई महत्त्व नहीं होता। महत्व उस वस्तु का होता है, जिसका वह प्रतीक है। उदाहरणार्थ, स्वप्न मे पानी देखा गया। यों पानी का कोई महत्व नहीं। इसका महत्व केवल इसीलिये है कि यह हमारे मन की किसी छिपी हुई इच्छा को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार के प्रतीक फ्रायड को स्वप्न मे अनेक मिले और इन्हीं प्रतीकों के आधार पर स्वप्न का उन्होंने विश्लेषण भी किया।

आत्म-स्थापन (self-assertion) की वृत्ति को मानवी विचार-चेष्टाओं का प्रेरक-संचालक माना है। इस कारण उनके लिये स्वप्न मे देखी हुई वस्तुएँ तथा घटनाएँ आत्म-स्थापन की वृत्ति से ही संबंधित हैं।

३. फ्रायड के अनुसार स्वप्न केवल एक बाहरी पहलू (facade) है; युंग के अनुसार वह एक वास्तविक क्रिया है। इसमे हमारी वास्तविक जातीय विशेषताएँ जो सामूहिक अज्ञात (collective unconscious) मन मे भाव-प्रतिमाओं (archetypes) के रूप मे रहती हैं उनका दिग्दर्शन होता है। ये भाव-प्रतिमाएँ क्या हैं और किस प्रकार की हैं इसका उल्लेख हो चुका है।

४. फ्रायड के अनुसार स्वप्न मे अतीत के अनुभवों की अभिव्यक्ति रहती है। विशेषकर उसका संबंध बचपन की घटनाओं से है। भविष्य मे होनेवाली घटनाओं और वर्त्तमान से उसका संबंध नहीं है। फ्रायड की तरह ऐडलर ने भी स्वप्नों का कारण बचपन की घटनाओं मे ही पाया है; किन्तु उनके अनुसार स्वप्न को समझने के लिये बचपन की किसी घटना का अन्वेषण नहीं करना है, बल्कि यह पता लगाना है कि स्वप्नद्रष्टा के जीवन का बहाव किधर को है*। युंग का दृष्टिकोण इन दोनों मनोवैज्ञानिकों से भिन्न है। उनके अनुसार स्वप्न आदेशात्मक होते हैं। कभी वे हमारी मानसिक स्थिति और आवश्यकताओं को व्यक्त करते हैं और कभी भविष्य मे होनेवाली घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। फिर भी युंग और उनके अनुयायियों का यह मत नहीं है कि स्वप्न पर अतीत का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता।

---

* When one thinks of the points of view of the two psychologists, one thinks of two possible ways of studying a river. Freud would go to a specific spot far up the hills and would dogmatically declare "Here originates the mighty river, and its termendous might down hill must here be studied." Adler would rather say "The river begins in these hills over there; but let us study the course of the river now and its forward movements.

५. फ्रायड के अनुसार स्वप्न का सम्बन्ध हमारे व्यक्तिगत अनुभवों से है; युंग के अनुसार स्वप्न का संबंध 'अवैयक्तिक अचेतना' (impersonal unconscious) से भी है। युग ने 'जातीय विशेषता' पर अधिक बल दिया है।

स्वप्न विश्लेषण:—अब प्रश्न यह है कि स्वप्न मे अधिकतर कौन सी वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं और उन वस्तुओं का क्या महत्व होता है ? स्वप्न मे बहुधा जल, पहाड़, रेल, बाग, पेड़ और पौधा दिखाई पड़ते हैं। कभी हम अपने को पहाड़ पर चढ़ते हुए देखते हैं, कभी जल मे तैरते हुए, कभी रेल मे लम्बी यात्रा करते हुए। जल, पहाड़ और रेल-यात्रा के स्वप्न तो बहुत ही साधारण हैं। नित्य किसी न किसी रूप मे हम इन्हें देखा करते हैं। परीक्षा मे सफल या असफल होने, बाग व बगीचे मे विचरण करने के स्वप्न भी साधारण हैं। अब हमे यह देखना है कि स्वप्नद्रष्टा के लिये इनका कहाँ तक महत्व है।

फ्रायड की दृष्टि से जल जन्म का प्रतीक है। इसका प्रमाण हमको पौराणिक कथाओं मे मिलता है और विकासवाद (theory of evolution) मे भी। पौराणिक कथाओं मे लिखा है कि जो स्त्री जल मे डूबते हुए बच्चे को बचाती है, वह बच्चे की सच्ची माँ है। विकासवाद के अनुसार बच्चा जन्म के पहले जल मे रहता है और धरती पर रहने वाले सभी स्तनिन प्राणियों (mammels) की उत्पत्ति जल मे रहनेवाले जानवरों से ही हुई है। पर अन्य समीक्षकों ने जल का दूसरा अर्थ लगाया है। युंग के अनुसार जल जन्म का प्रतीक नहीं; अज्ञात मन का प्रतीक है। जल के विस्तार व निरन्तर अस्थिर प्रवाह मे और अज्ञात मन मे समानता है। अज्ञात मन भी मन के विस्तार मे फैला है और उसकी इच्छाएँ भी निरन्तर बदलती रहती हैं। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति अपने को नदी मे स्नान करते देखता है तो इसका तात्पर्य यही है कि वह अज्ञात मन की निधि को ढूंढ़ने के लिये नदी रूपी मन मे डुबकी लगा रहा है। जब सागर मे उठती ऊँची-ऊँची लहरों को देखता है तो उसका अर्थ यही है कि उसके अन्तस्तल मे घोर संघर्ष चल रहा है। स्टेकल की दृष्टि मे भी जल मानसिक अवस्था का प्रतीक है। अब प्रश्न यह है कि 'जल' क्या सदैव

मानसिक अवस्था का प्रतीक होता है ? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। जल से स्वप्नद्रष्टा का कहाँ तक क्या आशय है यह उसके स्वभाव तथा परिस्थिति पर निर्भर है। यदि कोई व्यक्ति अन्तर्मुखी है तो सम्भवतः 'जल का स्वप्न' उसकी मानसिक अवस्था का द्योतक होगा।

'पहाड़ पर चढ़ने' के स्वप्न का ऐडलर के सिद्धान्त के आधार पर विवेचन करने से पता लगता है कि यह स्वप्न सफलता का द्योतक है। पहाड़ पर चढ़ने का अर्थ है सफलता के सोपान पर चढ़ना। साथ ही यह स्वप्न हमारी चारित्रिक उन्नति का भी द्योतक हो सकता है। इस प्रकार यह स्वप्न सफलता तथा चारित्रिक उन्नति दोनों का ही प्रतीक है। कौन विवेचन किस स्वप्नद्रष्टा को लागू होता है, यह उसके स्वभाव और मानसिक परिस्थिति पर निर्भर है। पैर फिसलने का अर्थ है जीवन मे असफलता पाना, या चारित्रिक पतन होना। जो व्यक्ति घोर संघर्ष के बाद जीवन का ध्येय निर्धारित करने जा रहा है उसके लिए पैर फिसलना असफलता का द्योतक है; कामुक के लिये वह उसकी कामेच्छा का परिचय कराता है। इसके अतिरिक्त वह स्वप्न हमारे अज्ञात मन के नैतिक संघर्ष का भी परिणाम हो सकता है।

'यात्रा' का स्वप्न फ्रायड की दृष्टि से मृत्यु का द्योतक है। नर्सरी मे जब कभी अनाथ बच्चे अपने माता-पिताके विषय मे पूछते हैं, तो उनसे यही कहा जाता है कि उनके माँ-बाप यात्रा के लिये गये हैं। यहाँ 'यात्रा' रूपक के अर्थ मे है। इस प्रतीक का प्रयोग कवि दूसरे लोक को व्यंजित करने के लिये करता है। अन्य मन:समीक्षकों के अनुसार 'यात्रा का स्वप्न' हमारे जीवनके अनिश्चित ध्येय का द्योतक है। जीवन रूपी यात्रा के लिये हम निकले हैं, यह ज्ञात नहीं किस दिशा मे और कहाँ जाना होगा। 'रेलगाड़ी' तथा 'हवाई जहाज' उछलते हुए हृदय के प्रतीक हैं। प्रारम्भ मे हैवलौक एलिस ने भी हवाई जहाज मे उड़ने के स्वप्न का अर्थ हृदय की धड़कन से लगाया; लेकिन इस प्रकार के कई एक स्वप्नों का विश्लेषण करने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'उड़ने के स्वप्न' का संबंध काम-वृत्ति से होता है। हैवलौक एलिस ने फ्रायड की ही

विवेचना की पुष्टि की और फलतः 'साइकॉलोजी ऑफ सेक्स" (*Psychology of Sex*) कई खण्डों मे लिखी गई। लेकिन ऐडलर के अनुसार 'उड़ने का स्वप्न' भी 'सफलता' का ही द्योतक है।

'राजा व रानी' माता पिता के प्रतीक हैं। पौराणिक कथाएँ इसका समर्थन करती हैं। परियों के देशों की कथाएँ इस प्रकार आरम्भ होती हैं 'एक समय एक राजा और एक रानी थी'।

फ्रायड के अनुसार 'कपड़ा' नग्नावस्था का प्रतीक है; स्टेकल की दृष्टि से 'कपड़ा' पितृ-प्रेम को व्यक्त करता है। ऐडलर के अनुसार स्वप्न मे किसी को पूरा कपड़ा न पहने हुए देखने का अर्थ है स्वप्नद्रष्टा का जीवन पूर्ण नहीं है। उसके व्यावसायिक, सामाजिक और वैवाहिक जीवन मे अपूर्णता है।

इस प्रकार से स्वप्न मे देखी हुई वस्तुओं का अर्थ केवल स्वप्नद्रष्टा के स्वभाव व परिस्थिति के आधार पर ही लगाया जा सकता है। इनका निश्चित नियत अर्थ नहीं होता। स्वप्न को समझने का अर्थ है मानव समाज के अन्तर-द्वन्द्व से संबंधित गुत्थियों को समझना। यह स्वप्न की वैज्ञानिक व्याख्या है।

११

मनोविश्लेषण और कला

कला और मनोविज्ञान में अत्यन्त घनिष्ट संबंध है। हरेक कला का एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक आधार होता है। कला-भावना प्रायः तब उठती है जब कलाकार अपने को बाह्य से समेट कर भाव-लोक में विचरण करता है। यह कल्पना-प्रधान है। इसका संबंध मस्तिष्क से उतना नहीं जितना हृदय से है। 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्'।[१] रस ही काव्य है; और रस (भाव) की उत्पत्ति मन की अवस्था पर है। जो सिद्धान्त काव्य का है, वही अन्य प्रकार की कलाओं पर भी लागू होता है। कोई रचना सुन्दर न होने पर भी संवेगात्मक हो सकती है और संवेगात्मक[२] होने के कारण उसकी गणना अच्छी कला-कृतियों में की जा सकती है—यद्यपि सच्ची कला वह है जिसमें सौन्दर्य और संवेग का योग है। आधुनिक युग की विशेषता है कि इसमें कलाकार अपने को किसी नियम में बाँधना नहीं चाहता ; वह केवल कोरे पन्नों पर अपनी कल्पना की गुलाल कहीं शब्दों से खेलता है, कहीं रंगों से, कहीं ध्वनि या गति से, और कहीं मिट्टी, चूने पत्थर से। कलाकार की कल्पना (phantasy) का आधार है उसके अज्ञात मन के भूचाल, तूफान, व्यथा-वेदनाएँ।

---

1. "Speech ensouled by rasa is poetry."

2. Tolstoy points out "Art is a human activity, consisting in this, that one man consciously by means of certain external signs hands on to others feelings he has lived through, and that other people are infectd by these feelings, and also experience them."

कला और अज्ञात मत :—कला का संबंध मन के निचले स्तर से है क्योंकि इसका आधार न तो संवेदना (sensation) है, न स्मृति (memory), न प्रत्यक्षीकरण (perception) और न विचार-विनिमय (thought)। यही कारण है कि जब तक मनोविज्ञान का अध्ययन ज्ञात मन तक सीमित था, कला मनोविज्ञान का विषय न थी। अज्ञात मन के अन्वेषण के साथ मानव-जाति की गूढ़तम क्रिया-चेष्टाओं का अध्ययन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रारंभ हुआ। मनोविश्लेषण की दृष्टि से अज्ञात मन मे संचित भावना-ग्रंथियों से कला संबंधित है। ये ग्रंथियां संघर्ष और दमन के कारण पड़ती हैं। ज्ञात मन का संघर्ष साधारण होता है। चेतना के सतह पर होने के कारण उसके समाधान की कुछ न कुछ युक्ति हम बुद्धिबल द्वारा निकाल लेते हैं। उससे हमारे मन में कोई भावना-ग्रंथि नहीं पड़ती ; यदि कोई उलझन पड़ी भी तो वह ज्ञात मन का भाग न रहकर अज्ञात मन का ही भाग बन जाती है। ज्ञात मन उसे अपने क्षेत्र से हटा देता है, पर इसके विपरीत अज्ञात मन का अन्तर्द्वन्द्व या संवर्ष भीषण होता है। जब कभी इसमे संघर्ष होगा तो भावना-ग्रंथियाँ अवश्य पड़ेंगी। कभी तो भावना-ग्रंथियाँ (complexes) ऐसी अवस्था मे पड़ती हैं जब इच्छाएँ प्रकृत रूप मे रहती हैं; कभी प्रकृत इच्छाओं के उन्नत-परिमार्जित रहते परिस्थिति के कारण पड़ जाती हैं। जब इन भावना-ग्रंथियों की उत्पत्ति इच्छाओं के प्रकृत रूप रहने पर होती हैं तब प्रायः मनुष्य मानसिक रोग की शरण लेता है ; और जब भावना-ग्रंथियों की उत्पत्ति वृत्तियों के उन्नयन के पश्चात् होती हैं तब अधिकतर कला का सृजन होता है। इस प्रकार कुछ परिस्थिति मे अज्ञात मन की इच्छाओं का संघर्ष मनुष्य को कलाकार बनाता है और कुछ परिस्थितियों में असंतोषी तथा विक्षिप्त। यह व्यक्ति-विशेष की मनःस्थिति और स्वभाव पर निर्भर है। हाँ, मनोविश्लेषण के अनुसार यह निर्विवाद है कि हरेक व्यक्ति मे अज्ञात मन की ही इच्छाएँ कलाकार की कल्पना (phantasy) का आधार होती हैं—किसी भी परिस्थिति मे चेतन इच्छाएँ उत्तेजक नहीं हो सकतीं। जब कभी उचित

अवसर मिलता है, अज्ञात मन मे संचित इच्छाएँ कला के रूप में प्रस्फुटित होती हैं। कलाकार का काम अपने भाव-लोक (कल्पना-लोक) मे रमण करना है। अज्ञात मन की इच्छाओं से आक्रान्त होकर वह अपनी भावनाओं से खेलता है।

ये इच्छाएँ क्या हैं? इनका क्या स्वभाव है? किस सीमा तक ये कला का आधार हो सकती हैं, यह समझने के लिये अज्ञात मन के विषय मे भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों का जो कुछ विचार है वह जानना आवश्यक है और इसका उल्लेख हो चुका है। कला-उद्गम और विवेचन के संबंध मे फ्रायड, ऐडलर और युंग के सिद्धान्त विशेष उल्लेखनीय हैं।

फ्रायड का कला-विवेचन :—पिछली शताब्दी तक कला-प्रेमियों का विश्वास था कि कला दैवी अनुभूतियों का फल है। बिना दैवी शक्ति-प्रेरणा के कला का उद्भव नहीं हो सकता। दैवी प्रेरणा से ही कवि कविता करता है और चित्रकार चित्र रंगता है। लेकिन बीसवीं शताब्दी मे 'आधुनिक मनोविज्ञान' (New Psychology) ने कला की नई व्याख्या की। इसके अनुसार 'दैवी अनुभूति' की कोई अलग सत्ता नहीं। यह केवल मूल वृत्ति का विस्फोटन है। यह अन्वेषण सबसे पहले फ्रायड ने ही किया। उन्होंने बताया है कि कला का उद्भव अज्ञात मन मे संचित दबी-घुटी इच्छाओं मे उसी प्रकार निहित रहता है जिस प्रकार कि मनुष्य की धार्मिक भावनाएँ या उसकी विक्षिप्तावस्था की समस्त व्यवहार-चेष्टाएँ। ये इच्छाएँ काम-संबंधी हैं। यदि कला का विश्लेषण किया जाय तो इसका प्रमाण कला के हरेक क्षेत्र मे मिलता है। प्राचीन और मध्यकाल की शिल्प-कला देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार उस युग के शिल्पियों ने अपनी समस्त शक्ति का व्यय केवल स्त्रियों के शारीरिक सौन्दर्य्य को व्यक्त और मूर्त्त करने मे ही किया। इस प्रकार की मूर्त्तियाँ साँची, अमरावती, एलोरा तथा अजन्ता मे विशेष रूप से मिलती हैं। परिस्थितियों से पराजित अपने अज्ञात मन मे घुटी काम वासनाओं के दास शिल्पी ने कला की शरण ली और उसकी वे वासनाएँ मूर्तिमान् हो उठीं। ये पत्थर की मूर्त्तियाँ

शिल्पी के व्यक्तिगत या मानव स्वभाव के काम-वृत्ति की ओर झुकाव को व्यक्त करती हैं। भारतीय चित्रकला मे भी अधिकतर काम-विषयक चित्र मिलते हैं। कृष्ण-विरह-व्यथा चित्रों मे व्यंजित की गयी है। संस्कृत साहित्य मे कालिदास का मेघदूत मानव की काम-वासना-कल्पनाओं (sex phantasy) का ही द्योतक है। यह एक काल्पनिक शब्दचित्र है जिसमे कल्पना का विषय है प्रेमिका का विरह। प्रकृत प्रेम मे रंगे कवियों के काव्य मे, 'सूर' की कृष्ण-भक्ति मे, विह्वल गोपियों के भावोन्मेष मे, सूफी कवियों के ज्ञान-गीतों मे तथा मीरा के भजन-भाव मे दमन की हुई काम-वृत्ति की ही अभिव्यंजना होती है। यह बात प्राचीन पूर्वीय कला मे ही नहीं, पश्चिमी कला मे भी मिलती है। इस प्रकार प्रमाण के आधार पर फ्रायड ने 'काम-वृत्ति दमन के सिद्धान्त' (theory of repression of sex) को कला-क्षेत्र मे भी लागू किया। उनके अनुसार दमन की हुई काम-वृत्ति ही समस्त कलाओं का कारण है। इस पर प्रश्न यह उठता है कि अबोध प्रकृति-प्रेम तथा ईश्वर-भक्ति-प्रेम का काम-वृत्ति से कैसे संबंध हो सकता है? इस आक्षेप के बचाव मे, जैसा उन्होंने अपनी पिछली कृतियों मे लिखा है, यही कहा जा सकता है कि उन्होंने काम (sex) शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ मे किया है। 'काम' (sex) शब्द मे सब प्रकार का निस्वार्थ अबोध भाव—सहानुभूति, आकर्षण तथा दया—निहित है। पर वास्तव मे उन्होंने 'काम' (sex) शब्द का प्रयोग सीमित अर्थ मे किया है; यह उनके 'स्वप्न-विवेचन' (dream-interpretation) और विक्षिप्त व्यक्तियों के विवरण-विवेचन देखने से स्पष्ट हो जाता है। फ्रायड के समर्थक औटोरैन्क ने भी कला पर गूढ़ विचार किया है।

कला और उन्नयन (*sublimation in art*) :—इस प्रकार यह देखा गया कि मनोविश्लेषण के दृष्टिकोण से कला मे काम-वृत्ति तथा उसके दमन का क्या स्थान है। किन्तु वस्तुतः किसी व्यक्ति को कलाकार बनने के लिये केवल काम-वृत्ति का दमन पर्याप्त नहीं होता। जब तक काम-वृत्ति के दमन के पूर्व व्यक्ति की वृत्तियों-भावनाओं का उन्नयन नहीं किया रहता वह

कलाकार नहीं हो सकता। कामशक्ति का प्रवाह कला-दिशा मे नहीं हो सकता। अज्ञात मन की यह उन्नयन की कार्य-पद्धति (mechanism of sublimation) कला के लिये विशेष महत्त्व की है। इस क्रिया की हमे चेतना नहीं रहती फिर भी यह आपोआप चलती रहती है। इसके कारण हमारी प्रकृत इच्छाएँ परिमार्जित हो जाती हैं। इसलिये फ्रायड के अनुसार कला हमारी 'उन्नत काम-शक्ति' (sublimated libido) के जल से सिंचा हुआ पौधा है। दूसरे शब्दों मे, कला मे सदैव अज्ञात मन की उन्नयन की कार्य-पद्धति विशेष सक्रिय रहती है और कि वह अपनी सम्भावनाओं की सीमा छू चुकी है। व्हाइटहेड ने भी फ्रायड का समर्थन करते हुए कहा है कि कला हमारी उन्नत प्रकृत इंच्छाओं (sublimated primitive desires) की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है और उनके समाधानों का साधन भी है।[1] जोन्स के अनुसार अज्ञात मन की यह कार्य-पद्धति शैशवावस्था मे विशेषरूप से काम करती है। सम्भवतः शिक्षा के लिये यह सबसे आवश्यक कार्य-पद्धति है।[2] फ्रायड का कथन है कि यह पद्धति कला के लिये ही नहीं हरेक आध्यात्मिक धार्मिक और नैतिक क्रिया के लिये उत्तरदायी है।[3]

---

1 "Art at its best makes for the sublimated expression of the basic urges of the artist, and permits of exalted vicarious gratification of the primitive desires of the patron."

2 "Any sublimation that occurs in adult life is but a feeble copy of the enormous extent to which it goes on during childhood especially during the first half of this, in fact the weaning of the child is external, and social interest and consideration which is the essence of sublimation is perhaps the most important single process of education."

3 "Sublimation of instinct is an especially conspicuous feature of cultural evolution ; this is that makes it possible for the higher mental operations, scientific, artistic, ideological activities to play such an important part in civilized life."

यह बात कि कला प्रकृत इच्छाओं के समाधान का साधन है, मनोविज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्त्व की है। बात यह है कि किसी भी परिस्थिति मे मूल प्रकृत इच्छाओं का समाधान करना ही है। यदि इनका समाधान अपर्याप्त उन्नयन के कारण कला-रूप मे न हो सका तो सम्भव है कि ये किसी भी क्षण ऐसे अनुचित प्रकार और रूप मे प्रकट हों जो व्यक्तित्व-विकास के लिये हानिकारक है। प्रकृत इच्छाओं को दमन करके हम उनसे किसी प्रकार भी छुटकारा नहीं पा सकते। इच्छाओं का बहिष्कार ज्ञात मन से भले ही हो जाय और इस प्रकार जीवन मे संतुलन लाने का उद्यम किया जाय, किन्तु ये इच्छाएँ अज्ञात मन से नहीं निकाली जा सकतीं। अनुभव की स्मृति-रेखा अज्ञात मन मे पड़ जाती है जिसे मेटना सम्भव नहीं और जो पीछे से हमारे क्रिया-व्यापार को प्रभावित करती रहती है। सच तो यह है कि इच्छाएँ व्यक्तित्व का एक हिस्सा ही बन जाती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि दमन की हुई प्रकृत इच्छाओं का प्रदर्शन अवश्य होगा, चाहे वह पागलों-सा व्यवहार के रूप मे हो या स्वप्न और कला के रूप मे। सामाजिक और व्यक्तिगत दृष्टि से 'कला' स्वप्न और विक्षिप्तावस्था की तरह निरर्थक और वर्जित नहीं है। यह तो सभ्यता की निशानी है। शिक्षा मे कला-सर्जन के लिये प्रोत्साहन मिलता है। यही कारण है कि वृत्तियों के प्रदर्शन के लिये कला की शरण लेना सबसे श्रेयस्कर है। मनोविश्लेषण की दृष्टि से कला का मुख्य प्रयोजन एक ओर हमारी अतृप्त मूल वृत्तियों का समाधान करना और दूसरी ओर जीवन को पूर्ण बनाने की स्वाभाविक इच्छा को पूरी करना है। यह प्रयोजन जीवन और समाज के लिये अत्यन्त आवश्यक और महत्व का है; कला द्वारा इसकी सिद्धि होती है। इसी कारण कला की इतनी प्रतिष्ठा और गरिमा है।

फ्रायड के इस सिद्धान्त का विशेष खंडन हुआ कि कला का उद्गम दमन की हुई मूल वृत्ति मे उसी प्रकार निहित है जिस प्रकार विक्षिप्तावस्था का। कलाकार और विक्षिप्त व्यक्ति की मनोदशा मे अंतर है। एक का जीवन

एकाकी रहते व्यवस्थित और संतुलित है और दूसरे का क्रम-नियमहीन। किन्तु वास्तव में विश्लेषण की दृष्टि से इनमें काफ़ी समानता है। एक अपनी अद्भुत कल्पना-शृंखला में फँसा रहता है, और दूसरा नाना प्रकार के भ्रम (delusion), भ्रान्ति (hallucination) और विचार में। संघर्ष और दमन की क्रिया निरन्तर दोनों में ही चलती रहती है। केवल परिणाम में ही भिन्नता है।

कलाकार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उसके मन में भीषण संघर्ष चला करता है। एक ओर उसके जीवन के ऊँचे-ऊँचे आदर्श होते हैं और दूसरी ओर उसकी प्रकृत इच्छाएँ। उसके आगे सदा यह प्रश्न रहता है कि वह दोनों में से किसे चुने और किसे चुनौती दे। इस खींचातानी में प्रायः अंह (ego) अपनी शक्ति खोया करता है और इदम् का शासन-अधिकार चलता है और कलाकार दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों—'वास्तविकता' और 'ऐन्द्रिक वासना-तृप्ति' (reality and pleasure principle)*—में एक विलक्षण रीति से समझौता लाता है। प्रारंभ में

* 'वास्तविकता' और 'ऐन्द्रिक वासना-तृप्ति' मनोविश्लेषण के अनुसार मन-संबंधी प्रमुख सिद्धान्त हैं जिनसे हमारी समस्त मानसिक क्रियाएँ, व्यापार-व्यवहार संचालित होते हैं। ज्ञात मन और उससे संबंधित क्रिया-व्यापार 'वास्तविकता सिद्धान्त' (reality principle) से संचालित होता है और अज्ञात मन का क्रिया-व्यापार 'ऐन्द्रिक वासना तृप्ति सिद्धान्त' से। 'वास्तविकता सिद्धान्त' से संचालित होने का अभिप्राय है किसी काम को करने के पहले यह सोच-विचार कर लेना कि वह रूढ़ि-परम्परा अथवा सामाजिक नियमों के प्रतिकूल तो नहीं है? यही कारण है कि ज्ञात मन की क्रियाएँ विचारशील होती हैं और तर्क और नीति की कसौटी पर खरी उतरती हैं। 'ऐन्द्रिक वासना-तृप्ति सिद्धान्त' इसके विपरीत है। इसका अभिप्राय प्रकृत इच्छाओं की तुष्टि करना है। इससे सचालित होने की वजह से अज्ञात मन को उचित-अनुचित, नीति-अनीति का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। इस प्रकार मानव के मन के दो भाग दो विरोधी सिद्धान्तों से संचालित होते हैं। फलतः आंतरिक जगत् में संघर्ष होता है। इस संघर्ष में किसकी विजय होती है इसी पर मानव का चरित्र तथा व्यक्तित्व निर्भर है।

वह अपने को जीवन और जगत् की वास्तविकताओं से समेट लेता है और कल्पना-लोक मे निराधार कल्पनाओं (phantesy) के सहारे अपनी प्रकृत इच्छाओं का समाधान करता है। किन्तु अनुभव उसे वास्तविक जगत् मे खींच लाते हैं और वह बुद्धि के योग से कल्पनाओं को वास्तविकता का रूप देता है। यही कारण है कि कलाकार की कुछ कृतियों मे निरी कल्पना मिलती है और कुछ से लगता है कि उसका वास्तविक जगत् से कुछ न कुछ संबंध है।

कवि के पास भावों की अभिव्यक्ति के लिये शब्द होते हैं, चित्रकार के पास तूलिका और रंग, शिल्पी के पास मिट्टी। इन सबके सहारे कलाकार अपनी अव्यक्त इच्छाओं को अनजाने (unconsciously) व्यक्त करता है। इच्छाएँ इस प्रकार अलंकृत रहती हैं कि उनका वास्तविक रूप समझना सरल नहीं रहता।

कला और स्वप्न :—मनोविश्लेषण की दृष्टि से कला और स्वप्न का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि इनमे एक ही वृत्ति सक्रिय रहती है और इसका दमन ही इनका मूल कारण है। दोनों मे एक सी ही मानसिक कार्य-पद्धतियाँ (mental mechanisms) भी काम करती हैं और ये पद्धतियाँ संक्षेपण, विस्थापन, प्रतीकीकरण की हैं। जिस प्रकार कल्पना के पंखों पर उड़नेवाला कलाकार का संबंध बाह्य जगत् से नहीं रहता, उसी प्रकार स्वप्नद्रष्टा भी बाह्य जगत् मे नहीं अपने स्वप्न जगत् मे ही रहता है। कला-सृजन के बाद कलाकार को एक प्रकार का मानसिक संतोष तथा शांति मिलती है ; स्वप्न-दर्शन के बाद स्वप्नद्रष्टा को भी। कारण यह है कि इन क्रियाओं द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रकृत इच्छाएँ अभिव्यक्ति पाती हैं। इसलिये फ्रायड के शब्दों मे ये 'स्थानापन्न तृप्ति' (substitutive gratifications) हैं। ये अज्ञात मन की इच्छाओं के प्रदर्शन और तृप्ति के लिये अच्छे माध्यम हैं। बात यह है कि ज्ञात मन तो शासन मे है; जैसी शिक्षा चाहे उसे दी जा सकती है। यदि वह असामाजिक है तो सामाजिक बन सकता है, अनैतिक है तो नैतिक। किन्तु अज्ञात मन पर अधिकार नहीं

चलता। अज्ञात मन की इच्छाएँ स्वतंत्र रहती हैं और स्वभाव मे कैसी भी हो सकती हैं।

इस प्रकार कला और स्वप्न मे समानता है। अंतर इतना ही है कि कला जागृतावस्था का अनुभव है और स्वप्न निद्रावस्था का; कला उच्च कोटि की क्रिया है और स्वप्न व्यर्थ की। कला मे वृत्तियाँ परिष्कृत और परिमार्जित (sublimated) होकर प्रकट होती हैं और स्वप्न मे विकृत (distorted) रूप मे।

संक्षेप मे मनोविश्लेषण के कला-संबंधी सिद्धान्त मे निम्न बातें प्रमुख हैं :—

१. कला का उद्भव काम-वृत्ति मे है।

२. काम-वृत्ति के दमन के बिना कला की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

३. कला के लिये काम-वृत्ति का उन्नयन (sublimation) आवश्यक है।

४. कला व्यक्तिगत समस्याओं से संबंधित है।

पर फ्रायड के कला के सिद्धान्त पर आक्षेप हुआ। आक्षेप का विषय था कि कला हरेक स्थिति में सदैव दमन और संघर्ष का परिणाम नहीं हो सकती। प्राय: विश्लेषण करने पर कलाकार का जीवन संतुलित और व्यवस्थित मिलता है। साथ ही यह कहना अनुचित है कि कला का एक मात्र संबंध व्यक्तिगत समस्याओं से है। अधिकतर इसमे मानव स्वभाव की सहज-साधारण विशेषताएँ व्यक्त की जाती हैं। इसके अतिरिक्त कला पूर्णत: काम-वृत्ति के ही उन्नयन का परिणाम नहीं है। मानव मे और भी वृत्तियाँ हैं और वे कलारूप मे अभिव्यक्ति पाती हैं।

ऐडलर का कला-विवेचन :—वैयक्तिक मनोविज्ञान (*Individual psychology*) के प्रवर्त्तक ऐडलर के मत से कला कायिक दोषों (organic defects) के निवारण का साधन है। 'कायिक दोष' से अभिप्राय शरीर के किसी अंग के दूषित होने से है। 'कायिक अभाव-दोष' (organic inferiority) ही हममे कलाकार बनने की शक्ति लाता है। उदाहरण

के लिये मोजार्ट, सूरदास, जायसी, डीमौस्थनीज इत्यादि हैं। मोजार्ट बहरे थे, पर आगे जाकर प्रसिद्ध गायक हुए; सूरदास अंधे थे, पर प्रसिद्ध कवि हुए; महाकवि जायसी कुरूप और काने; डिमौस्थनीज आरंभ में हकलाते थे, पर प्रसिद्ध वक्ता हुए। कारण यह है कि मनुष्य में आत्म-स्थापन (self-assertion) की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। उसकी पूर्ति के लिये वह साधन खोजता है और किसी प्रकार कुछ न कुछ उपाय खोज निकालता है। आरंभ में तो यह कायिक दोष हीनत्व-ग्रंथि (inferiority-complex) बनाता है, पर आत्म-स्थापन की इच्छा-बल से प्रेरित होने पर वह अपनी कमी को पूरी करने की चेष्टा करता है। फलतः ऐसी दशा में 'कला' की सर्जना होती है। इस प्रकार कला दोषयुक्त अंगों की पूरक-क्रिया (compensatory activity) कही जा सकती है। इस सिद्धान्त के समर्थन में भी फ्रायड के कला संबंधी सिद्धान्त की तरह हमें प्रमाण पश्चिमी और भारतीय कला में मिलते हैं, विशेषकर पश्चिमी कला में। भारतीय कला में बौद्धकालीन कृतियों में भगवान बुद्ध की समाधी की मुद्रा या महावीर की सौम्य मूर्ति परिमार्जित रूप में आत्म-स्थापन वृत्ति को प्रकट करती हैं—मानो बुद्ध और महावीर आत्मबोध की चरम सीमा को पहुँचे हैं—वह अवस्था जब सत्य, शिव और सुन्दरम् की प्रकाश-रेखा शेष रह जाती है। यह आत्म-स्थापन की वृत्ति के विकास की वह आदर्श सीमा-अवस्था है जब यह वृत्ति अहं से निवृत्त हो आत्म-प्रकाशन (self-realization) का रूप ले लेती है।

परन्तु ऐडलर के कला-सिद्धान्त पर भी आक्षेप किया गया :—

१. यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक कलाकार में कोई कायिक दोष हो ही।[1]

---

1 Freud remarks, "Adler is right in maintaining that a person's realization of organic inferiority in himself acts as a spur upon an active mental life and produces by over-compensation a higher degree of ability. But it would be altogether

२. कला का संबंध शरीर से उतना नहीं जितना मन से है। ऐडलर का कला का सिद्धान्त पूर्णतः 'कायिक अभाव-दोष' (organic-inferiority) पर ही निर्भर है जब कि वास्तव मे कला 'कायिक अभाव-दोष' का फल नहीं बल्कि मन के आवेग का परिणाम है।
३. आत्म-स्थापन की वृत्ति के अतिरिक्त अन्य वृत्तियाँ भी कला का कारण हो सकती हैं।

इस प्रकार मनोविश्लेषण के कलासंबंधी 'काम-सिद्धान्त' (theory of sex in art) की तरह वैयक्तिक मनोविज्ञान (Indiv:dual psychology) का 'कायिक अभाव-दोष-सिद्धान्त' (theory of organic inferiority in art) भी असफल रहा।

युंग का कला-विवेचन :—वास्तव मे, जैसा विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (*Analytical psychology*) के प्रवर्तक युंग की धारणा है, कला मे मानव की सभी मनोवृत्तियाँ व्यक्त होती हैं। वृत्तियाँ विभिन्न हैं। ये धर्म, समाज, आत्म-स्थापन, काम-विषयक आदि की हैं। सभी काल और सभी देश की कला मे इनका मिश्र रूप मिलता है। उदाहरण के लिये भारतीय कला है। इसमे मानव की सब वृत्तियाँ-प्रवृत्तियाँ व्यक्त मिलती हैं। कला मे 'काम' (sex) और 'आत्म-स्थापन' की वृत्तियों का कहाँ तक प्रमाण मिलता है, इसका विवेचन किया जा चुका है। उसी प्रकार धर्म-वृत्ति की भी कला मे महत्ता है। इसकी अभिव्यक्ति भारतीय कला मे विशेष रूप से है। एक प्रकार से भारतीय कला का धर्म से विच्छेद संभव ही नहीं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति वर्ण-परिचय

---

an exaggeration if following Adler's lead, we tried to prove that every fine achievement is conditioned by an original organic inferiority. Not all artists are handicapped with bad eye-sight, nor do all orators originally stammer. There are many instances of great achievements springing from superior organic endowments."

बिना ही साहित्य के अध्ययन का प्रयत्न करे और उसका प्रयत्न निष्फल जाय, वही बात उस व्यक्ति के साथ होती है जो धर्म का ज्ञान किये बिना भारतीय कला समझने की चेष्टा करे। इसका प्रमाण काव्य, चित्र, शिल्प इत्यादि सभी मे मिलता है।

युंग की नवीनता एक और दृष्टि से भी है। उन्होंने कला के विश्लेषण मे एक नई धारणा की खोज की। यह धारणा 'रचनात्मक वृत्ति' (creative urge) की है। युंग के अनुसार रचनात्मक वृत्ति के कारण ही किसी व्यक्ति को कला-सर्जना की प्रेरणा मिलती है। यह वृत्ति हरेक व्यक्ति मे होती है। कलाकार की विशेषता इतनी ही है कि उसमे इसका विकास विशेष हो जाता है। प्रश्न उठ सकता है कि युंग की यह धारणा किस प्रकार नवीन है और कैसे इसकी सत्ता फ्रायड की काम-वृत्ति की धारणा से पृथक् स्थापित की जा सकती है ? बात यह है कि फ्रायड की काम-वृत्ति तो केवल एक शारीरिक माँग (biological urge) है। किन्तु युंग की रचनात्मक वृत्ति का ध्येय दूसरा है। इससे प्रेरित होने पर जाति को कायम रखने के लिये उत्पत्ति (creation) नहीं की जाती, यह तो मानसिक भूख को बुझाती है। नई-नई कल्पनाओं (phantasies) के द्वारा कला का सृजन कराती है। यह कहना अनुचित होगा कि यह रचनात्मक वृत्ति (creative urge) फ्रायड की काम-वृत्ति का ही रूप है। हमारी अतृप्त काम इच्छाएँ कला का विषय हो सकती हैं, पर प्रेरक रूप मे रचनात्मक वृत्ति का होना आवश्यक है जो चित्रकार को चित्र बनाने के लिये और कवि को कविता के लिये बाध्य करे।

युंग के अनुसार हमारे 'सामूहिक अज्ञात मन' (collective unconscious) मे सर्जना का बीज बोया हुआ है और यही बीज कला के रूप मे प्रस्फुटित होता है। मन का यह भाग कला का केन्द्र है और इसमे जो प्रतिमाएँ (archetypes) हैं वे कला के मुख्य विषय-भाव हैं। इसमे रचना की शक्ति (potentiality) है। रचनात्मक वृत्ति के उत्तेजित होने पर जो भाव-प्रतिमा (archetype) अधिक विकसित होती है उसके आधार

पर कला की सर्जना हो चलती है। इन भाव-प्रतिमाओं की क्या विशेषताएँ हैं इसका उल्लेख किया जा चुका है।

कला-विवेचन मे इस प्रकार युंग ने 'सामूहिक मन' की प्रभुता दिखाई है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि कला का संबंध व्यक्तिगत जीवन से बिल्कुल नहीं है। कला का संबंध व्यक्तिगत अज्ञात मन (personal unconscious) से है। जिस कला का संबंध सामूहिक अज्ञात मन से है वह मानव स्वभाव तथा मानव-जाति की भावना-ग्रंथियों (complexes) को व्यक्त करती है; और वह जो व्यक्तिगत अज्ञात मन (personal unconscious) से संबंधित है, कलाकार की परिस्थिति और स्वभाव से बंधी रहती है। यदि कलाकार को प्रेम मे निराशा मिली तो उसकी रचनाओं मे दलित काम-वासना की गूंज रहेगी; यदि आत्म-स्थापन की वृत्ति सबल रही तो वीर रस की कविता निकलेगी। बात यह है कि जिस वृत्ति का जीवन मे अधिक विकास या दमन हुआ रहेगा, उसी की अभिव्यक्ति कला मे अधिकतर मिलेगी।

परन्तु युंग के दृष्टिकोण से कला मे व्यक्तिगत अनुभव का कम महत्त्व है। उनके अनुसार अच्छी भली कला वही है जिसमे वंश-परम्परागत विशेषताएँ या जातीय गुण समाये हों, अर्थात् भाव-प्रतिमाओं का प्रदर्शन हो। इस कारण से युंग ने कला के संबंध मे 'सामूहिक अज्ञात मन' पर 'व्यक्तिगत अज्ञात मन' से अधिक बल दिया है।

फ्रायड और युंग के कला-विवेचन मे भेद :—

१. फ्रायड के अनुसार कला मे केवल काम-वृत्ति की अभिव्यक्ति होती है; युंग के अनुसार कला मे और भी वृत्तियाँ व्यक्त मिलती हैं।

२. जब तक काम-वृत्ति का दमन नहीं होता, फ्रायड के अनुसार कोई व्यक्ति कलाकार नहीं हो सकता; युंग के अनुसार 'दमन' कला की रचना के लिये नितान्त आवश्यक नहीं है। सामूहिक अज्ञात (collective unconscious) मन की भाव-प्रतिमाओं (archetypes) के आधार पर कला की रचना

हो सकती है। यही नहीं इनकी इसमे प्रधानता रहती है। कला प्रायः मानव-विशेषता का मुक्त प्रदर्शन है।

३. फ्रायड के अनुसार कला की प्रेरक-उत्तेजक 'उन्नत काम-शक्ति' (sublimated libido) होती है; युंग के अनुसार रचनात्मक वृत्ति-शक्ति (creative energy) यह कार्य करती है। साधारणतः यह रचनात्मक वृत्ति हरेक व्यक्ति मे होती है।

४. फ्रायड के अनुसार कला केवल व्यक्तिगत समस्याओं से संबंधित है; युंग के अनुसार कला का संबंध जातीय विशेषताओं से है। हमारे मे जो जातीय (racial) जन्मजात (inherited) पुरुष (animus) और स्त्री (anima) की भाव-प्रतिमाएँ हैं वे ही कला मे व्यक्त होती हैं। जब पुरुष मे 'स्त्री-भाव-प्रतिमा' प्रधान होती है उसमे कामोद्दीपन होता है और वह विरह के गीत की रचना करता है; 'पुरुष-भाव-प्रतिमा' (animus) की प्रधानता होने पर कला मे आत्म-प्रकाशन का भाव अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार कला व्यक्तिगत अनुभव के स्थान पर जातीय गुणों को ही दर्शाती है।

सैद्धान्तिक भेद रहते प्रत्येक कला-कृति का, भले ही वह कैसी गूढ़ और रहस्यमय हो, विश्लेषण करके कुछ-कुछ अर्थ निकाला जा सकता है। कला अन्तर्द्वन्द्व की द्योतक है; मानव स्वभाव तथा मानसिक गुत्थियों का प्रतीक है। इस प्रकार कलाकार अपनी रचनाओं मे केवल अपना मानसिक अन्तर्द्वन्द्व नहीं व्यक्त करता, वह उन दुर्बलताओं तथा भावना-ग्रंथियों (complexes) की ओर भी संकेत करता है जो मानव स्वभाव के सहज-साधारण अंग और लक्षण हैं। मनोविज्ञान की दृष्टि से ये कला के मूल और महत्त्व के मापदण्ड हैं।

१२

मनोविश्लेषण और धर्म

सामान्य रूप से धार्मिक सिद्धान्तों मे भेद होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति का स्वभावत: कुछ न कुछ झुकाव ईश्वर, धर्म, नीति, और समाज की ओर होता ही है; भले ही वह मूर्ति-पूजक न हो, किसी न किसी रूप मे साकार नहीं तो निराकार शक्ति पर उसका ध्यान अवश्य जाता है। धर्म-सम्बन्धी कुछ न कुछ विचार परोक्ष-अपरोक्ष रूप से उसके मन मे मँडराया करता है। ईश्वर तथा धर्म के प्रति श्रद्धा-भाव क्योंकर हुआ, इसका मनोवैज्ञानिक कारण जानने के लिये हमे प्राचीन काल के मानव, उसकी स्थिति और समाज पर प्रकाश डालना होगा।

धर्म-उत्पत्ति के मनोवैज्ञानिक कारण:—धर्म की उत्पत्ति किस प्रकार हुई इस विषय पर मनोविश्लेषण की भिन्न-भिन्न शाखाओं के भिन्न-भिन्न कथन हैं। फ्रायड के अनुसार ईश्वर-विश्वास का मूल और प्रमुख कारण बचपन से ही माता-पिता के आश्रय मे रहना है। आरम्भ मे बच्चे माता-पिता पर सर्वथा आश्रित रहते हैं, आगे जाकर उनकी अवलम्ब खोजने-पाने की भावना का स्थानान्तरण (transference) ईश्वर मे हो जाता है। इस प्रकार माता-पिता पर आश्रित रहने की भावना का बना रहना (continuance) धर्म है। जैसे माता-पिता के प्रति श्रद्धा और प्रेम-भाव मे विशेष खिंचाव (intensity) और घनिष्टता (intimacy) होती है वैसे ही ईश्वर के प्रति भी। बालक बड़ा होने पर माता-पिता के बन्धन से निकलकर ईश्वर के बन्धन मे अपने को बाँध लेता है। इस प्रकार फ्रायड के कथनानुसार ईश्वर पिता का

प्रतिनिधि है। पिता के प्रति अधिक खिंचाव ही धर्म की उत्पत्ति का कारण है। मनुष्य-जाति के अभ्युदय काल मे (childhood of the racc) जंगली जातियों ने अपने को पूर्णतया निःसहाय पाया। फलतः उनका विश्वास एक अपने से अधिक शक्तिशाली सत्ता मे पैदा हुआ। यह बात फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'टोटम और टैबू' (*Totem and Taboo*) मे स्पष्ट की है। फ्रायड के समर्थक औटोरैंक का भी यही विश्वास था कि धर्म की उत्पत्ति 'आश्रय-भावना' मे है।

वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual psychology) के अनुसार धर्म की उत्पत्ति भय की भावना मे है। यह भाव हीनत्व-ग्रंथि से उठती है। इस ग्रंथि के होने से स्वभावतः मनुष्य अपने को छोटा (हीन) समझने लगता है। इसी कारण मानव-समाज मे यह भावना जाग्रत हुई कि संसार मे ऐसी भी एक विभूति है जो महान् शक्तिशाली है, जिसने जगत् का निर्माण किया है और जो उसका संचालक भी है। ईश्वर की सत्ता मे लोगों का विश्वास पैदा होने का यह एक मनोवैज्ञानिक कारण है। प्राचीन काल मे तो यह बात विशेषरूप से थी। असभ्य जाति के लोग ईश्वर-पूजन इसी भय से करते थे कि वे उनके अनुग्रह के भागी हों और कोप से बचे रहें।

युंग के अनुसार धर्म एक स्वाभाविक अनुभूति है। इसकी उत्पत्ति का कारण बच्चों का माता-पिता पर आश्रित रहना नहीं है; न ही हीनत्व ग्रंथि इसका कारण है। यह तो हमारे अनुभव का साधारण विषय है। इसका मूल सामूहिक अज्ञात मन (collective unconscious) मे है। वास्तव मे हरेक व्यक्ति के अज्ञात मन मे बिना शिक्षा-संस्कृति के ही एक प्रकार की धर्म की भावना उठती है, और यह अनुभूति ही उसे ईश्वर मे विश्वास करने के लिये बाध्य करती है। यह एक गतिशील शक्ति (dynamic force) है, और इसके लिये सामाजिक बन्धन, नियम-परम्परा (social taboos) की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इस प्रकार मानसिक आवश्यकता के कारण ईश्वर मे विश्वास उपजा।

निराकार ईश्वर पर साधारण की श्रद्धा केन्द्रित नहीं हो पाती। इस कारण मूर्तिपूजा की प्रथा चली, और ईश्वर को एक स्थूल रूप दे दिया गया। प्रारम्भ मे पशु-पूजा की प्रथा अधिक थी। ये पशु हमारी प्रकृत इच्छाओं के प्रतीक थे। पशु-पूजा की प्रथा का अध्ययन यदि हम धार्मिक दृष्टि (theological stand-point) से करें तो ज्ञात होता है कि इनमे वे ही गुण वर्त्तमान हैं जो ईश्वर मे माने जाते हैं; इस कारण ये पशु ईश्वर के प्रतिनिधि माने जाते थे। यदि इस प्राचीन पशु-पूजन की प्रथा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो पता लगता है कि ये केवल हमारी आत्मरक्षात्मक (self-preservative), सृजनात्मक (procreative), और ध्वंसात्मक (destructive) वृत्तियों के ही सूचक हैं। बैल हमारी आत्मरक्षा-वृत्ति का प्रतीक है, गाय माँ का प्रतीक है, सर्प-पूजन का संबंध जातीय रक्षा (race-preservation) वृत्ति से है। पृथ्वी हमे अन्न देती है, इस कारण पृथ्वी की पूजा माँ के रूप मे की जाती है। ये वृत्तियाँ हमारी मानसिक क्रियाओं की संचालक हैं और यही कारण है कि भिन्न-भिन्न रूप मे जहाँ-तहाँ इनकी अभिव्यक्ति मिलती है। हम बैल को इस कारण नहीं पूजते कि वह बैल है; सर्प को भी इसी कारण नहीं कि वह सर्प है—पूजा करने का कारण यह है कि वे हमारी प्रकृत इच्छाओं के प्रतीक हैं।

पशु-पूजा का चिह्न अभी भी कहीं-कहीं मिलता है, किन्तु आज-कल की प्रथा ईश्वर की पूजा मनुष्य रूप मे करने की है। अधिकतर मूर्तियाँ मनुष्य के आकार की हैं। अंतर इतना ही है कि ईश्वर की मूर्ति को कहीं-कहीं दो हाथ की जगह चार हाथ और एक सिर की जगह कई सिर लगा दिये गये हैं। कहीं-कहीं ईश्वर को मनुष्य और पशु का मिश्रित रूप दिया गया है—सिर पशु का तो धड़ मनुष्य का है। पशु-पूजन से मनुष्य-रूप मे ईश्वर की पूजा करना अच्छा है।[1] यह परिवर्तन (transition) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विशेष

1 "It appears to all", as Hegal comments, "as a nobler symbolism than that of the barbarisms who discover in animal shapes the image of the divine."

महत्त्व का है। मनुष्य-रूप मे ईश्वर को पूजना आत्म-सम्मोही प्रवृत्ति (narcissistic tendency) का द्योतक है। यह मन की ऐसी अवस्था हैं जब मनुष्य अपनी 'कामशक्ति' (libido) को बाह्य वस्तु से समेट कर अहं (ego) मे सीमित कर लेता है। अहं मे शक्ति केन्द्रित हो जाने से वह प्रत्येक वस्तु मे अपनी ही छाया देखता है। फलतः वह ईश्वर को वही आकार देता है जो उसका स्वयं का रूप है।

फ्रायड का धर्म-विवेचनः—पहला लेख, जिसमे फ्रायड ने धर्म पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डाला है, "धार्मिक कृत्य और कल्पना-ग्रह के रोगी का अभ्यास" (*Religious practice and observances of obsessional neurotics*)है। इस लेख मे फ्रायड ने धार्मिक कृत्यों तथा कल्पनाग्रह के रोगी के कृत्यों मे समानता दिखाई है।

१. जिस प्रकार कल्पनाग्रह (obsession) का रोगी अपने हठी विचार और क्रियाओं के विषय मे सतर्क रहता है और उन्हें पूरा न कर सकने पर चिंतित हो जाता है, उसी प्रकार धार्मिक विचारों का मनुष्य अपने धार्मिक कृत्यों के विषय मे सजग रहता है। यह प्राचीन धार्मिक विश्वास है कि यज्ञ और बलि मे थोड़ा-सा भी नियम का उल्लंघन होने से उसका फल शून्य अथवा उल्टा हो जाता है।
२. दोनों प्रकार की क्रियाएँ सदैव एक-सी (uniformity) बनी रहती ह। उनमे कभी परिवर्त्तन नहीं होता। एक रूपता है। धर्म मे श्रद्धा रखकर यदि किसी व्यक्ति ने कुछ पूजा-पाठ नियम से करना प्रारम्भ किया तो वह व्यक्ति उस कृत्य को जीवन पर्यन्त तक करता रहता हैं। कल्पनाग्रह मे भी रोगी अपने असाधारण विचार के कारण जो आदत डाल लेता है उसे करने के लिये वह स्वयं अपने से बाध्य है।
३. दोनों प्रकार की क्रियाएँ मन की उस स्थिति को प्रकट करती हैं, जिसमे व्यक्तित्व मे सन्तुलन नहीं रहता। अर्थात् ये क्रियाएँ व्यक्तित्व-विकार (personality disorder) की सूचक हैं।

४. इन दोनों प्रकार की क्रियाओं का प्रमुख कारण भय है। अज्ञात मन मे अपराध-भाव (sense of guilt) होने के कारण मनुष्य भयभीत हो उठता है। परिणाम-स्वरूप वह व्यक्ति या तो धार्मिक विचार-कृत्यों मे लग जाता है, या निराधार कल्पना-विचार से ग्रस्त हो उठता है और कभी-कभी अप्रकृत चेष्टाओं की बान डाल लेता है।

धार्मिक कृत्यों तथा कल्पनाग्रह के रोगियों की व्यवहार-चेष्टाओं मे समानता पाकर फ्रायड इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि धर्म मे विश्वास का कारण भी काम-वृत्ति का दमन है। प्रेम मे निराश होने या अन्य किसी कारण प्रेम-ग्रंथि पड़ने से, कामुक से कामुक व्यक्ति मे भी संसार से उदासीनता आ जाती है और तब वह सांसारिक भोग-विलास की वस्तुओं से अपने को समेटकर अपनी चेतना का केन्द्र दैव और ईश्वर को बनाता है, क्योंकि कभी ज्ञात मन मे और कभी अज्ञात मन मे यह वह निश्चित रूप से जानता है कि सांसारिक वस्तुएँ उसको तृप्ति-शान्ति नहीं दे सकेंगी। अधिकतर अज्ञात मन मे वह ईश्वर को अपने प्रिय का प्रतिनिधि मान बैठता है। इस प्रकार ईश्वर-भक्ति की आड़ मे उसकी काम-वृत्ति की शांति हो जाती है। रोगी और धार्मिक व्यक्तियों के काम-वृत्तियों मे अन्तर इतना ही है कि धार्मिक व्यक्ति की काम-वृत्ति एक कलाकार की तरह उन्नत (sublimated) की हुई रहती है। इसी कारण यह कहा जाता है कि जिस प्रकार कला दमन की हुई काम-वृत्ति के उन्नयन का फल है, उसी प्रकार धर्म-भावना भी।

मनोविश्लेषण के इस धर्म-संबंधी सिद्धान्त पर भी आक्षेप किये गये। उधर फ्रायड के सिद्धान्त अधिक परिपक्व हुए। फलतः फ्रायड ने इदम् (id), अहं (ego) और नैतिक मन की (super-ego) कल्पनाओं के परिचय के साथ धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त मे भी सुधार किया। यह कहने के स्थान पर कि ईश्वर काम-प्रतीक है, उन्होंने ईश्वर को नैतिक मन (super-ego) का सर्वोच्च आरोपण (projection) निर्धारित किया। वास्तव मे नैतिक मन का आदर्श बहुत ऊँचा होता है। वहाँ तक पहुँचना सम्भव न होने पर हम

अपने नैतिक मन का प्रतिनिधि ढूंढ़ते हैं, और उस प्रतिनिधि द्वारा उस आदर्श की कल्पना करके अपनी इच्छा की तुष्टि करते हैं। यह प्रतिनिधित्व कई प्रकार की वस्तुओं से किया जा सकता है। किसी व्यक्ति के नैतिक मन का आरोपण देश पर होता है, किसी व्यक्ति का समाज पर, और किसी व्यक्ति का धर्म पर। जिसके नैतिक मन (super-ego) का आरोपण (projection) धर्म पर होता है वह ईश्वर मे विश्वास करता है और इस प्रकार ईश्वर उसके नैतिक मन का प्रतिनिधि बनता है।

युंग का धर्म-विवेचन :—युंग का दृष्टिकोण फ्रायड से सर्वथा भिन्न है। उनके अनुसार धर्म कामशक्ति के उन्नयन का परिणाम नहीं है, यह एक अव्यक्त अनुभूति है जो ईश्वर या किसी प्रकार की शक्ति के अस्तित्व मे विश्वास करने के लिये हमे बाध्य करती है। इसकी उत्पत्ति सामाजिक नियंत्रण तथा प्रेम मे निराश होने के कारण नहीं हुई है; यह एक स्वाभाविक अनुभूति है। हमारे सामूहिक अज्ञात मन (collective unconscious) मे अन्य भाव-प्रतिमाओं (archetypes) की तरह ईश्वर की भी एक भाव-प्रतिमा है। यही भाव-प्रतिमा भिन्न-भिन्न रूपों मे पूजी जाती है और भिन्न-भिन्न नामों से भिन्न-भिन्न जातियों मे प्रचलित है। जिस प्रकार एक स्त्री का पुरुष के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है, उसी प्रकार मनुष्य मे स्वभावतः धर्म की भावना होती है। स्त्री का पुरुष के प्रति और पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण का कारण पुरुष और स्त्री (animus and anima) की भाव-प्रतिमा है; ईश्वर मे विश्वास का कारण ईश्वर की प्रतिमा है, जिसे युंग के शब्दों मे 'प्रतिमागत देव-मूर्त्ति' (*archetypal image of the deity*) कहते हैं। यह प्रतिमा एक जातीय विशेषता है, जो प्रत्येक देश, काल और जाति के जनों मे विद्यमान रहती है। यह धर्म की प्रारम्भिक अवस्था मे 'टोटम' (totem) के नाम से विख्यात थी। 'टोटम' कोई भी पौधा या पशु होता था जिसे प्राचीन काल का असभ्य मानव पवित्र मान कर पूजता था। जिस वस्तु को टोटम मानकर पूजा जाता उसे भोजन के काम मे लाना निषिद्ध था। इस 'टोटम' को ही लोग ईश्वर

समझते। बाद मे लोगों का विश्वास भूत-प्रेत (spirits) मे हुआ। ये भूत-प्रेत वृक्षों पर रहते। इसलिये उन्हें प्रसन्न करने के लिये उन वृक्षों की पूजा की जाने लगी। बात यह थी कि लोगों को क्षण-क्षण यह भय बना रहता कि वे भूतात्मा अप्रसन्न होकर उन्हें हानि न पहुँचावें। इसके पश्चात् लोगों का विश्वास अनेक देवी-देवताओं मे जमा। इन्द्र, वरुण इत्यादि पूजे जाने लगे। एक ईश्वर के अस्तित्व की धारणा बनी और उसमे विश्वास जमा। आधुनिक युग मे हरेक व्यक्ति प्रथा और परम्परा (custom and tradition) के अनुसार जाति-निर्धारित ईश्वर की पूजा करता है। भिन्न-भिन्न रूप, आकार और वस्तु की प्रतिमा की पूजा करते हुए भी समस्त मानव-समाज के मन की प्रतिमा एक ही है। ब्रह्मा, विष्णु, बुद्ध, महावीर, मुहम्मद, क्राइस्ट, सब धर्मों के प्रतिनिधि अज्ञात मन मे बसी उस एक प्रतिमा के ही प्रतिरूप हैं। ईश्वर की प्रतिमा हमारे अज्ञात मन मे है। इस प्रकार से ईश्वर हमसे अलग नहीं है। वह हमारे अज्ञात मन का एक भाग है और जो कुछ अज्ञात मन मे है उसे हम बाहर नहीं निकाल सकते। जब कभी इस प्रतिमा के बाह्य आरोपण (projection) मे बाधा होती है, यह प्रतिमा अज्ञात मन मे लौट जाती है और फिर कभी जब इसे व्यक्त होने का अवसर मिलता है यह व्यक्त होती है। यही कारण है कि धर्म मे अविश्वास करते हुए भी मनुष्य फिर-फिर धार्मिक (conversion) हो सकता है। युंग ने 'प्रतिमागत देवमूर्त्ति' (archetype of god) के समर्थन मे यहाँ तक कहा है कि यदि हम इसकी धारणा को अवैज्ञानिक और गूढ़ मानें तो यह गूढ़ कल्पना ही अज्ञात मन की प्रकृत इच्छाओं से बाध्य की गई है*। लेकिन फिर भी युंग के 'प्रतिमागत देवमूर्त्ति सिद्धान्त'

* Jung writes that even if we take the idea of God as an unscientific hypothesis, as mystical, it is precisely this mystic idea which is enforced by the natural tendencies of the unconscious mind.

God is Libido, and the image of God is immortal, for as a racial heritage it is transferred from race to race and person to person.

(theory of the archetypal image of the deity) का खंडन किया गया है। समस्याएँ उठती हैं :—

१. यदि यह प्रतिमा प्रत्येक मनुष्य मे बसी है और पैतृक सत्य है तो प्रत्येक मनुष्य ईश्वर मे क्यों नहीं विश्वास करता ?
२. क्या कारण है कि प्रतिमा एक होते हुए भी प्रत्येक मनुष्य भिन्न-भिन्न ईश्वर की पूजा करता है ?

प्रश्न जटिल हैं और इनका समाधान वैज्ञानिक आधार पर नहीं हो सका है। विचार करने पर रूढ़ियाँ तथा सामाजिक नियम इनका कारण मालूम पड़ते हैं। जो मनुष्य ऐसी जाति मे जन्मा है जो बौद्ध धर्मानुयायी है वह सहज ही बुद्ध भगवान् की पूजा करेगा और उस धर्म का पालन करेगा। कोई व्यक्ति किस धर्म का अनुयायी रहेगा यह बात उस व्यक्ति का वातावरण (environment) ही निर्धारित करता है। मनोविज्ञान मे वातावरण शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ मे किया गया है जिसमे घर, कुटुम्ब, पाठशाला, साथी सब कुछ जो हमारे व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते हैं समाये हुए हैं। वास्तव मे धार्मिक कृत्यों को निर्धारित करने के लिये मनोवृत्ति तथा वातावरण दोनों ही उत्तरदायी हैं। जो विशेषताएँ हममे अप्रस्फुटित रूप मे रहती हैं, वे ही उचित वातावरण मिलने पर प्रस्फुटित हो जाती हैं। हाँ, जिन व्यक्तियों मे नास्तिकता रोपी जाती है उनमे यह जन्मागत देव-प्रतिमा सोयी अवस्था मे ही अपने उद्गम स्थान सामूहिक अज्ञात मन (collective unconscious) मे पड़ी रह जाती है। ऐसी दशा मे मनुष्य को ईश्वर-विषयक चेतना ही नहीं होती। यह तो साधारण-सी बात है कि किसी वृत्ति की पुष्टि व्यवहार से होती है। व्यवहार न होने पर वह वृत्ति निश्चय ही मृत्युतुल्य हो जायेगी। मृत्युतुल्य होने का तात्पर्य है अक्रिय हो जाना। यह नियम हरेक मूल वृत्ति पर लागू किया जा सकता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेम्स का सिद्धान्त 'वृत्ति की निष्क्रियता' (theory of disuse of instinct) इसे स्पष्ट करती है।

फ्रायड ने अपने धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्त मे धर्म-वृत्ति को कोई स्थान नहीं

दिया है। उनके लिये धार्मिक क्रियाएँ धर्म-वृत्ति के कारण नहीं होतीं। ल्यूबा ने भी युंग के जन्मागत धर्म-वृत्ति के सिद्धान्त का खंडन किया है। ल्यूबा के अनुसार मनुष्य मे धर्म नामक कोई वृत्ति नहीं। धार्मिक अनुभूति शिक्षा का परिणाम है। फ्रायड के सिद्धान्त के आधार पर यदि मीरा की कृष्ण-भक्ति का विश्लेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि मीरा मे वही दुर्बलताएँ हैं जो साधारण कोटि के मनुष्यों मे होती हैं; अन्तर इतना ही है कि उसने अपनी कामशक्ति को इस स्तर तक उठा लिया था कि सांसारिक प्रेम के स्थान पर वह आध्यात्मिक प्रेम की भखी हो उठी। मीरा के प्रेम का विश्लेषण यदि युंग के धर्म-संबंधी सिद्धान्त के आधार पर किया जाय तो इससे सर्वथा भिन्न व्याख्या मिलती है। मीरा को अज्ञात मन से एक धार्मिक प्रेरणा मिली और उसी प्रेरणा के वश वह कृष्ण-प्रेम मे विभोर हो उठी। इस प्रकार रहस्यवादियों (mystics) के अनुभव का युंग के मनोविज्ञान मे अधिक विचारात्मक विश्लेषण मिलता है।

फ्रायड तथा युंग के धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तों मे भेद:—

१. फ्रायड के दृष्टिकोण से ईश्वर के प्रति आस्था की भावना रखना केवल पिता और पुत्र के संबंध की पुनरुक्ति है; युंग के अनुसार धर्म का संबंध सामूहिक अज्ञात मन से है। संभव है कि हमारे अन्दर ईश्वर के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति का भाव है उसमे और पिता-पुत्र के संबंध मे समानता हो, किन्तु यह कहना अत्युक्ति होगा कि पुत्र का पिता पर आश्रित होने की भावना धर्म का आधार है।

२. फ्रायड के अनुसार धर्म केवल दमन की हुई काम-वृत्ति का द्योतक है; युंग की दृष्टि से धर्म और काम-वृत्ति के दमन मे कोई विशेष संबंध नहीं है। कभी-कभी प्रेम-ग्रंथि (love complex) के बनने पर धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाती है, किन्तु इस अवस्था मे भी प्रेम केवल उत्तेजन का काम करता है, धार्मिक भावना नहीं उपजाता। धर्म-अनुभति तो एक निरपेक्ष अनुभव है। धर्म के लिये दमन की आवश्यकता नहीं है।

३. फ्रायड के अनुसार काम-शक्ति के प्रभाव से धर्म की ओर झुकाव होता है और इसका प्रमाण प्राचीन संस्कृति मे ही नहीं आधुनिक मे भी मिलता है। जहाँ-तहाँ काम-प्रतीक की पूजा की जाती है। युंग के अनुसार ईश्वर काम-शक्ति का ही प्रतीकरूप नहीं है; वह हमारी 'मानसिक शक्ति' (generic psychic energy) का प्रतिरूप[1] है।

४. फ्रायड के अनुसार धर्म मे केवल हमारी काम-वृत्ति का उन्नयन (sublimation) होता है; युंग के अनुसार धार्मिक क्रिया तथा अनुभूति अज्ञात मन की प्रकृत-क्रिया है[2]। यह बात युंग ने अपनी पुस्तक 'सॉइकॉलजी एण्ड रेलीजन' (***Psychology and Religion***) मे भलीभांति स्पष्ट की है।

५. फ्रायड के अनुसार ईश्वर काम-वृत्ति का प्रतीक है; युंग के अनुसार ईश्वर अज्ञात मन की 'प्रतिमागत देवमूर्ति' (archetypal image of the deity) का प्रतीक है। यह प्रतिमा धर्म का उद्भव स्थान है। यह कहना कि ईश्वर काम-वृत्ति का प्रतीक है, नीतिशास्त्र की दृष्टि से अवांछनीय है और मनोविज्ञान की दृष्टि से अवैज्ञानिक है।

६. फ्रायड ने धार्मिक क्रियाओं और विक्षिप्त व्यक्तियों के व्यवहारों मे समानता पाई। किन्तु युंग की दृष्टि से धार्मिक व्यक्ति विक्षिप्त नहीं होता। धार्मिक व्यक्तियों की मानसिक अवस्था और विक्षिप्त व्यक्तियों की मानसिक अवस्था मे समानता नहीं है।

---

1 God is Libido. But accordimg to Jung, libido does not stand for sex energy, but for the generic energy which can flow in a number of directions.

2 "The dogma is like a dream, reflecting the spontaneous and autonomous activity of the objective psyche—the unconscious."

७. फ्रायड के अनुसार धर्म हमारी शक्ति का प्रत्यावर्तन (regression) है; युंग के अनुसार यह इस बात का द्योतक है कि किस प्रकार एक व्यक्ति विकास की एक अवस्था पारकर दूसरी अवस्था मे प्रवेश कर रहा है।

इस प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान मे धर्म-संबंधी दो भिन्न सिद्धान्त मिलते हैं। इनमे युंग का दृष्टिकोण विशेष युक्तिसंगत है। फ्रायड के धर्म संबंधी सिद्धान्त का समर्थन करने का अर्थ है धर्म का अस्तित्व ही न मानना। फ्रायड ने अपनी कृति 'फ्युचर ऑफ ऐन एल्युजन' (*Future of an Illusion*) मे यहाँ तक कहा है कि धर्म केवल एक भ्रम है। भ्रम से तात्पर्य है इच्छा-पूरक क्रिया (wish-fulfilment)। धर्म की भावनाएँ न तो विचारशील होती हैं, और न ये स्वतन्त्र अनुभूति का विषय हैं। धर्म केवल कल्पना का परिणाम है ; और कल्पना का वास्तविकता से कोई संबंध नहीं है।

संक्षेप मे धर्म अनुभूति का विषय है, और इस अनुभूति के लिये सामूहिक अज्ञात मन उत्तरदायी है, यद्यपि कभी-कभी दमन की हुई प्रकृत इच्छा भी उत्तेजक का काम करती है।

१३

मनोविश्लेषण और दैनिक जीवन

मनोविश्लेषण की दृष्टि से स्वप्न, कला, धर्म और पौराणिक कथा के समान हमारी दैनिक क्रियाएँ भी आकस्मिक नहीं हैं। साधारण से साधारण क्रियाओं का भी कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य रहता है। यदि यह कहा जाय कि निद्रा के स्वप्न, चित्रकार के चित्र, और कवि की कविता के लिये अज्ञात (unconscious) मन उत्तरदायी है तो कोई विशेष आश्चर्य नहीं होता क्योंकि साधारण धारणा यही है कि ये क्रियाएँ रहस्यमयी होती हैं और इस कारण अज्ञात मन से संबंधित हैं। परन्तु जब इस नियम को साधारण व्यापार-व्यवहार मे लागू किया जाता है तब दो विचारणीय प्रश्न उठते हैं:—

१. इन दैनिक क्रियाओं के निमित्तपूर्ण (motivated) होने की कहाँ तक संभावना है?

२. इनका संबंध अज्ञात मन से कहाँ तक हो सकता है?

इन प्रश्नों का समाधान तभी हो सका जब फ्रायड ने इस बात का अन्वेषण किया कि मानसिक क्षेत्र कार्य और कारण के नियम से वैसा ही बद्ध है जैसा कि भौतिक क्षेत्र। निरीक्षण (observation) और प्रयोग के आधार पर फ्रायड ने यह प्रमाणित किया कि दैनिक क्रियाएँ आकस्मिक नहीं हैं, इनका संबंध सदा ज्ञात या अज्ञात मन से रहता है। जिन क्रियाओं का विवरण ज्ञात मन नहीं दे पाता उनका कारण अज्ञात मन मे अवश्य ही निहित है। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र मे कार्य-कारण का नियम (psychic determinism)

बिना किसी अपवाद के काम करता है। अबाध मनः आयोजन (free-association) की विधि का प्रयोग करके जो निष्कर्ष निकला वह भी इस बात का प्रमाण है कि फ्रायड पूर्ण-रूपेण कट्टर डिटरमिनिस्ट[1] थे।

दैनिक जीवन मे प्रायः पत्र का उत्तर देना भूल जाया जाता है। यदि पत्र लिखा भी तो डाक मे डालना ही रह गया। पुस्तकालय मे पुस्तक लौटाना भूलना तो एक नित्य की बात है। पूछने पर यही उत्तर मिलेगा, "क्या करूँ, स्मृति का दोष है, भूल गया"। लेकिन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा एक नये रहस्य का पता लगता है। पत्र को डाकघर मे छोड़ना इसलिये नहीं भूल जाता कि स्मृति मे दोष है; सच तो यह है कि हमारे अज्ञात मन (unconscious) मे अभिवादित (addressee) के प्रति घृणा का भाव छिपा है। या तो हमे उसके नाम से घृणा है, या उसके व्यक्तित्व से, या उस व्यक्ति का संबंध कुछ ऐसी दुःखमय घटनाओं से है जिसे ज्ञात मन से हम दूर हटाये रखना चाहते हैं। इसी प्रकार हम जब कभी अपने मित्र का उपहार खो बैठते हैं, या कहीं रखकर भूल जाते हैं तो उसका कारण मनोविश्लेषण की दृष्टि से यह होता है कि हमारी श्रद्धा उपहार की ओर नहीं—बल्कि अवहेलना का भाव है। विश्लेषण से पता लगा कि उस व्यक्ति के प्रति जिसने हमे उपहार दिया है, हमारे मन मे दो विरोधी-भाव (ambivalence) समरूपेण हैं। ज्ञात मन मे तो उसके प्रति स्नेह का भाव है पर अज्ञात मन मे घृणा का भाव भरा है।

---

1 Jones says Freud boldly tested his faith in determinism—Acting on the assumption that something must be directing a train of thought even when it appeared to be freely wandering and that this something could only be the influence of unconscious thoughts he asked his patients to refrain from concentrating on any particular idea and from consciously guiding their thoughts.

इस प्रकार के उदाहरण फ्रायड की पुस्तक "साइकोपैथौलजी ऑफ एवरी डे लाइफ" (*Psychopathology of Everyday life*) मे बहुत हैं। किसी व्यक्ति के नाम को भूलना, कंठस्थ कविता के शब्दों को आगे-पीछे करना, बोलने और लिखने मे कुछ शब्दों को भूल जाना, किसी काम का निश्चय करके उसे न करना, —नित्य की क्रियाएँ हैं। पर इन दैनिक क्रियाओं के विश्लेषण की चेष्टा अभी तक नहीं की गयी थी। फ्रायड ने इन साधारण क्रियाओं का पहली बार विश्लेषण किया। उन्होंने अपने लेख 'दी साइकिक मेकैनिज़्म ऑफ फौरगेटफुलनेस' (*The Psychic Mechanism of Forgetfulness*) मे यह बताया कि ये क्रियाएँ अज्ञात मन से प्रेरित हैं। अध्ययन के लिये फ्रायड ने अपने ही दैनिक अनुभव का विश्लेषण करना प्रारम्भ किया। एक बार यह हुआ कि फ्रायड प्रसिद्ध कलाकार 'सिगनौरोली' के नाम को याद करना चाहते थे। प्रयत्न करने पर भी यह नाम उन्हें याद न आया। 'सिगनौरोली' के स्थान पर दो दूसरे नाम याद आ जाते। ये नाम 'बौल्टीवेली' और 'बौल्ट्रेफिक' थे। वास्तव मे ये दोनों नाम 'सिगनौरोली' के नाम के प्रतिनिधि थे। फ्रायड ने अपनी विस्मृति का विश्लेषण किया और यह समझने का प्रयत्न किया कि उनके मस्तिष्क मे ये दो नये नाम क्योंकर आये। विश्लेषण के बाद उन्हें अपनी भूल का रहस्य समझ मे आ गया। वास्तव मे इस कलाकार के नाम का सम्बन्ध फ्रायड के जीवन के किसी दुःखपूर्ण अनुभव से था। सामान्यतः जब कभी इस प्रकार की विस्मृति या भूल होती है, कुछ मानसिक कारण अवश्य होता है। इसकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि यह है :—

१. अज्ञात मन कुछ कारणों से उस नाम को भूलना चाहता था; फलस्वरूप ज्ञात मन के पुनरावाहन (recall) की चेष्टा विफल गई।

२. पुनरावाहन के प्रयत्न के पहले दमन की कार्य पद्धति (mechanism of repression) अज्ञात मन मे अवश्य सक्रिय रहती है।

३. भूला हुआ नाम तथा दमन की हुई इच्छा इस प्रकार संबंधित रहती हैं कि नाम भूलना स्वाभाविक हो जाता है।

ब्रिल ने अपने अनुभव से इसका एक रोचक उदाहरण दिया है:—

"एक बार ब्रिल किसी विशेष केस का वर्णन लिख रहे थे। इस केस का विश्लेषण पहले उन्होंने विशेष रुचि से किया था, लेकिन न जाने क्यों प्रयत्न करने पर भी उन्हें रोगी का नाम याद न आया। बहुत कोशिश की; रात्रि भर सोचते पड़े रहे। अन्त मे उन्हें पाँच बजे प्रातः रोगी का नाम ध्यान मे आया। ब्रिल ने विश्लेषण करना आरम्भ किया। फ्रायड की कृतियों मे रुचि होने के कारण उन्हें यह निश्चय था कि इस भूले हुए नाम का सम्बन्ध अवश्य ही उनके जीवन की किसी दुःखपूर्ण घटना से था। धीरे-धीरे उन्हें पूरी घटना का ध्यान हो आया कि किस प्रकार उन्होंने बड़ी कुशलता से उस केस का अध्ययन किया था, लेकिन उसके परिणाम मे उन्हें कुछ भी यश की प्राप्ति न हुई। केस 'मिर्गी' (epilepsy) का था। सभी ने उन्हें उनकी अद्भुत सफलता पर बधाई दी थी। सुपरिंटेंडेंट ने तो उनके विषय मे मेडिकल सोसाइटी को लिखने का आश्वासन तक दे दिया था। कुछ दिन बाद सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें लेख पढ़ने के लिये बुलाया। ब्रिल ने बड़े उत्साह से लेख पढ़ा लेकिन लोगों की ऐसी धारणा हुई कि वह अपना नहीं सुपरिंटेंडेंट का लिखा हुआ लेख पढ़ रहे थे। ब्रिल के आत्मसम्मान को धक्का लगा। किन्तु उन्होंने इस बात को अपने मन मे दबा रखा। उनके मन मे हीनत्व-ग्रन्थि पड़ गई और इस घटना के कारण उन्हें रोगी का नाम भूल गया। अपनी मानसिक अवस्था का विश्लेषण करने पर ब्रिल इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनकी विस्मृति का कारण हीनत्व-ग्रन्थि थी जो दमन के कारण अज्ञात मन मे पड़ गई थी।

इसी प्रकार ब्रिल ने और भी कई उदाहरण दिये हैं। एक स्त्री कीट्स की कविता 'दी ओड टु अपोलो' (*The Ode to Apollo*) जब कभी स्मरण करना चाहती पुनरुक्ति करते समय शब्द इधर-उधर कर देती।

कारण यह था कि इस घटना का सम्बन्ध उसकी 'व्यक्तिगत ग्रंथि' (personal complex) से था। विश्लेषण करने से मालूम हुआ कि इस भूल का कारण प्रेम मे निराशा थी। युवावस्था मे वह एक युवक से प्रेम करती थी। प्रारम्भ मे वह युवक भी उसकी ओर विशेष आकर्षित था। लेकिन एक दिन उस युवती ने सुना कि उसका 'अपोलो' भाग गया और उसने किसी धनी युवती से विवाह कर लिया। युवती ने युवक को भुलाना चाहा। उसने ज्ञात मन से तो युवक की स्मृति भुला दी, किन्तु अज्ञात मन मे उसकी याद बसी ही रह गयी। इस कारण जब कभी वह उस कविता को याद करना चाहती, अज्ञात मन मे उसके प्रिय की याद जाग्रत हो जाती, और अनजाने वह गलतियाँ कर बैठती।

युंग ने कई अन्य रोचक उदाहरण दिये हैं। उन्होंने 'देवदार वृक्ष की कविता' याद करनी चाही। प्रयत्न करने पर भी वे एक पंक्ति से अधिक न याद कर सके। कारण यह था कि उनके मन मे मृत्यु के प्रति भय की भावना थी। उन्होंने अज्ञात मन मे अपने और उस देवदार वृक्ष मे जो कपड़े से ढका था एकत्व स्थापित कर लिया था। फलस्वरूप उनकी उस पंक्ति के आगे याद करने की चेष्टा असफल रही।

बर्नर्डशा के नाटक 'सीज़र और क्लिओपेट्रा' मे नायक नायिका से बिदाई लेना भूल जाता है। बाद मे उसे इसका स्मरण आता है। यह भूल सीज़र की क्लिओपेट्रा के प्रति उदासीनता दिखलाती है। जो कुछ कार्य वास्तव मे हम करना चाहते हैं, उसे हम नहीं भूलते। यह समझना मिथ्या है कि वह कार्य भूल जाने के कारण नहीं हो सका।

फलतः यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि इस प्रकार की भूलों का संबंध गूढ़ मन से है। कमज़ोर स्मृति इनका कारण नहीं है। इस संबंध मे ब्लूलर और रिकलिन भी फ्रायड से पूर्णतः सहमत हैं। उन लोगों ने भी उदाहरणों द्वारा बतलाया है कि किस प्रकार भूलें हमारे व्यक्तिगत, कौटुम्बिक तथा व्यावसायिक भावना-ग्रंथियों से संबंधित हैं।

बचपन की 'प्रवंचक स्मृति' (concealing memory) का भी संबंध हमारे अज्ञात मन की ग्रंथियों से है। बहुधा युवावस्था तथा वृद्धावस्था मे पहुँचने पर भी हमे बचपन की कुछ घटनाएँ याद रहती हैं। ये स्मृतियाँ हमारे व्यक्तित्व के विकास पर प्रकाश डालती हैं। निम्न उदाहरण इसका समर्थन करता है :

एक चौबीस वर्ष के युवक को अपने बचपन की यह घटना कि किस प्रकार उसे एम और एन का भेद जानने मे कठिनाई पड़ी थी, स्पष्ट याद थी। ऐसा क्योंकर था, इसका विश्लेषण किया गया और पता लगा कि यह स्मृति उस युवक के लड़की-लड़के के अन्तर को जानने की उत्सुकता का प्रतीक थी। फ्रायड की दृष्टि से हमारी बचपन की प्रवंचक स्मृति (concealing memory) कामोत्सुकता दर्शाती है। ऐडलर के भी विचार से बचपन की स्मृति का महत्त्व हैं; लेकिन यह काम-वृत्ति का नहीं बल्कि जीवन के ढंग[1] (style of life) पर प्रकाश डालती है।

"मैं घोषित करता हूँ कि मिस्टर क की उपस्थिति मे सभा की कार्यवाही 'स्थगित' होगी। 'प्रारम्भ' करने की जगह पर 'स्थगित' करना कहना मंत्री का सभापति के प्रति उदासीनता का भाव दिखलाता है। यह समझना कि इस भूल मे दो विपरीत शब्दों का उलटफेर (interchange of contrasting

---

१ ऐडलर के मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य का चरित्र, व्यवहार तथा उसका भविष्य उसके बचपन के निर्धारित जीवन के ढग (mode of life) पर अवलंबित है। यह, जब बालक ५ वर्ष का होता है, तभी निर्धारित हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी 'जीवन-शैली, (style of life) होती है, क्योंकि प्राणिमात्र में व्यक्तिगत भिन्नता है। जो व्यक्ति बचपन में उपयुक्त वातावरण के कारण उत्कृष्ट 'जीवन-शैली' बनाता है, वह चरित्रवान् और समाज-सुधारक सिद्ध होता है। जो उपयुक्त 'जीवन-शैली' नहीं बनाता वह चोर तथा अपराधी के रूप मे समाज मे प्रवेश करता है। ऐडलर ने अपनी पुस्तक 'व्हाट लाइफ शुड मीन टु यू, मे इस विचार की विस्तृत व्याख्या की है।

words) मात्र है अनुपयुक्त है । एक बार एक सम्पादक, जो चेतन मन मे महात्मा गांधी की अहिंसा की नीति का कट्टर समर्थक था, अपने पूरे लेख मे 'अहिंसा' की जगह 'हिंसा' लिख गया । यह भूल सम्पादक के अज्ञात मन की इच्छा का द्योतक थी । यही बात 'शान्ति' की जगह 'क्रान्ति' लिखनेवाले को लागू होती है ।

जब शीशे और काँच के बरतन नौकर से टूटते हैं तो इसका कारण लापरवाही नहीं है और न इसे हम जड़ता ही कह सकते हैं। इस घटना का कारण नौकर की मालिक के प्रति उदासीनता है। नौकर जान-बूझकर ऐसी गलती नहीं कर बैठता। अज्ञात मन मे द्वेष का भाव होने के कारण मालिक का नुकसान हो जाता है। ब्रिल ने एक डॉक्टर का किस्सा बतलाया जिसमे उस डॉक्टर ने भूल से अपने रोगी चाचा को 'डिजटेलिस' (digtallis) देने के बदले अधिक मात्रा मे 'हायसिन' (hyosine) दे दी ? चाचा की तुरन्त मृत्यु हो गई। उसे अपनी भूल पर बड़ा पश्चात्ताप और शोक हुआ। प्रश्न यह उठता है कि फिर यह भूल कैसे हुई ? विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि इस भूल का कारण डॉक्टर के मन मे चाचा के प्रति द्वेष-भावना का होना था। डॉक्टर को इस द्वेष-भावना की चेतना नहीं थी, लेकिन उसका बीज अज्ञात मन मे बोया हुआ था और इसी कारण अज्ञात मन ने अपने को सन्तुष्ट करने के लिये यह चाल चली।

हमारी आकस्मिक क्रियाएँ (random movements) जैसे चाभी से खेलना, पेन्सिल बिना प्रयोजन कागज पर चलाना, बटन खड़खड़ाना, बटन खोलना और बन्द करना इत्यादि भी निष्प्रयोजन नहीं हैं। ये क्रियाएँ कैसी भी साधारण और स्वगामी-आकस्मिक क्यों न लगें, बहुधा किसी और घटना या इच्छा की प्रतीक हैं जो अज्ञात मन की निधि है।

इसी प्रकार जब किसी संख्या को बार बार दुहराया जाता है, तब उसका कुछ मतलब रहता है। एक रोगी की आदत—जैसा फ्रायड ने वर्णन किया

है—१७ और ३६ की संख्या को दुहराने की थी। विश्लेषण करने पर पता लगा कि हीनत्व-ग्रंथि से अज्ञात मन मे पीड़ित होने के कारण उसकी यह आदत पड़ गई थी। उसके जन्मदिवस की तारीख २७ थी और भाई के जन्मदिवस की तारीख २६। यदि उसके जन्मदिवस की तारीख से १० कम कर दिया जाय तो १७ होता है और भाई के जन्मदिवस की तारीख मे १० जोड़ दिया जाय तो ३६। आत्म-लघुता की भावना के कारण ही वह अपने जन्मदिवस की तारीख से १० कम कर १७ कहता और भाई मे दस जोड़कर ३६ कहता था। १७ और ३६ की संख्या उसके अज्ञात मन की इच्छा का द्योतक है। अज्ञात मन मे वह अवश्य ही सोचता होगा कि 'देखो मैं बड़ा हूँ, फिर भी मेरे भाई का रोब है।' इस भाव का प्रदर्शन १७ और ३६ की संख्या दुहराने में होता है।

मेरा अपना भी एक अनुभव है। एक बार एक यात्री को मैंने रेलगाड़ी मे चढ़ते समय और आगे जाकर फिर प्लेटफार्म पर उतरते समय सामान को कई दफा गिनते हुए पाया। यदि सामान गिनते समय कोई उसे बीच मे टोक देता, वह फौरन फिर गिनने लगता। मुझे विशेष कौतूहल हुआ। दूसरे यात्री से पूछने पर पता लगा कि यह उसकी आदत थी और लोग जानबूझकर तंग करने के लिये, जब वह सामान गिनने लगता, बीच मे बोल उठते। ऐसे ही एक दूसरे महाशय की आदत सीढ़ी गिनने की थी। कारण पूछने पर उसने कहा यह तो मेरी आदत सी हो गई है।

इन उदाहरणों के आधार पर यह सिद्ध हुआ कि अधिकतर दैनिक जीवन की क्रियाएँ भी अज्ञात मन से सम्बन्धित होती हैं और मानसिक क्षेत्र मे कार्य-कारण का वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा भौतिक क्षेत्र मे।

१४

मनोविश्लेषण और अपराध

जिस प्रकार विकृत-असाधारण व्यापार-व्यवहार, स्वप्न, कला, धर्म तथा दैनिक क्रिया का कारण अज्ञात मन मे दबी-दबायी इच्छाएँ हैं, उसी प्रकार समाज-विरोधी क्रियाओं का बीज भी अज्ञात मन मे ही है। अज्ञात मन की इच्छाओं का स्वभाव क्या है और वे किस प्रकार मन के इस स्तर पर इकट्ठी हुई हैं इस पर पिछले प्रकरणों मे प्रकाश डाला जा चुका है। फिर भी इस प्रसंग मे इतना लिखना आवश्यक है कि अज्ञात मन की इच्छाएँ अनेक हैं और ये सक्रिय (active) और उग्र स्वभाव (violent type) की होती हैं। इनमे एक विलक्षण शक्ति होती है और परोक्ष या अपरोक्ष रूप से मनुष्य के चरित्र, व्यवहार को प्रभावित करती रहती हैं। जब अज्ञात मन की इच्छाएँ उद्दंड (aggressive) और अति उग्र हो उठती हैं तब मानव बड़ा से बड़ा अपराध कर बैठता है। प्रतिशोध मे हत्या भी कर सकता है। अपराध की गहिराई दमन की हुई इच्छाओं की उग्रता और जटिलता पर निर्भर है। इच्छाएँ जितनी उग्र और विषम होंगी उसी अनुपात मे मनुष्य अपराधी होगा और साधारण और विषम अपराध करेगा। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इच्छाओं के उग्र होने का एकमात्र परिणाम मनुष्य का अपराध करना है। संभव है कि इन इच्छाओं का अभिव्यक्तीकरण स्वप्न और विक्षिप्त व्यवहार का रूप ले। कुछ स्थिति-विशेष मे अपराध को ही चुनौती दी जाती है और यह तब जब इदम् की पूर्णतः प्रभुता—बोलबाला होता है। अहं और नैतिक मन का किसी प्रकार आक्षेप नहीं रह जाता। उनमे व्यक्तित्व को संचालित करने

की हिम्मत और शक्ति शेष नहीं रह जाती। अहं यह सोच कर चुप रह जाता है कि उसमें शक्ति की कमी है और वह किसी प्रकार से इदम् की उग्र इच्छाओं पर अपनी हुकूमत न रख सकेगा। नैतिक मन का विकास ही नहीं होता। वह बहुत कुछ सुप्तावस्था मे पड़ा रह जाता है। इस कारण उस व्यक्ति-विशेष मे अच्छा-बुरा, नीति-अनीति के भाव का पोषण नहीं हो पाता।

अपराध और विक्षेप :—मनोविश्लेषण की दृष्टि से यदि अपराधी और विक्षिप्त व्यक्तियों की मनोदशा का विश्लेषण किया जाय तो बहुत कुछ समानता मिलेगी :—

१. दोनों ही अवस्था मे प्रकृत इच्छाएँ (infantile primitive desires) काम करती हैं। मूल एक ही है। अन्तर यह है कि एक मे इच्छाओं का नग्न प्रदर्शन होता है और दूसरे मे इच्छाएँ विकृत रूप मे प्रकट होती हैं। जब अपराधी मे काम-वासना की तुष्टि नही होती वह रोष मे अपने प्रतिद्वन्द्वी की हत्या करता है; असाधारण व्यक्ति नाना प्रकार के भ्रम (delusion), भ्रान्ति (hallucination) और कल्पना (obsession) का शिकार होता है। भावना-ग्रंथि (complexes) पड़ने पर अशिक्षित व्यक्ति बहुतकर अपराध करता है और शिक्षित विक्षेप की दशा को प्राप्त होता है।

२. अपराधी और विक्षिप्त व्यक्तियों मे कुछ अल्प-बुद्धि (sub-mormal) के होते हैं, कुछ साधारण (normal), और कुछ प्रखर बुद्धि (super-normal) के। छोटे-मोटे अपराध करनेवाले व्यक्ति अधिकतर अल्प-बुद्धि होते हैं; बड़ा गुनाह करनेवाले प्रखर बुद्धि के। सांख्यिक विवरण से पता लगा है कि अपराधी वर्ग मे अधिकतर व्यक्ति निर्बल-हीन (feeble-minded) और मन्द बुद्धि (moron) के हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानसिक दोष (mental defectiveness) अपराध का एक बड़ा कारण है। विक्षिप्त व्यक्ति भी बुद्धि की कमी के कारण अपने और वाता-

वरण मे संतुलन नहीं ला पाते और इस प्रकार रोग का आखेट होते हैं, किन्तु अधिक संख्या प्रखर बुद्धि के लोगों की होती है। यह बात विशेषकर मनोविक्षेप के रोगी मे मिलती है।

प्रसंग मे किसी व्यक्ति का 'बुद्धि भाग फल' (Intelligence Quotient) जानना आवश्यक है :—

$$\frac{\text{मानसिक आयु (mental age)}}{\text{शारीरिक आयु (chronological age)}} \times १०० = \text{बु. भा. (I.Q.)}$$

'बु. भा' (I.Q.) जानने के लिये मानसिक आयु को शारीरिक आयु से भाग करके, फल को १०० से गुणा करते हैं। जब 'बु० भा०' (I.Q.) १०० के ऊपर होता है तब वह प्रखर बुद्धि का माना जावेगा; जब यह १०० से कम होगा तो मन्द बुद्धि का; और जब यह १०० के इर्द गिर्द तब साधारण बुद्धि का। अल्प बुद्धि मे कई श्रेणी हैं : १५-३० मूर्ख (idiots); ४०-७० निर्बल-हीन (imbecile); और ७०-९० मन्द बुद्धि के व्यक्ति (borderline, moron)। मन्द बुद्धि के व्यक्ति (morons) किसी प्रकार अपने और वातावरण मे संतुलन (adjustment) कर लेते हैं, किन्तु जड़—बु० भा० (I,Q.) मे सबसे नीचे—मे यह भी समझ नहीं रहती कि स्वास्थ्य के लिये भोजन चाहिये।

३. अपराधी और असाधारण दोनों वर्ग के व्यक्तियों के अज्ञात मन मे रक्षार्थ कार्य-पद्धतियाँ (defence mechanisms) काम करती हैं। इनके कारण इच्छाएँ एक मे अपराध का रूप लेती हैं और दूसरे मे असाधारण व्यवहार का। यह बात अवश्य है कि अपराध मे ये पद्धतियाँ असाधारण की अपेक्षा कम सक्रिय रहती हैं।
४. दोनों प्रकार की क्रियाओं का कारण इच्छाओं मे निराशा (thwartation of desires) है। अपराधी वर्ग का व्यक्ति काम-वासना की पूर्ति न होने पर दूसरे के साथ अनुचित संबंध, बलात् अत्याचार करेगा, कभी प्रतिशोध मे प्रतिद्वंद्वी की हत्या कर डालेगा।

असाधारण व्यक्ति हिस्टीरिया, उत्साह-विषाद, (manic-depressive insanity) स्थिर-भ्रम (paranoia) तथा असामयिक मनोह्रास (dementia praecox) का शिकार होगा।

५. दोनों प्रकार की क्रियाएँ व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टि से हानिकारक हैं। किन्तु अपराध की समस्या सामाजिक मानी जाती है और विक्षेप की व्यक्तिगत। यद्यपि विक्षिप्तावस्था व्यक्तिगत समस्या है परन्तु यह सामाजिक दृष्टि से भी अवांछनीय है। पागल होने पर एक व्यक्ति अपनी ही हानि नहीं करता—कुटुम्ब और समाज को भी नुकसान पहुँचाता है।

अपराधियों का वर्गीकरण

अपराधियों मे कई वर्ग के व्यक्तित्व मिलते हैं : कुछ मे मानसिक दोष होता है; कुछ मे मानसिक दुर्बलता; कुछ सीमातीत—मनोविक्षेप की अवस्था मे होते हैं; और कुछ साइकोपैथिक स्वभाव (psychopathic) के। जो व्यक्ति साइकोपैथिक होता है वह जन्म का अपराधी (potential criminal) होता है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी साइकोपैथिक अपराध करते हैं। बहुतों का कार्य समाज के अनुशासन के विरुद्ध नहीं होता। साइकोपैथिक का बुद्धि-स्तर पर्याप्त रूप से ऊँचा होता है। मनोदौर्बल्य के रोगियों की तरह इनमे चिंता और अन्तर्द्वंद्व नहीं चलता, न तो मनोविक्षेप के रोगियों की तरह उनमे भ्रांति-भ्रम ही होता है। बल्कि प्रायः स्वस्थ और समायोजित रहते हैं। केवल दोष यही रहता है कि ये अपने पर किसी प्रकार का रोकथाम नहीं लगाते और इस प्रकार नैतिक और सामाजिक नियम-परम्परा के प्रतिकूल कार्य किया करते हैं। स्वभाव से स्वार्थी और प्रवृत्तिशील रहते हैं। संवेगात्मक अस्थिरता रहती है; बिना सोचे-समझे अपनी इच्छा-प्रवृत्ति को तुष्ट कर लेते हैं। भविष्य और आगे आने वाली बात पर विचार न करने से कार्य करने के बारे मे प्रायः दोषयुक्त निर्णय हो जाता है। अनुभव का भी

लाभ नहीं होता। स्वार्थी होने के कारण अपने व्यक्तिगत लाभ का ही ध्यान रहता है; समाज के लाभ का ध्यान नहीं रहता। बल्कि अधिकतर समाज-विरोधी-विद्रोही प्रमाणित करते हैं। इस बात की जानकारी रहती है कि उनका कार्य समाज के लिये असंगत है, फिर भी सुधरने का प्रयास नहीं करते। समाज की अवहेलना, तर्क-वितर्क की कमी, नासमझी के कारण नहीं होती; इसका कारण इनका हठीला स्वभाव है। इसी कारण एक अंग्रेज़ चिकित्सक ने इस प्रकार के व्यक्तियों को नैतिक मूढ़ (moral imbeciles) कह रखा है। सब का मूल कारण नीति-धर्म का भाव विकृत हो जाता है। एक व्यक्ति कहाँ तक साइकोपैथिक है, इसका पता शारीरिक बनावट, मानसिक स्थिति और सामाजिक रुख से लग जाता है।

मनोविश्लेषण की दृष्टि से अपराधियों को निम्न वर्ग मे रखा जा सकता है :—

१. आत्म सम्मोही अपराधी (criminals of narcissistic type) की विशेषता यह है कि वह स्वभाव से एकांतप्रिय और स्वार्थी होता है। अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये वह निकृष्ट काम कर बैठता है। कुटुम्ब-मित्रगण के लाभ-हानि की उसे कुछ परवाह नहीं रहती। किन्तु वह सोच-विचार कर काम करता है। एक क्षण के आवेश मे अपराध नहीं करता। विश्लेषण करने पर पता लगा है कि इस वर्ग के अपराधी मे काम-वृत्ति का दमन विशेष रूप से हुआ रहता है जिसके कारण या तो कामशक्ति (libido) का प्रत्यावर्त्तन स्व काम पूर्णावस्था (narcissistic stage) की ओर हो जाता है या इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते विकास स्थिर हो जाता है। इस प्रकार आत्म-सम्मोही अपराधी की मनोदशा इस बात का द्योतक है कि उसकी कामशक्ति (libido) का ह्रास हुआ है या विकास अनुचित रूप से हुआ है।

२. 'असाधारण वर्ग के अपराधी' (criminals of neurotic type) अधिकतर क्षण भर के आवेग-आवेश मे प्रहार कर बैठते हैं। ये सोच-विचार, तर्क-वितर्क कर किसी पर प्रहार नहीं करते। इनका बहु-व्यक्तित्व (multitple personality) होता है। इसका एक रोचक

उदाहरण अमेरिका के समाचार पत्र मे आया। समाचार अमेरिका के एक ऊँचे धनी खानदान के युवक के विषय मे था। युवक ने एक रात अकस्मात् तीन हत्याएँ कर डाली। तीनों जन एक ही घर के थे—लड़की, उसकी माँ तथा उसका भाई। हत्या करने के बाद वह चुपचाप घर लौटकर आया और सो गया जैसे वह निद्रा-विचरण (somnambulism) की अवस्था मे रहा हो। सुबह होते ही हत्याकांड की खबर शहर भर मे फैल गई। युवक ने भी सुना। उसे रात की घटना याद आ गई। जाकर मित्रों-सम्बन्धियों से अपना अपराध कहा। मित्रों ने समझाया 'जाने दो ! तुम्हारे पर कोई शक नहीं कर सकता।' किन्तु उस पर समझाने-बुझाने का प्रभाव न पड़ा। उस युवक ने न्यायालय मे जाकर अपना दोष कबूल कर लिया। पूछने पर कहा "मैने नहीं, उस समय मै पाशविक मनोवृत्ति प्राधान्य के व्यक्तित्व मे था और उसीने ये हत्याएं की है, न्यायालय के लोग स्तब्ध रह गये क्योंकि उससे लोगों को यह आशा न थी। वह युवक अपने सदाचार और दयालुता के लिये प्रसिद्ध था।

३. बहिर्मुख अपराधी (criminals of extrovert type) का दल (gang) होता है। इनके अपराध का लक्ष्य अपने को लाभ पहुँचाना नहीं है। सब अपराध साथियों-सम्बन्धियों के लिये किया जाता है। समाज को हानि पहुँचाने की योजना सब मिलकर बनाते हैं।

अपराध के कारण:—इस संबंध मे मनोवैज्ञानिकों की अलग-अलग धारणा है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अपराध का कारण मानसिक दोष (mental defectiveness) है; कुछ के अनुसार पैतृक विशेषता (hereditary characteristic) । किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार अपराध का प्रमुख कारण मूल अथवा सहज वृत्ति का सन्तुष्ट न होना है। कोई भी व्यक्ति अच्छा या बुरा पैदा नहीं होता। परिस्थितियाँ ही उसे अच्छा या बुरा बनाती हैं। मनोविश्लेषण के अनुसार जीवन की अन्य समस्याओं की तरह अपराध की समस्या भी वृत्ति की समस्या है। मानसिक कमी-दोष (mental defectiveness) भले ही हो, यदि वृत्तियों का दमन न किया गया हो तो मनुष्य

अपराध नहीं कर सकता। यह वृत्ति काम-वृत्ति है। इस पर विस्तार से पिछले प्रकरणों मे प्रकाश डाला जा चुका है।

ऐडलर के अनुसार आत्म-स्थापन की वृत्ति की तुष्टि न होना अपराध का कारण है। बहुधा बालापराधी न्यायालय (juvenile court) मे जब बालक से पूछा जाता है 'तुमने चोरी क्यों की'। ग्लानि भरे जोश मे वह कह उठता है 'हाँ! चोरी की है और इसलिये की है कि मेरे माता-पिता-संबंधी समझ लें कि मै भी कुछ हूँ, मै भी कुछ कर सकता हूँ।' बात यह होती है कि अधिकतर कुटुम्ब मे बालकों के प्रति व्यवहार उचित नहीं होता। माता-पिता कुछ बच्चों को तो अधिक प्यार करते हैं और कुछ के प्रति रूखा व्यवहार रखते हैं। यह बात उपेक्षित बालक को बहुत खलती है।

युंग के अनुसार अपराध इस बात का सूचक है कि उस व्यक्ति विशेष की मानसिक शक्ति का अत्यधिक प्रवाह एक दिशा मे हो गया है। शक्ति का प्रत्येक दिशा मे उपयुक्त विभाजन होना चाहिये।

अपराध अन्वेषण की आधुनिक विधि:—यह पता लगाने के लिये कि अपराधी कौन है, मनोविज्ञान मे एक नई विधि का अनुसंधान हुआ है। यह विधि युंग द्वारा प्रतिपादित की गई है और 'शब्द-संधान पद्धति' (word-association) नाम से प्रसिद्ध है। इसमे शब्दों की एक सूची है। कुछ शब्द-निर्णायक (crucial) हैं और कुछ अनिर्णायक (non-crucial)। निर्णायक शब्दों का सम्बन्ध अपराध से सहज-सीधा होता है, जैसे बन्दूक, रक्त इत्यादि। अनिर्णायक शब्दों का संबंध अपराध से सीधे (direct) न रहकर परोक्ष रूप मे रहता है। जिन व्यक्तियों को सन्देह पर गिरफ्तार किया जाता है उनसे इस सूची मे से कुछ शब्द कहे जाते हैं और उन्हें यह आदेश दिया जाता है कि उनके मन मे प्रतिक्रिया रूप जो शब्द आवें, तुरन्त ही उन पर बिना विचार किये कह दे। इन्हीं कहे हुए शब्दों के विश्लेषण के आधार पर उनके दोषी या निर्दोषी होने का पता लगता है। बात यह है कि उनसे उस व्यक्ति-विशेष की मनोदशा को समझने मे सहायता मिलती है। प्रतिक्रिया मे

अपराधी को कितना समय लगता है यह भी उसकी मनोदशा के विश्लेषण के लिये महत्त्व का है। विलम्ब होने का अर्थ है कि उसकी प्रतिक्रिया स्वत: (spontaneous) नहीं है और निश्चय ही उसके मन मे किसी न किसी प्रकार की गुत्थी पड़ी है। इस प्रकार प्रत्युत्तर शब्द (response) और प्रतिक्रिया मे लगा हुआ समय (reaction time) अपराधी के मानसिक विश्लेषण मे सहायक होते हैं। किन्तु इस विधि की सफलता पूर्णत: समीक्षक के प्रज्ञा (intuition), निरीक्षण और मानवी स्वभाव समझने की शक्ति पर अवलंबित है।

अपराधी का पता लगने पर प्रश्न यह उठता है कि उससे किस प्रकार का व्यवहार किया जावे जिससे उसमे सुधार हो सके। इसके लिये सामान्य रूप से निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए :—

१. अपराधी की उम्र क्या है ? जो अपराधी १८ वर्ष से कम उम्र का है उसे प्रौढ़ अपराधियों से अलग रखने का प्रबन्ध हो। बात यह है कि बाल्यावस्था मे मनुष्य कोमल-लचीला होता है। जिधर चाहा उसे आसानी से मोड़ दिया। बुरी संगत रहने से बुरी बात सीखेगा।

२. क्या उसने अपराध पहली बार किया है, या अपराध करना उसका स्वभाव हो गया है ? जब अपराध करना एक प्रकार से स्वभाव हो जाता है तब सुधार की कम सम्भावना रहती है। हाँ, यदि वह परिस्थिति से बाधित होकर कोई अमानुषिक काम कर बैठता है तो सुधार संभव है।

३. उसका अपराध साधारण है या तीव्र ? यदि अपराध साधारण हुआ तो भावना-ग्रंथि सहज रहेगी। तीव्र अपराध करने का तात्पर्य है कि उसके मन मे गूढ़ गुत्थियाँ पड़ी हैं, जिनको निकालना आसान नहीं। मनोविश्लेषण के अनुसार अपराध करनेवालों से वही व्यवहार होना चाहिये जो रोगी के साथ किया जाता है।

अपराधियों को सुधारने के लिये निम्न बातें आवश्यक हैं :—

१. प्राचीन काल मे दण्ड का उद्देश्य अपराधी से बदला लेना था। यदि एक ने दूसरे को हानि पहुँचाई तो उसके हानि की पूर्ति के लिये अपराधी को सज़ा भुगतना ही पड़ता। आधुनिक काल मे दण्ड का उद्देश्य अपराधी से बदला लेना नहीं है, उसमे सुधार करना है। इस कारण आधुनिक मनोविज्ञान मे कठोर या मृत्युदण्ड प्रणाली की अवहेलना की गई है ।

२. आधुनिक मनोविज्ञान का सुझाव है कि जेलों का प्रबंध अस्पताल की तरह होना चाहिये। यह बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार अपराधियों की मनोदशा मानसिक रोग के रोगियों की मनोदशा के समान होती हैं। बाल-अपराधी के लिये पृथक् चरित्रशोधशाला (Reformatory) रहे जहाँ उसे सब प्रकार की शिक्षा देने की व्यवस्था हो। १९०९ मे विलियम हीले ने बाल-अपराधियों (delinquents) के लिये एक क्लीनिक खोला और तब से इस पर तीव्र गति से काम हो रहा है। बालक अपराध क्यों करता है और उसके लिये किस प्रकार का वातावरण रहे इस पर प्रकाश डाला जा रहा है।

३. अपराधियों की मनोदशा का विश्लेषण किया जाय। तभी मानसिक काया-कल्प (mental transformation) की सम्भावना है।

४. अपराधियों के लिये परिवीक्षक प्रणाली (probation system) और कारागारावकाश (parole) के नियम लाभप्रद हैं। बहुधा क्षणिक आवेग मे अपराध हो जाता है। बाद मे पश्चात्ताप होता है। ऐसी परिस्थिति मे यदि अपराधियों को कुछ सुविधा रहे तो लाभ हो सकता है। परिवीक्षक प्रणाली होने से बाल-अपराधी को सुधरने का एक और मौका दिया जाता है। परिवीक्षक (probation officer) की संरक्षता मे रह कर सम्भव है कि वह बाल-अपराधी दुबारा अपराध न करे। कारागारावकाश (parole) की प्रणाली होने के कारण प्रौढ़ अपराधियों को भी यह आशा बँध जाती है कि अच्छा आचरण रखने पर उन्हें जेल से मुक्ति मिल जायगी।

५. दण्ड की अनियत अवधि (indeterminate sentence) रहे।

सजा की अवधि अपराधी के आचरण पर निर्भर रहे। जब अपराधी को यह पता रहेगा वह सुधार का प्रयत्न करेगा।

इन सब सुझाव के रहते, उत्तम यह है कि मानव को ऐसी परिस्थिति मे रखा जाय कि उनका प्रारम्भ से ही अपराध की ओर झुकाव न हो। इसके लिये वातावरण मे इस प्रकार का प्रबंध रहे कि किसी भी वृत्ति-प्रवृत्ति का जान अनजान किसी प्रकार अत्यधिक दमन न हो, न किसी वृत्ति का अत्यधिक विकास। समाज को हरेक वृत्ति के समाधान के लिये पूरा-पूरा साधन देना है। अन्यथा दबायी हुई वृत्ति का समाज-विरोधी क्रियाओं मे विस्फोट होना निश्चित है। व्यक्तिगत जीवन भी असंतोष-अशांति का घर बन जायगा और इसका एक मात्र परिणाम होगा—व्यक्तित्व-विच्छेद तथा भावना-ग्रन्थियों का उद्भव।

शब्दकोष

अन्तर्ज्ञान	Intuition
अहं	Ego
अन्तर्मुख	Introvert
अन्तःस्राविक विकार	Endocrinal disturbance
अनाचार इच्छा	Incestuous desire
अनुकरण	Imitation
अध्यास	Illusion
अनुन्मुक्त कामशक्ति	Undischarged Libido
अवैयक्तिक	Impersonal
अबाध मनःआयोजन	Free-Association
आत्मविस्मरण	Fugue
अव्यक्त अंश	Latent content
अतिवेदना	Hyperaesthesia
अपराध-भाव	Sense of guilt
अवचेतन	Sub-conscious
अभावात्मक संक्रमण	Negative Transference
अनिद्रा	Insomnia
अज्ञात मन	Unconscious
असंतुलन	Mal-adjustment
असामयिक मनोह्लास	Dementia Praecox
अन्तर्मुखीकरण	Introversion
अतिचिंतक	Hypochondriac
अभ्यास	Habit
अनिर्णायिक	Non-crucial
आकुंचन	Contracture

आत्मरक्षा	Self-preservation
आन्तरिक मन	Subjective mind
आघात-उपचार	Shock-therapy
आत्मलघुता	Self-abasement
आत्म-स्थापन	Self-assertion
आवर्ती उत्साह	Recurrent Mania
आवर्ती विषाद	Recurrent Melancholia
आत्मनिर्देश	Auto-suggestion
आत्मसम्मोही	Narcissistic
ईषद्-ज्ञात मन	Pre-conscious
इदम्	Id
उन्माद, अपस्मार	Hysteria
उत्तेजन	Stimulus
प्रारम्भिक तादात्म्य	Primary Identification
उत्साहावस्था	Manic phase
उन्नयन, परिमार्जन	Sublimation
ऊँची जगह का भय	Acrophobia
उत्साह-विषाद-चक्र मनोदशा	Manic Depressive Insanity
ऐन्द्रिक वासना-तृप्ति सिद्धान्त	Pleasure Principle
ऐश्वर्य-भय	Delusion of Grandeur
कल्पनाग्रह	Obsession
कामविराग	Frigidity in erotic·activities
कार्य-कारण सम्बन्ध	Law of Causation
काम-वृत्ति	Sex Instinct
कामशक्ति	Libido
काम-विकृति	Perversion

कामेच्छा	Sex-desire
कायिक अभाव-दोष	Organic Inferiority
कामात्मक स्थिरभ्रम	Erotic Paranoia
कायिक दोष	Organic defect
केन्द्रीय भाग	Central or Focal region
केन्द्रीय चेतना	Focus of Consciousness
केन्द्रीयण	Arrest
कायिक क्रिया	Biological function
कारागारावकाश	Parole
काम-तृप्ति	Sex-satisfaction
खुली जगह का भय	Agorophobia
गर्व-ग्रंथि	Grandiose Complex
गतिशील	Dynamic
गौण तादात्म्य	Secondary Identification
चिन्ता रोग	Anxiety Neurosis
चेष्टा	Conation
जातीय इच्छा	Racial motive
शारीरिक अभाव	Constitutional deficiency
जाति-रक्षा	Race-preservation
जीवन-शैली	Style of life
तनु-मानसिक	Somato-psychic
तादात्म्य	Identification
दमन	Repression
द्वि मनः सिद्धान्त	Dual Mind Theory
दिशान्तरण	Deflection
दैहिक विवरण	Physiological interpretation
धर्म-वृत्ति	Spiritual Instinct

ध्यान	Attention
नाटकीयन	Dramatisation
निराधार कल्पना	Phantasy
निद्रा-विचरण, स्वप्न-विचरण	Somnambulism
निर्देशन	Suggestion
नैतिक मन, नैतिक बुद्धि	Super-ego
नैतिक आक्षेपक, नैतिक प्रतिबंधक	Endo-psychic Censor
परनिर्देश	Hetro-suggestion
प्रतिबंधित कामशक्ति	Dammed-up Libido
प्रक्षेपण	Projection
प्रत्यावर्त्तन	Regression
प्रतिमागत देव मूर्त्ति	Archetypal Image of Deity
प्रतीक	Symbol
प्रतीकीकरण	Symbolization
प्रत्यक्षीकरण	Perception
प्रयोग	Experiment
पुनर्सृजन	Reconstruction
प्रतिक्रिया, प्रतिचार	Response
पुरुष भाव-प्रतिमा	Animus
पीड़ा-भ्रम, अपमान-भ्रम	Delusion of Persecution
परिवीक्षक	Probation Officer
परिवीक्षा सदन	Probation Home
प्रतिनिधि	Substitute
परिवर्तनरहित मुद्रा	Stereotyped expression
पशु-भय	Zoo-phobia
पुनःस्मरण	Relive

पुनर्शिक्षण	Re-education
ग्रंथि-स्राव	Glandular secretion
बहु व्यक्तित्व	Multiple personality
बहिर्मुख	Extrovert
बन्द जगह का भय	Claustrophobia
बहिर्विषय मानसिक	Allo-psychic
बाह्य मन	Objective mind
बाह्य वस्तु-प्रेम	Allo-erotism
बोध	Cognition
बहिर्मुखीकरण	Extroversion
बुद्धि	Intelligence
बुद्धि भाग फल	Intelligence Quotient
बाल न्यायालय	Juvenile Court
बालापराधी	Juveniles
भ्रम	Delusion
भ्रान्ति	Hallucination
भावना-ग्रन्थि	Complex
भाव-प्रतिमा	Archetype
भावात्मक संक्रमण	Positive Transference
भावात्मक मनःशक्ति	Positive psychic-force
भीड़-भय	Ochlo-phobia
भीति रोग	Phobia
भ्रमण-भय	Phobia of Locomotion
मनोविक्षेप	Psychoses
मानव-विज्ञान	Anthropology
मनोह्रास	Mental deterioration
मनोविच्छेद	Mental Dissociation

मनोविश्लेषण, मनः समीक्षा	Psycho-analysis
मानसिक आघात	Trauma
मनोदौर्बल्य	Psycho-neuroses
मिर्गी	Epilepsy
मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान	Mental Hygiene
मनोगठन	Mental structure
मानसोपचार शास्त्र	Psychiatry
मेरुदण्ड	Spinal cord
मानसिक कार्य-पद्धति	Mental Mechanism
मातृ-पितृ काम-ग्रंथि	Oedipus-complex
मुक्त भावना-ग्रंथि	Autonomous Complex
मूर्च्छा	Catalepsy
युक्त्याभास	Rationalisation
रचनात्मक वृत्ति	Creative Impulse
रोध	Resistance
रूपान्तर	Disguise
रोग-भय	Patho-phobia
लयात्मक गति	Rhythmical Spasms
लकवा	Paralysis
व्यक्तित्व-संतुलन	Balance of Personality
व्यक्त अंश	Manifest content
विजातीय काम-वृत्ति	Hetro-Sexuality
विषादावस्था	Depressive phase
विश्रान्ति	Rest & Relaxation
विश्लेषक	Analyst, analytical
विष-भय	Toxo-phobia

व्यक्तिगत भेद	Individual difference
पैतृक	Heredity
व्यक्तित्व विकार	Personality disorder
वृत्ति, प्रवृत्ति	Instinct
वास्तविकता सिद्धान्त	Reality Principle
वातावरण	Environment
विस्थापन	Displacement
विरोधी-भाव, द्वि भाव	Ambivalence
विचार	Thought
विरुद्ध	Self-contradictory
विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान	Analytical Psychology
विषय, अंश	Contents
विवादात्मक स्थिरभ्रम	Litiguous Paranoia
व्यक्तिगत अज्ञात मन	Personal Unconscious
वैयक्तिक मनोविज्ञान	Individual Psychology
शब्द-संधान पद्धति	Word-Association Test
शिक्षा-विज्ञान	Educational Psychology
स्नायविक रोग	Neurasthenia
स्वप्न	Dream
स्मृति	Memory
स्व काम पूर्णावस्था	Narcissistic Stage
स्पंद-विकृति	Tics
संक्रमण	Transference
सम्मोहन	Hypnotism
स्व मनोविषयक	Auto-psychic
संज्ञाहीनावस्था	Anesthesia

संमोहनोत्तर घटना	Post hypnotic phenomenon
संवेग	Emotion
सामूहिक अज्ञात मन	Collective Unconscious
सामान्य तर्क	Inductive reasoning
साम्प्रदायिक स्थिरभ्रम	Religious Paranoia
संक्षिप्तीकरण, संक्षेपण	Condensation
स्थिरभ्रम रोग	Paranoia
सीमान्त चेतना	Marginal Consciousness
सुधारात्मक स्थिरभ्रम	Reformatory Paranoia
सजातीय काम-वृत्ति	Homosexuality
स्वत: काम पूर्णावस्था	Auto-erotic-stage
स्त्री भाव-प्रतिमा	Anima
स्थानापन्न तुष्टि	Substitutive-gratification
स्नायु	Nerve
संघर्ष	Conflict
समाज-विज्ञान	Sociology
सहज-क्रिया	Reflex
स्वप्न-क्रिया	Dream-work
स्वप्न-विवेचन	Dream-interpretation
संवेदना	Sensation
संश्लेषक	Synthetical
हठ-प्रवृत्ति	Compulsion
हीनत्व-ग्रंथि	Inferiority-complex
ज्ञात मन	Conscious mind

Acrophobia	ऊँची जगह् का भय
Agorophobia	खुली जगह् का भय
Allo-psychic	बहिर्विषय मानसिक
Allo-erotism	बाह्य वस्तु-प्रेम
Ambivalence	विरोधी-भाव, द्विभाव
Analyst	विश्लेषक
Animus	पुरुष भाव-प्रतिमा
Anima	स्त्री भाव-प्रतिमा
Attention	ध्यान
Analytical Psychology	विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान
Anesthesia	संज्ञाहीनावस्था
Anxiety Neurosis	चिंता रोग
Archetype	भाव-प्रतिमा
Arrest	केन्द्रीयण, रोध
Auto-psychic	स्व मनोविषयक
Autonomous complex	मुक्त भावना-ग्रंथि
Auto-suggestion	आत्मनिर्देश
Auto-erotic Stage	स्वत: काम पूर्णावस्था
Balance of Personality	व्यक्तित्व-संतुलन
Biological function	कायिक क्रिया
Conscious	ज्ञात मन
Contents	विषय, अंश
Central or focal region	केन्द्रीय-भाग
Collective Unconscious	सामूहिक अज्ञात मन
Cognition	बोध
Conation	चेष्टा

Condensation	संक्षिप्तीकरण
Claustro-phobia	बंद जगह का भय
Contracture	आकुंचन
Catalepsy	मूर्च्छा
Constitutional deficiency	शारीरिक अभाव
Conflict	संघर्ष
Creative Impulse	रचनात्मक वृत्ति
Complex	भावना-ग्रंथि
Constitutional inheritance	शरीर-संस्कार
Dual Mind Theory	द्वि मनः सिद्धान्त
Dynamic	गतिशील
Displacement	विस्थापन
Depressive phase	विषादावस्था
Dream-work	स्वप्न-क्रिया
Dream-interpretation	स्वप्न-विवेचन
Delusion of grandeur	ऐश्वर्य-भ्रम
Delusion of Persecution	पीड़ा-भ्रम, अपमान-भ्रम
Dementia Praecox	असामयिक मनोह्रास
Dammed-up Libido	प्रतिबंधित कामशक्ति
Deflection	दिशान्तरण
Disguise	रूपान्तर
Delusion	भ्रम, मिथ्या धारणा
Dramatization	नाटकीयन
Deductive Reasoning	विशेष तर्क
Disorientation	विस्मरण
Experiment	प्रयोग

Ego	अहं
Erotic Paranoia	कामात्मक स्थिर-भ्रम
Epilepsy	मिर्गी
Emotion	संवेग
Endo-psychic Censor	नैतिक प्रतिबंधक, नैतिक आक्षेपक
Environment	वातावरण
Endocrinal disturbance	अन्तःस्राविक विकार
Free-Association	अबाध मनः आयोजन
Frigidity in erotic activities	काम-विराग
Focus of Consciousness	केन्द्रीय चेतना
Glandular Secretion	ग्रंथि-स्राव
Hypnotism	सम्मोहन
Hysteria	उन्माद, अपस्मार
Hyperaesthesia	अतिवेदना
Hallucination	भ्रान्ति
Heredity	पैतृक
Hetro-suggestion	पर-निर्देश
Hypochondriac	अतिचिंतक
Homosexuality	सजातीय काम-वृत्ति
Habit	अभ्यास
Hormic Psychology	प्रयोजनवादी मनोविज्ञान
Hetro-sexuality	विजातीय काम-वृत्ति
Incestuous desire	अनाचार इच्छा
Imitation	अनुकरण
Inferiority-Complex	हीनत्व-ग्रंथि
Id	इदम्

Individual Psychology	वैयक्तिक मनोविज्ञान
Identification	तादात्म्य
Introvert	अन्तर्मुख
Instinct	वृत्ति, प्रवृत्ति
Illusion	अध्यास
Intelligence	बुद्धि
Intelligence Quotient	बुद्धि भाग फल
Individual difference	व्यक्तिगत भेद
Insomnia	अनिद्रा
Intuition	अन्तर्ज्ञान
Impersonal	अवैयक्तिक
Inductive reasoning	सामान्य तर्क
Law of causation	कार्य-कारण-संबंध
Libido	काम-शक्ति
Litiguous Paranoia	विवादात्मक स्थिरभ्रम
Latent content	अव्यक्त अंश
Manifest content	व्यक्त अंश
Mental structure	मनोगठन
Manic-phase	उत्साहावस्था
Mental Hygiene	मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान
Margin of Consciousness	सीमान्त-चेतना
Mal-adjustment	असन्तुलन
Mental Dissociation	मनोविच्छेद
Mutliple Personality	बहु व्यक्तित्व
Manic Depressive Insanity	उत्साह-विषाद-चक्र मनोदशा
Mental deterioration	मनोह्रास

Mental Mechanism	मानसिक कार्य-पद्धति
Neurasthenia	स्नायविक रोग
Narcissistic stage	स्व काम पूर्णावस्था
Negative Transference	अभावात्मक संक्रमण
Nerve	स्नायु
Narcissistic tendency	आत्म-सम्मोही प्रवृत्ति
Objective mind	बाह्य मन
Oedipus-complex	मातृ-पितृ काम -ग्रंथि
Obsession	कल्पनाग्रह
Ochlo-phobia	भीड़-भय
Organic defect	कायिक दोष
Organic Inferiority	कायिक अभाव-दोष
Overt activity	व्यक्त क्रिया
Pre-conscious	ईषद्-ज्ञात मन
Psycho-analysis	मनोविश्लेषण, मनःसमीक्षा
Physiological Interpretation	दैहिक विवेचना
Pleasure Principle	ऐन्द्रिक वासना-तृप्ति सिद्धान्त
Personal Unconscious	व्यक्तिगत अज्ञात मन
Post hypnotic phenomenon	संमोहनोत्तर घटना
Positive psychic force	भावात्मक मनःशक्ति
Phobia of Locomotion	भ्रमण-भय
Psychiatry	मानसोपचार शास्त्र
Parole	कारागारावकाश
Probation Officer	परिवीक्षक
Projection	प्रक्षेपण
Phobia	भीति-रोग

Psychoses	मनोविक्षेप
Paranoia	स्थिरभ्रम रोग
Primary Identification	प्रारम्भिक तादात्म्य
Phantasy	निराधार कल्पना
Psycho-neuroses	मनोदौर्बल्य
Personality-disorder	व्यक्तित्व-विच्छेद
Patho-phobia	रोग-भय
Perversion	काम-विकृति
Positive Transference	भावात्मक संक्रमण
Race-preservation	जाति-रक्षा
Rationalization	युक्त्याभास
Reality Principle	वास्तविकता सिद्धान्त
Repression	दमन
Regression	प्रत्यावर्तन
Reformatory Paranoia	सुधारात्मक स्थिरभ्रम
Religious Paranoia	साम्प्रदायिक स्थिरभ्रम
Recurrent Mania	आवर्ती उत्साह
Recurrent Melancholia	आवर्ती विषाद
Racial motive	जातीय इच्छा
Response	प्रतिक्रिया, प्रतिचार
Reconstruction	पुनः सृजन
Resistance	रोध
Rest & Relaxation	विश्रान्ति
Reflex	सहज-क्रिया
Reformatory	चरित्रशोधशाला
Super-ego	नैतिक मन, नैतिक बुद्धि

Self-preservation	आत्मरक्षा
Self-assertion	आत्म-स्थापन
Symbol	प्रतीक
Suggestion	निर्देशन
Sub-conscious	अवचेतन
Subjective mind	आंतरिक मन
Self-contradictory	अन्तर विरोधी
Symbolization	प्रतीकीकरण
Sublimation	उन्नयन, परिमार्जन
Sex Instinct	काम-वृत्ति
Somnambulism	निद्रा-विचरण, स्वप्न-विचरण
Secondary Identification	गौण तादात्म्य
Spiritual Instinct	धर्म-वृत्ति
Spinal cord	मेरुदण्ड
Synthetical	संश्लेषक
Sex-satisfaction	काम-तृप्ति
Sex-desire	कामेच्छा
Sense of guilt	अपराध-भाव
Somato-psychic	तनु-मानसिक
Substitute	प्रतिनिधि
Substitutive gratification	स्थानापन्न तुष्टि
Self-abasement	आत्मलघुता
Style of Life	जीवनशैली
Stereotyped expression	परिवर्तनरहित भाव
Sensation	संवेदना
Shock-therapy	आघात-उपचार

Trauma	मानसिक आघात
Therapy	उपचार
Toxo-phobia	विष-भय
Tics	स्पंद-विकृति
Undischarged Libido	अनुन्मुक्त कामशक्ति
Unconscious	अज्ञात मन
Word-association	शब्द-संधान पद्धति
Zoo-phobia	पशु-भय

अनुक्रमणिका

—○○—